ISSN 0973-3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

Peer- Reviewed Research Journal

UGC Journal No. (Old) 40942
Impact Factor 7.0 (IIFS)
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©
ProQuest, U.S.A. Title Id: 715205

अंक 40
हिन्दी संस्करण
वर्ष - 20
जनवरी-जून 2024



2024
www.researchjournal.in

आई. एस. एस. एन. 0973-3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal
UGC Journal No. (Old) 40942
Impact Factor 7.0 (IIFS)
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest
U.S.A. Title Id : 715205

अंक-40 | हिन्दी संस्करण | वर्ष-20 | जनवरी- जून 2024

डॉ. अखिलेश शुक्ल
ऑनरेरी सम्पादक
प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित
akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल
अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा
सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा
rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
की मुख्य शोध पत्रिका
म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1973 के अंतर्गत पंजीकृत
पंजीयन क्रमांक 1802, सन् 1997

विषय विशेषज्ञ/परामर्श मण्डल

1. डॉ. अरविंद जोशी, सेवानिवृत आचार्य, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी
arvindvns@outlook.com
2. डॉ. रामशंकर, कुलपति, पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल
rs_dubey@yahoo.com
3. डॉ. डी. एस. राजपूत, आचार्य, डॉक्टर हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर
drdiwakarrajeut@rediffmail.com
4. डॉ. बी. के. सिंह, आचार्य, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी
imdrbrajesh.kv@gmail.com
5. डॉ. अंजली श्रीवास्तव, सेवानिवृत आचार्य, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा
anjali_apsu@rediffmail.com
6. डॉ. बी. पी. बडोला, सेवानिवृत्त आचार्य, कांगड़ा हिमाचंल प्रदेश
bpbadola@gmail.com
7. डॉ. आभा सक्सेना, सह प्राध्यापक, अग्रसेन कन्या स्वशासी महाविद्यालय वाराणसी
drabhasaxena7@gmail.com
8. डॉ. प्रज्ञा मिश्रा, आचार्य, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट
pragyamishramgcgv@gmail.com
9. डॉ. आशीष सक्सेना, आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद उत्तर प्रदेश।
ashish.ju@gmail.com
10. डॉ. ज्योति उपाध्याय, आचार्य, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन मध्य प्रदेश
drjyotiupadhyay11@gmail.com
11. डॉ. प्रमिला पुनिया, सह प्राध्यापक, इतिहास, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर राजस्थान
pramilapoonia@rediffmail.com
12. डॉ. मृदुल जोशी, आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
dr_mriduljoshi@yahoo.com
13. डॉ. शैलजा दुबे, प्राध्यापक, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल
shailjadubey70@yahho.in
14. डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव, आचार्य, शासकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान
dr21pramila@gmail.com
15. डॉ. जयशंकर शाही, आचार्य, अलवर राजस्थान
jayshankarshahi@gmail.com
16. डॉ.एन. पी. त्रिपाठी , सेवानिवृत्त आचार्य, रीवा मध्य प्रदेश
17. डॉ. राजेश भट्ट, एच. एन. बी. केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
rajeshbhatt11@gmail.com
17. डॉ. नीलिमा सिंह सह प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, व्ही.एस.एस.डी. कॉलेज कानपुर, उत्तरप्रदेश
singhneelima148@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract, Keywords, Introduction, Methods, Analysis, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेज (ISSN-0973-3914) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत हैं।
- शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग-अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष जून एवं दिसंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस.एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका Peer-Reviewed हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है।
- शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक, मोबाइल नं., ई-मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50-100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट- पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010(फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए-4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

researchjournal97@gmail.com,
researchjournal.journal@gmail.com

शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई-मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00

-सदस्यता शुल्क -		
अवधि	**व्यक्तिगत सदस्यता**	**संस्थागत सदस्यता**
वर्ष एक	2000-00	2500-00
वर्ष दो	2500-00	4000-00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच-रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय।

प्रकाशक: गायत्री पब्लिकेशन्स
रीवा- 486001 (म.प्र.)

मुद्रक: ग्लोरी ऑफसेट
नागपुर

संपादकीय कार्यालय

186/1, विन्ध्य विहार कॉलोनी
लिटिल बैम्बीनोज स्कूल कैम्पस
रीवा- 486001 (म.प्र.)
दूरभाष- 7974781746
E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com
www.researchjournal.in

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं है। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं है। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

योग केवल एक व्यायाम पद्धति नहीं है, यह एक जीवनशैली है जो व्यक्ति को संपूर्णता की ओर ले जाती है। इसके नियमित अभ्यास से व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से सशक्त होता है। योग का अभ्यास हमें यह सिखाता है कि संतुलन और शांति का असली स्रोत हमारे भीतर है। इसलिए, योग को अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा बनाकर हम न केवल खुद को बेहतर बना सकते हैं, बल्कि समाज में भी सकारात्मक परिवर्तन ला सकते हैं। योग का संदेश सर्वत्र फैलाना आज की आवश्यकता है ताकि हर व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक संतुलन प्राप्त कर सके। योग हमें यह सिखाता है कि सही मायनों में स्वास्थ्य और सुख का अर्थ क्या है। इस प्रकार, योग एक समग्र और समावेशी दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो जीवन को सम्पूर्णता और संतुलन के साथ जीने की प्रेरणा देता है।

हर साल 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है। 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने की शुरुआत 2015 में हुई थी। इस दिन का उद्देश्य योग के फायदों को जन-जन तक पहुंचाना और स्वास्थ्य, संतुलन तथा शांति की भावना को बढ़ावा देना है। भारत की प्राचीन धरोहर योग ने आज पूरे विश्व में अपनी पहचान बनाई है और लोगों के जीवन को स्वस्थ और सकारात्मक दिशा में मोड़ा है। प्राचीन धरोहर योग का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह एक प्राचीन भारतीय पद्धति है जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए उपयोगी होती है। योग की उत्पत्ति हज़ारों साल पहले भारत में हुई थी और यह वेदों, उपनिषदों और अन्य प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है। योग का विस्तृत वर्णन पतंजलि योगसूत्र, भगवद गीता, हठयोग प्रदीपिका आदि ग्रंथ में किया गया है। योग के प्रमुख अंगों में आसन, प्राणायाम, ध्यान, समाधि प्रमुख हैं। प्राचीन योग परंपराएं भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, जिनमें अष्टांग योग: पतंजलि द्वारा प्रतिपादित आठ अंगों पर आधारित योग। हठयोग: शरीर और प्राण को शुद्ध करने के लिए आसन और प्राणायाम का अभ्यास। राजयोग: मानसिक और आत्मिक योग की उच्चतम विधि। कर्मयोग, भक्तियोग, और ज्ञानयोग ये तीनों गीता में वर्णित हैं और व्यक्ति को आध्यात्मिक उन्नति के विभिन्न मार्ग प्रदान करते हैं।

आधुनिक युग में, योग ने वैश्विक पहचान बनाई है। विभिन्न योग शिक्षक और गुरुओं ने योग को पूरी दुनिया में फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। योग की प्राचीन धरोहर आज भी प्रासंगिक है और जीवन के विभिन्न पहलुओं में संतुलन और समृद्धि लाने में सहायक है। योग के विभिन्न आसन और प्राणायाम तकनीकें शरीर को लचीला, मजबूत और स्वस्थ बनाती हैं। नियमित योग अभ्यास से मांसपेशियों का संतुलन बना रहता है, रक्त संचार बेहतर होता है, और शरीर में ऊर्जा का संचार होता है। योग केवल शारीरिक व्यायाम नहीं है, बल्कि यह मानसिक शांति और स्थिरता का भी साधन है। ध्यान और प्राणायाम के माध्यम से मानसिक तनाव, चिंता और अवसाद को कम किया जा सकता है। योग के अभ्यास से मन में शांति और संतुलन की भावना उत्पन्न होती है। योग

व्यक्ति को आत्मा से जुड़ने और आध्यात्मिक जागरूकता की ओर ले जाता है। यह आत्म-साक्षात्कार का मार्ग है, जो जीवन के गहरे अर्थ को समझने में मदद करता है। योग आसनों और प्राणायाम से शारीरिक शक्ति, लचीलापन और सहनशीलता बढ़ती है। ध्यान और प्राणायाम से मानसिक शांति, तनाव प्रबंधन और एकाग्रता में सुधार होता है। योग साधना से आत्मज्ञान और आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त होती है।

वैश्विक स्तर पर भारत ने दुनिया के विभिन्न देशों में भी योग के कार्यक्रम आयोजित किए और अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस को एक वैश्विक उत्सव बना दिया। विभिन्न देशों में भारतीय दूतावासों ने भी बड़े पैमाने पर योगाभ्यास कराए। अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस ने न केवल भारत में बल्कि पूरे विश्व में योग के प्रति जागरूकता बढ़ाई है और लोगों को स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के लिए प्रेरित किया है। भारत की इस पहल ने योग को वैश्विक स्तर पर मान्यता दिलाई है और इसे एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्थापित किया है।

योग की सामाजिक दृष्टिकोण से व्याख्या करने पर हम यह पाते हैं कि योग समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में मदद करता है। योग विभिन्न शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लाभ प्रदान करता है। इसे नियमित रूप से अभ्यास करने से शारीरिक तंदुरुस्ती में सुधार होता है, जैसे कि लचीलापन, शक्ति और सामर्थ्य में वृद्धि होती है। इसके साथ ही, योग मानसिक स्वास्थ्य को भी सुधारता है, जैसे कि तनाव को कम करना, मानसिक शांति और ध्यान की क्षमता में सुधार होना। इस तरह से, योग उन लोगों के लिए भी फायदेमंद होता है जो स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच से वंचित हैं। योग के माध्यम से सामाजिक समृद्धि भी आती है है। समृद्ध समुदायों में योग के केंद्रों का निर्माण सामाजिक समृद्धि में सहायक हो सकता है, जहां लोग स्वास्थ्य को लेकर जागरूक होते हैं और साथ में योगाभ्यास करते हैं। इससे समुदाय का एकता और सहयोग प्रबल होता है। योग के माध्यम से लोग स्वयंसेवी कार्यों में भी सक्रिय होते हैं। योग शिविरों और कक्षाओं का आयोजन करने के माध्यम से समुदाय को शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में जागरूक किया जा सकता है। इसके अलावा, योग आध्यात्मिक उन्नति में मदद करता है और व्यक्ति को अपने समाज के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। योग व्यक्ति के व्यक्तिगत और सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उसके स्वास्थ्य, मानसिक स्थिति, और व्यक्तित्व को सुधारने में सहायक होता है, जिससे वह समाज में अधिक सक्रिय भागीदारी कर सकता है। इसके अलावा, योग अपने जीवन में सामाजिक न्याय, समानता और सहयोग को बढ़ावा देता है। इन सभी पहलुओं के माध्यम से, योग समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और व्यक्ति और समुदाय के विकास में सहायक होता है।

डॉ. अखिलेश शुक्ल
प्रधान सम्पादक

अनुक्रमणिका

01.	ग्रामीण समाज में महिलाओं की भूमिका और चुनौतियां (रीवा जिले के ग्राम कोठी के विशेष संदर्भ में) **आंचल शुक्ल** **अखिलेश शुक्ल**	09
02	सोशल मीडिया का ज्यादा उपयोग किशोर बच्चों के संवेगात्मक व्यवहारों पर पड़ने वाला प्रभाव **ज्योति वाला चौबे**	20
03	युवाओं के आत्मगत स्वस्ति बोध पर लिंग भेद तथा आवासीय पृष्ठभूमि का प्रभाव **अनुभा श्रीवास्तव** **फ़हमीदा ज़ैदी**	26
04	योग का समग्र व सामाजिक प्रभाव **अलका रानी**	35
05	आधुनिक भारतीय चित्रकला में टैगौर परिवार की भूमिका **कंचन देवी** **नीतू वशिष्ठ**	46
06	भारत में आधुनिक कला का वास्तविक स्वरूप **सतेन्द्र कुमार**	50
07	महिला हिंसा का समाज एवं परिवार पर प्रभाव : (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में) **वन्दना वर्मा** **गुंजन सिंह**	55
08	महिला पुलिस का कमजोर वर्ग महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवहार: (रीवा संभाग के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन) **प्रियंका तिवारी**	63
09	शिक्षा और महिला नेतृत्व: पंचायतों में महिला जनप्रतिनिधियों का अध्ययन (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में) **शिखा पाण्डेय**	71
10	आभासी पुस्तकालय और पुस्तकालयाध्यक्षों की बदलती भूमिका **अनिल कुमार धीमान** **अंजना रानी शर्मा**	79
11	संस्कृत साहित्य के संवर्धन में शैक्षणिक संस्थानों की भूमिका **मधु**	88
12	प्राचीन भारत में धार्मिक सहिष्णुता: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य **माया सिंह**	93

13	भारतीय ज्ञान परंपरा का उत्थान और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020:नई नीतियों के संदर्भ में विश्लेषण **मुक्ता दुबे**	100
14	सामाजिक न्याय और राजनीति: भारतीय संदर्भ में अध्ययन **सुनीता शुक्ला**	108
15	अध्यात्म : भारतीय ज्ञान के रूप में **अमृता कुमारी**	116
16	जबलपुर-कटनी जिले में शैक्षिक सुविधाओं की स्थिति : एक अध्ययन **शिव कुमार दुबे** **नमिता गुप्ता**	121
17	'छिन्नमस्ता' और 'शेष कादम्बरी' उपन्यासों की नायिकाओं के मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन **अनिता प्रजापत**	132
18	सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव: हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद **बिरदी चंद जाट**	139
19	बालमुकुंद गुप्त के साहित्य में धार्मिक व्यंग्य **राहुल गर्ग**	147
20	मीडिया एकाधिकार: पूंजीवादी संरचनाएँ और सूचना नियंत्रण **आरती प्रसाद**	153
21	हिन्दी दलित कहानी का वैशिष्ट्य **शशि भूषण कुमार 'शशि'**	164
22	आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र में अर्थ और नैतिकता का समन्वय **दीप नारायण कुमार**	171
23	भारत में क्षेत्रवाद समस्या एवं निदान **मालती तिवारी**	178

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

ग्रामीण समाज में महिलाओं की भूमिका और चुनौतियां (रीवा जिले के ग्राम कोठी के विशेष संदर्भ में)

• आंचल शुक्ल
•• अखिलेश शुक्ल

सारांश- ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति एक जटिल और बहुआयामी विषय है, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक पहलुओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ग्रामीण समाज में महिलाएं अक्सर परिवार की धुरी होती हैं। वे घरेलू कामकाज, बच्चों की देखभाल और वृद्धों की सेवा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पितृसत्तात्मक संरचना के कारण महिलाओं का पारिवारिक निर्णयों में सीमित हस्तक्षेप होता है। ग्रामीण इलाकों में महिलाओं पर पारंपरिक मान्यताओं और प्रथाओं का गहरा प्रभाव रहता है। बाल विवाह, दहेज प्रथा, और विधवा पुनर्विवाह पर रोक जैसी प्रथाएं महिलाओं की स्वतंत्रता और अधिकारों पर बुरा असर डालती हैं।

मुख्य शब्द- भूमिका, चुनौतियां महिला, ग्रामीण समाज, सामाजिक संरचना, प्रस्थिति

ग्रामीण महिलाएं कृषि और संबंधित गतिविधियों में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वे खेतों में काम करती हैं, मवेशियों की देखभाल करती हैं, और घर के अन्य कामों में सक्रिय रहती हैं। हालांकि, उनके काम को अक्सर औपचारिक रूप से मान्यता नहीं मिलती और वे आर्थिक स्वतंत्रता से वंचित रहती हैं। भूमि, संपत्ति और अन्य संसाधनों पर महिलाओं की पहुंच सीमित होती है। महिलाओं को रोजगार के अवसर कम मिलते हैं और वे अक्सर अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत रहती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा का स्तर शहरी क्षेत्रों की तुलना में निम्न होता है। परिवार की आर्थिक स्थिति, सामाजिक मान्यताएं और सुविधाओं की कमी के कारण लड़कियों की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता दर में सुधार हुआ है, परंतु अभी भी यह शहरी महिलाओं की तुलना में काफी कम है। ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच सीमित है। प्रसव पूर्व और प्रसवोत्तर देखभाल की कमी के कारण मातृ मृत्यु दर अधिक है। स्वास्थ्य और पोषण से संबंधित जानकारी की कमी के कारण महिलाओं का स्वास्थ्य स्तर निम्न होता है। महिलाओं के कानूनी अधिकारों की जागरूकता ग्रामीण इलाकों में कम है।

• बी. ए. एलएल.बी ऑनर्स, यू.पी.ई.एस. देहरादून
•• प्राध्यापक समाजशास्त्र शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा मध्य प्रदेश

जमीनी स्तर पर कानूनों के प्रभावी क्रियान्वयन की कमी के कारण महिलाएं अपने अधिकारों से वंचित रहती हैं। सरकार और गैर सरकारी संगठनों द्वारा विभिन्न योजनाएं और कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जो महिलाओं के सशक्तिकरण पर केंद्रित हैं, जैसे स्वयं सहायता समूह, महिलाओं के लिए आरक्षण, और कौशल विकास कार्यक्रम। बालिका शिक्षा पर जोर दिया जा रहा है और विभिन्न छात्रवृत्तियों और योजनाओं के माध्यम से इसे प्रोत्साहित किया जा रहा है। महिलाओं के लिए कौशल विकास और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच बढ़ाने के लिए सरकार और एनजीओ की ओर से प्रयास किए जा रहे हैं। आंगनवाड़ी केंद्रों और स्वास्थ्य शिविरों के माध्यम से महिलाओं को स्वास्थ्य और पोषण संबंधी जानकारी दी जा रही है। महिला स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं को वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए जा रहे हैं। विभिन्न स्वरोजगार योजनाओं के तहत महिलाओं को आर्थिक मदद और प्रशिक्षण प्रदान किया जा रहा है। ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए सामुदायिक जागरूकता, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच, और कानूनी समर्थन के क्षेत्र में और भी ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। केवल सरकारी प्रयास ही नहीं, बल्कि सामाजिक स्तर पर भी मानसिकता में बदलाव लाकर महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाया जा सकता है।

आधुनिक युग में नारी ने पुरुषो के समकक्ष स्थान एवं अधिकार पाने के लिए कई स्त्री आन्दोलनों एवं सगठनों को जन्म दिया है। दुनिया के दूसरे देशो में स्त्री स्वतन्त्रता अन्दोलन चले और स्त्रियों को अपने अधिकार पाने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा। भारतीय समाज भी एक पुरुष प्रधान एवं पितृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था को मानने वाला समाज रहा है। जिसमे स्त्रियों का कार्य क्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित रहा है, आर्थिक रुप से वे सदैव पुरुषों पर निर्भर रही है तथा उन्हे शिक्षा एवं बाह्य जगत् से भी दूर रखा गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण रीवा जिले के ग्राम ग्राम कोठी के संदर्भ में किया गया है। 478 परिवारों में से 150 उत्तरदाताओ का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन प्रणाली के आधार पर किया गया है।

व्यक्तियों, परिवारों या अन्य श्रेणी के लोगों का समाज के एक वर्ग से दूसरे वर्ग में गति सामाजिक गतिशीलता कहलाती है। इस गति के परिणामस्वरूप उस समाज में उस व्यक्ति या परिवार की दूसरों के सापेक्ष सामाजिक स्थिति (स्टैटस) बदल जाता है। सामाजिक गतिशीलता से अभिप्राय व्यक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने से होता है। जब एक स्थान से व्यक्ति दूसरे स्थान को जाता है तो उसे हम साधारणतया आम बोलचाल की भाषा में गतिशील होने की क्रिया मानते हैं। परंतु इस प्रकार की गतिशीलता का कोई महत्व समाजशास्त्रीय अध्ययन में नहीं है। समाजशास्त्रीय अध्ययन में गतिशीलता से तात्पर्य एक सामाजिक व्यवस्था में एक स्थिति से दूसरे स्थिति को पा लेने से है जिसके फलस्वरूप इस स्तरीकृत सामाजिक व्यवस्था में गतिशील व्यक्ति का स्थान उँचा उठता है व नीचे चला जाता है। एक स्थान से उपर उठकर दूसरे स्थान को प्राप्त कर लेना, जो उससे उँचा है, निस्संदेह गतिशीलता है। सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र में

सामाजिक गतिशीलता का अभिप्राय है किसी व्यक्ति, समूह या श्रेणी की प्रतिष्ठा में परिवर्तन से है।[1]

अवधारणात्मक विश्लेषण- पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में ग्रामीण और नगरीय दोनो ही समुदायों में स्त्रियों का जीवन आज भी एक बड़ी सीमा तक पुरुषों पर निर्भर है। दोनो ही समुदायों में स्त्रियों का मनुष्यों का मुख्य कार्य बच्चो का पालन-पोषण करना तथा गृहस्थी से सम्बन्धित दायित्वों को पूरा करना है। खेत पर काम करने वाली ग्रामीण स्त्रियों तथा कार्यालयों में नौकरी करने वाली स्त्रियों की प्रस्थिति में भिन्नता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में ग्रामीण और नगरीय सभी स्त्रियों को मताधिकार मिला हुआ है, लेकिन इस अधिकार का उपयोग पुरुष सदस्यों की इच्छाओं के अनुरुप ही होता है। दहेज, वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक साधनों के उपयोग को लेकर जिस तरह ग्रामीण समुदाय में स्त्रियों को प्रताड़ित करने की घटनाएँ सामने आती है, यह अत्यंत लज्जाजनक स्थिति है। नगरीय समुदाय में भी इस तरह की घटनाओं की कमी नही है। इसका तात्पर्य है कि आज भी ग्रामीण और नगरीय जीवन मे स्त्रियों के विरुद्ध होने वाली घरेलू हिंसा की प्रकृति मे काफी कुछ समानता है। जिस तरह गाँवो में स्त्री शिक्षा मे वृद्धि होने तथा राजनीतिक जीवन में उनकी सहभागिता बढ़ने से स्त्रियों की प्रस्थिति मे कुछ परिवर्तन हुआ है, उसी तरह नगरों में भी स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार तथा आर्थिक क्रियाओं मे सहभाग बढ़ने से उनमे एक नयी चेतना स्पष्ट होने लगी है। इससे पारिवारिक जीवन के संगठित होने के साथ ही परिवार में नये प्रकार के तनाव भी पैदा हो रहे है।

अधिकांश समाजो में विशेषकर भारतवर्ष में महिलाओं और पुरुषो में असमानता एक प्रमुख विंसगति है। स्त्रियों के स्तर के बारे में किसी भी पूर्वानुमान के लिए सामाजिक ढाँचे को समझना जरुरी है। सामाजिक संरचना, लोक परम्परा और आदर्श सभी मिलकर पुरुषों और महिलाओं के व्यवहारों से सम्बन्धित सामाजिक अपेक्षाओं को प्रमाणित करते है और समाज में महिलाओं की प्रस्थिति तथा भूमिका को भी सुनिश्चित करते हैं। भारतवर्ष मे महिलाओं की प्रस्थिति संस्कृति , क्षेत्र और आयु जैसे विशेष कारको से निर्धारित होती है। संवैधानिक और कानूनी तौर पर महिलाओं की प्रस्थिति एवं भूमिका तथा सामाजिक परम्पराओं द्वारा थोपी गई प्रस्थितियों और भूमिका मे अंतर का प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे देश में महिलाओं की सामाजिक स्थिति है। पितृसत्तात्मक मूल्यो एवं संस्थाओं पर आधारित होने के कारण महिलाओं की अच्छी आज्ञाकारी और त्याग करने वाली बेटी और बहू और पत्नी के रुप मे ही सामाजिक स्वीकार्यता है। उन्हे सामाजिक रीति-रिवाजों व सामाजीकरण के माध्यम से इस प्रकार ढाला जाता है कि वे सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत होने वाली असमानताओं, अधीनता और शोषण आदि का विरोध न करें। पुरुषो की संरक्षकत्व और आश्रय प्रवृत्ति की अधिकता बहुधा उनके व्यक्तित्व और निजता के विकास को अवरुद्ध कर देती है। महिलाओं की परिवार और समाज में स्थिति मुख्यतया देश के विभिन्न क्षेत्रो की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक और भौगोलिक कारकों से निर्धारित होती है। संयुक्त परिवार मे पितृ पक्ष से सम्बन्धित पुरुषों का एक समूह होता है, जिन्हें सम्पत्ति संयुक्त खर्चो मे हिस्सेदारी, आवास तथा रसोई मे समान अधिकार प्राप्त होता है। यद्यपि औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और आधुनिकता के प्रभाव

के कारण इस प्रकार के रहन–सहन मे काफी परिवर्तन हुआ है, परन्तु संयुक्त परिवार की मान्यताएँ आज भी काफी हद तक प्रचलित है। वर्तमान समय में इन मान्यताओं में परिवर्तन हुआ है। महिलाएं अब समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही हैं तथा पुरुषवादी सोच में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है।

पूर्व साहित्य की समीक्षा -

डॉ. श्रद्धा सुमन ने अपने शोध अनुसूचित जाति की माहिलाओ के उत्पीड़न के सामाजिक प्रभाव में निष्कर्ष रूप में पाया कि अनुसूचित जाति की महिलाओं का उत्पीड़न होने से सामाजिक आधार पर बुरा प्रभाव पड़ा, अनुसूचित जातियों की महिलाओं का उत्पीड़न होने से उन्हें विभिन्न प्रकार की यातनायें झेलनी पड़ती है, जैसै– शारीरिक, मानसिक, परिवारिक तथा आर्थिक आदि।[2]

अमित कुमार वर्मा ने अपने अनुसंधान ग्रामीण समाज में दलितो की स्थिति : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण में पाया कि ग्रामीण सामज मे दलितो की स्थिति अभी भी निम्न ही बनी हुई है। क्योंकि उनकी वर्तमान स्थिति के आधार पर उनके आर्थिक स्त्रोतों के रूप मे कृषि एवं मजदूरी ही अग्रणी है। इन्ही स्त्रोतों से होने वाली आय के आधार पर ही वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटा पाते है। आय की दृष्टि से उनकी आर्थिक स्थिति आज भी दयनीय है, क्योंकि अधिसंख्यक सूचनादाता 3000 रूपये मासिक से कम आय वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। दलित की शैक्षणिक स्थिति सुदृढ हो रही है और अपने बच्चो की शिक्षा को लेकर उनकी उन्मुख्ता बढ़ी है। उनमें सामाजिक एवं सास्ंकृतिक आयाम जो पहले थे, जैसे रहन–सहन, रीति–रिवाज, सामाजिक मूल्य आदि इन सभी मे परिवर्तन आया है, दलित उत्तरदाताओ में नये तरीके से जीवन जीने की लालसा स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। वे अब राजनीतिक मुद्दो का भी ज्ञान रखते है जिससे उनकी राजनीति मे प्रवेश को लेकर रूचि बढ़ी है और उनके परिवारों के आकारों में भी परिवर्तन हुआ है जो संयुक्त से एकाकी परिवार को अधिक प्राथमिकता देते है।[3]

डॉ. शकील अहमद ने अपने शोध अन्वेषण अनुसूचित जातीय महिला नेतृत्व की राजनीतिक अभिरूचि एवं सजगता में निष्कर्ष रूप में पाया कि अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व पंचायतो में कम प्रतिस्पर्धा से आया है। उनकी ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुधार की बात उत्साहवर्द्धक मानी जा सकती है। संचार माध्यमों के प्रति उनकी जागरूकता का स्तर निम्न होना अशिक्षा एवं कमजोर सामाजिक, आर्थिक स्थिति से जुड़ा विषय है। महत्वाकांक्षा का अभाव ही इस संदर्भ में अंतर सम्बंधी प्रतीत होता है। यदि अनुसूचित जाति के इन नेताओं, प्रधानों के उत्तरों को समग्र रूप से देखा जाए तो ग्रामीण स्तर पर महिलाओं का एक ऐसा नेतृत्व उभर रहा है, जिससे इस आशा का संचार होता है कि अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व की पंचायतों में प्रथम औपचारिक भागीदारी आगे आने वाले समय मे ज्यादा सजग और जागरूक नेतृत्व देने मे सक्षम होगी। उत्तर प्रदेश की पंचायतो के लिए यह एक आशापूर्ण संकेत है।[4]

डॉ. अखिलेश शुक्ल ने अपने शोध अध्ययन महिला सशक्तिकरण दशा और दिशा में यह पाया है कि अब निरंतर महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आ रहा है वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही हैं और समाज के विकास के हिस्सेदारी में उनका

महत्वपूर्ण योगदान है।[5]

अध्ययन क्षेत्र - ग्राम ग्राम कोठी रीवा जिले के हुजूर तहसील में स्थित एक बड़ा गाँव है, जिसमें कुल 1013 परिवार रहते हैं। कोठी गाँव की जनसंख्या जनगणना 2011 के अनुसार 4261 है, जिसमें 2264 पुरुष हैं और 1997 महिलाएँ हैं। ग्राम कोठी गाँव में 0–6 आयु वर्ग के बच्चों की आबादी 598 है, जो गाँव की कुल आबादी का 14.03 प्रतिशत है। ग्राम कोठी गाँव का औसत लिंग अनुपात 882 है जो मध्य प्रदेश राज्य के औसत 931 से कम है। कोठी में जनगणना के अनुसार बाल लिंग अनुपात 829 है, जो मध्य प्रदेश के औसत 918 से कम है। मध्यप्रदेश की तुलना में ग्राम कोठी गाँव में साक्षरता दर अधिक है। 2011 में मध्य प्रदेश के 69.32 प्रतिशत की तुलना में कोठी गाँव की साक्षरता दर 74.26 प्रतिशत थी। ग्राम कोठी में पुरुष साक्षरता 84.05 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता दर 63.27 प्रतिशत है।[6] अध्ययन क्षेत्र ग्राम ग्राम कोठी का सांख्यिकीय विवरण निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी क्र.01

विवरण	कुल	पुरुष	महिला
मकान की कुल संख्या	1013		
जनसंख्या	4261	2264	1997
बालक (0–6)	598	327	271
अनुसूचित जाति	457	247	210
अनुसूचित जनजाति	544	281	263
साक्षरता	74.26	84.05	63.27
कुल कामगार	1531	1177	354
मुख्यकामगार	1089		
सीमांत कामगार	442	282	160

अध्ययन क्षेत्र ग्राम कोठी का सांख्यिकी विवरण जनगणना 2011

उद्देश्य -

1. ग्रामीण महिलाओ की सामाजिक स्थिति का आंकलन करना।
2. ग्रामीण महिलाओ की गतिशीलता का अध्ययन करना।

अध्ययन विधि व क्षेत्र - प्रस्तुत शोध पत्र ग्रामीण समाज में महिलाओ की स्थिति में उत्तरदाता हेतु रीवा जिले के गाँव ग्राम कोठी का चयन किया गया है, जिसमे 478 परिवारों में से 150 उत्तरदाताओ का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन प्रणाली के आधार पर किया गया है। प्राथमिक तथ्यो को उद्देश्यो के अनुरुप सारणी के द्वारा प्रतिशत में प्रस्तुत किया गया है एवं तदानुकूल विश्लेषण किया गया है।

उपकल्पना- अनुसन्धान या अध्ययन के क्षेत्र में पूर्व कल्पना या उपकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसका निर्माण और प्रयोग वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति का एक महत्वपूर्ण चरण होता है। सरल शब्दों में उपकल्पना का अर्थ होता है, एक ऐसा विचार या सिद्धांत जिसे शोधकर्ता अध्ययन के लक्ष्य के रूप में रखता है, उसकी जांच करता है और प्रमाणित करता है। इस शोध पत्र की कुछ उपकल्पना इस प्रकार है–

1. अध्ययन क्षेत्र में संयुक्त परिवार की प्रथा को महत्व प्रदान किया जाता है।
2. महिलाएं स्वयं और परिवार के भविष्य के प्रति सजग हैं।
3. सामाजिक साहचर्य के नियमों में परिवर्तन आ रहा है।

4. वर्तमान में लिव इन रिलेशनशिप को महिलाओं द्वारा मान्यता प्रदान की जा रही है।

अध्ययन का महत्व - प्रस्तुत शोध के आधार पर ग्रामीण महिलाओ की वास्तविक स्थित को ज्ञात किया जा सकता है।

अध्ययन की कठिनाई - साक्षात्कार हेतु महिलाओ की समय पर उपलब्धता व उनसे समय प्राप्त करने मे कठिनाई आयी।

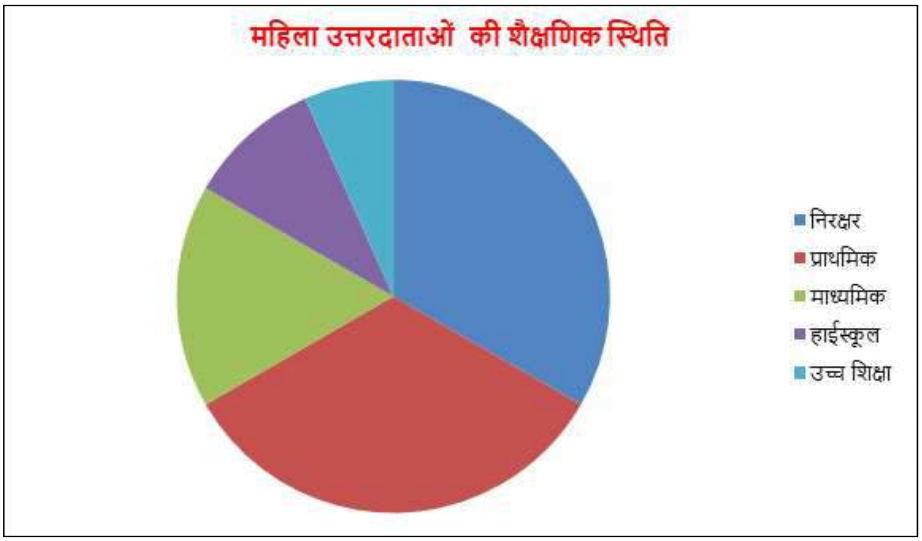
तथ्यों का सारणीयन एवं विश्लेषण- साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों को सारणी में प्रस्तुत करते हुए उनका विश्लेषण किया गया है और तथ्यों को डायग्राम में भी प्रस्तुत किया गया है।

ग्रामीण महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति- देश की कुल जनसंख्या में ग्रामीण साक्षरता दर 68.9 प्रतिशत तथा शहरी साक्षरता दर 84.9 प्रतिशत है, जिसमें ग्रामीण महिला साक्षरता केवल 58. 75 प्रतिशत जबकि शहरी महिला साक्षरता 79.92 प्रतिशत है। अध्ययन क्षेत्र ग्राम कोठी में ग्रामीण महिलाओ की शैक्षणिक स्थिति को निम्नलिखित सारणी द्वारा प्रदर्शित किया गया है–

सारणी क्र.02
महिला उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति

क्र.	शैक्षणिक स्तर	आवृति	प्रतिशत
01	निरक्षर	50	33
02	प्राथमिक	50	33
03	माध्यमिक	25	17
04	हाईस्कूल	15	10
05	उच्च शिक्षा	10	07
	योग	150	100

उक्त स्थिति को हम नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत कर रहे हैं–



अध्ययन क्षेत्र ग्राम ग्राम कोठी में महिला साक्षरता की दर 63.27 प्रतिशत है। उत्तर दाताओं की शैक्षणिक स्थिति से प्राप्त तथ्य यह बताते हैं कि 33 प्रतिशत निरक्षर, 33 प्रतिशत प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त, 17 प्रतिशत माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा

प्राप्त, 10 प्रतिशत हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त और 07 प्रतिशत महिला उत्तरदाता उच्च शिक्षा प्राप्त करती हुई पाई गई है।

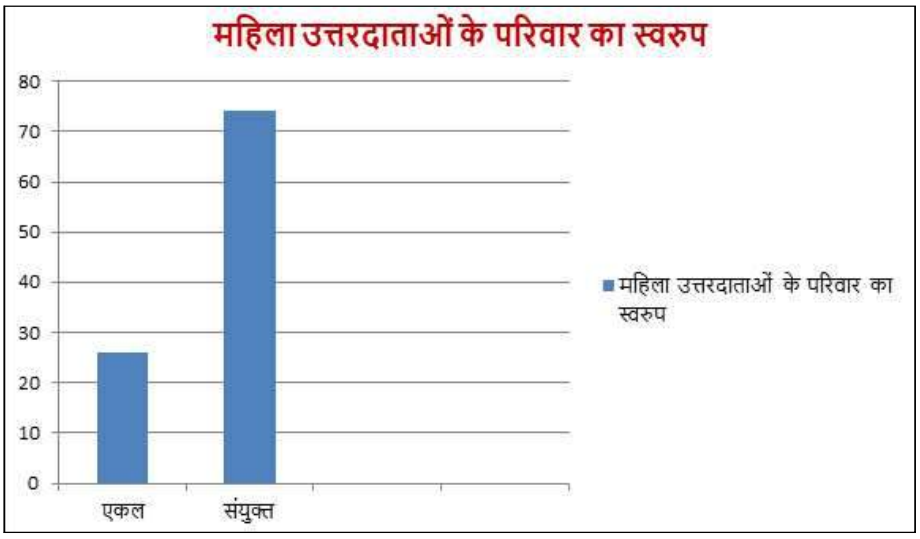
परिवार का स्वरूप- परिवार एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जो आपसी सहयोग व समन्वय से क्रियान्वित होती है और जिसके समस्त सदस्य आपस में मिलकर अपना जीवन प्रेम, स्नेह एवं भाईचारा पूर्वक निर्वाह करते हैं। संस्कार, मर्यादा, सम्मान, समर्पण, आदर, अनुशासन आदि किसी भी सुखी-संपन्न एवं खुशहाल परिवार के गुण होते हैं। कोई भी व्यक्ति परिवार में ही जन्म लेता है, उसी से उसकी पहचान होती है और परिवार से ही अच्छे-बुरे कार्यों का ज्ञान उसे होता है। परिवार सभी लोगों को जोड़े रखता है और दु:ख-सुख में सभी एक-दूसरे का साथ देते हैं। कहते हैं कि परिवार से बड़ा कोई धन नहीं होता हैं, पिता से बड़ा कोई सलाहकार नहीं होता हैं, मां के आंचल से बड़ी कोई दुनिया नहीं, भाई से अच्छा कोई भागीदार नहीं, बहन से बड़ा कोई शुभ चिंतक नहीं, इसलिए परिवार के बिना जीवन की कल्पना करना कठिन है। एक अच्छा परिवार बच्चे के चरित्र निर्माण से लेकर व्यक्ति की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार दो प्रकार के होते हैं। एक एकाकी परिवार और दूसरा संयुक्त परिवार। भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की धारणा रही है। संयुक्त परिवार में वृद्धों को संबल प्रदान होता रहा है और उनके अनुभव व ज्ञान से युवा व बाल पीढ़ी लाभान्वित होती रही है।[7] अध्ययन क्षेत्र में महिला उत्तरदाताओं के परिवार के स्वरूप के संबंध में तथ्य एकत्रित किए गए जिन्हें सारणी में प्रस्तुत किया जा रहा है-

सारणी क्र.03

महिला उत्तरदाताओं के परिवार का स्वरुप

क्र.	परिवार का स्वरुप	आवृति	प्रतिशत
01	एकल	40	26
02	संयुक्त	110	74
	योग	150	100

उक्त स्थिति को हम नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत कर रहे हैं-



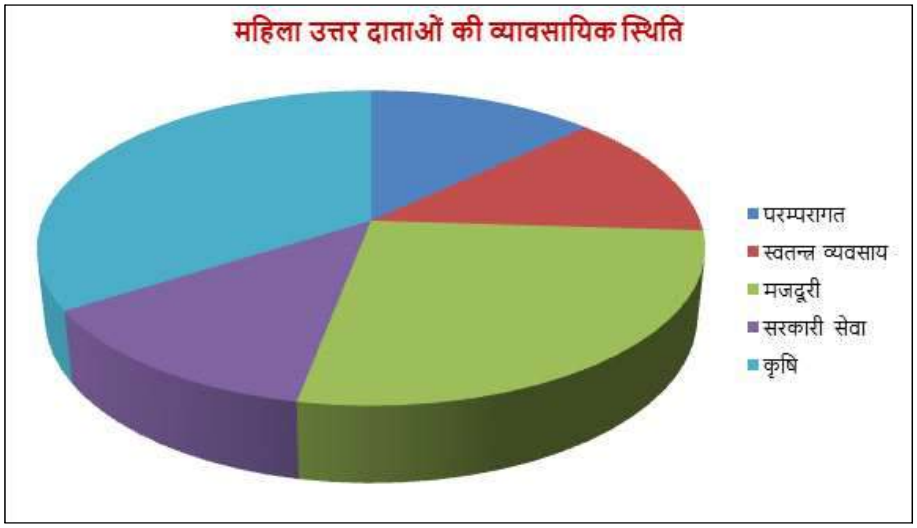
उपरोक्त सारणी एवं डायग्राम के विश्लेषण करने से यह तथ्य सामने आता है की अध्ययन क्षेत्र ग्राम ग्राम कोठी में आज भी जहां वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति तेजी से अपने पैर फैला रही है, इस स्थिति में वहां 74 प्रतिशत परिवार संयुक्त पाए गए हैं और जबकि 26 प्रतिशत परिवारों की स्थिति एकल रही है, जो यह दर्शाती है कि भारतीय संस्कृति की मूल धारणा जो परिवार के संबंध में रही है वह ग्राम कोठी में दिखाई देती है। उपरोक्त विश्लेषण से उपकल्पना क्रमांक 01 पूर्णतया सिद्ध होती है।

सारणी क्र.04

महिला उत्तर दाताओं की व्यावसायिक स्थिति

क्र.	व्यवसाय	आवृति	प्रतिशत
01	परम्परागत	20	13
	स्वतन्त्र व्यवसाय	20	13
02	मजदूरी	40	27
03	सरकारी सेवा	20	13
04	कृषि	50	34
	योग	150	100

उक्त स्थिति को हम नीचे पाई डायग्राम में प्रस्तुत कर रहे हैं-



अध्ययन क्षेत्र में महिला उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति के संबंध में साक्षात्कार के दौरान तथ्य एकत्रित किए गए और उसमें यह पाया गया कि 13 प्रतिशत महिलाएं परंपरागत व्यवसाय में, 13 प्रतिशत स्वतंत्र व्यवसाय में, 27 प्रतिशत मजदूरी के कार्य में, 13 प्रतिशत सरकारी सेवा में जो उच्च शिक्षा प्राप्त थी और 34 प्रतिशत महिलाएं कृषि के कार्यों में संलग्न है। अध्ययन क्षेत्र में महिला उत्तरदाताओं की व्यवसाय की स्थिति अच्छी पाए जाने का मूल कारण यह रहा है कि यहां महिलाओं में साक्षरता दर अच्छी है। महिलाएं सोचने और समझने में तत्पर है। अपने परिवार के भविष्य के प्रति सजग हैं। उक्त विश्लेषण से उपकल्पना क्रमांक 02 भी शत-प्रतिशत सिद्ध होती है।

परंपरागत सामाजिक स्थिति में बदलाव- अध्ययन क्षेत्र में सामाजिक गतिशीलता के संदर्भ में यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या उत्तरदाता महिलाओं की परंपरागत

सामाजिक स्थिति में बदलाव आया है। साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी क्र.05
परंपरागत सामाजिक स्थिति में बदलाव

क्र.	सामाजिक स्थिति	क्या सामाजिक स्थिति में बदलाव आया है			
		हां	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
01	जातीय स्थिति में परिवर्तन	110	73	40	27
02	खान पान के नियमों में परिवर्तन	120	80	30	20
03	सामाजिक साहचर्य में परिवर्तन	90	60	60	40
04	स्वतंत्रता के संबंध में परिवर्तन	100	67	50	33

उपरोक्त सारणी में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं–

जातीय स्थिति के परिवर्तन के संबंध में 73 प्रतिशत महिला उत्तरदाता यह मानती हैं की परिवर्तन आया है तथा 27 प्रतिशत महिलाएं यह मानती हैं कि अभी भी जातीय स्थिति के संबंध में परंपरागत नियमों का पालन समाज में हो रहा है।

- खानपान के नियमों के संबंध में 80 प्रतिशत महिलाओं ने यह स्वीकार किया है कि अब पुराने परंपरागत नियम खानपान के संबंध में प्रचलित नहीं है, जबकि 20 प्रतिशत उत्तर दाताओं ने यह स्वीकार किया है कि अभी भी अध्ययन क्षेत्र में खानपान के परंपरागत नियमों का पालन किया जाता है।
- सामाजिक साहचर्य में परिवर्तन के संबंध में 60 प्रतिशत महिलाएं यह स्वीकार करती हैं कि सामाजिक साहचर्य के संबंध में परंपरागत स्थिति में परिवर्तन आया है, जबकि 40 प्रतिशत महिलाएं यह कहती हैं कि स्थिति अब भी वैसी ही है जैसी पहले थी। उक्त विश्लेषण से उपकल्पना क्रमांक 03 आंशिक रूप से सिद्ध होती है।
- महिलाओं के अधिकारों के संबंध में जब उत्तरदाताओं से बात की गई तो 67 प्रतिशत महिला उत्तरदाता यह स्वीकार करती हैं कि उन्हें अधिकांश अधिकार प्राप्त हैं और वह निर्णय लेने में सक्षम हैं। कभी–कभी निर्णय लेने के संबंध में अपने परिवारजनों से सलाह– मशविरा जरूर करती हैं लेकिन 33 प्रतिशत महिलाएं यह मानती हैं कि अब भी उनके अधिकार सीमित हैं।

परिवार में विवाह का स्वरूप- विवाह, जिसे शादी भी कहा जाता है, दो लोगों के बीच एक सामाजिक या धार्मिक मान्यता प्राप्त मिलन है जो उन लोगों के बीच, साथ ही उनके और किसी भी परिणामी जैविक या दत्तक बच्चों तथा समधियों के बीच अधिकारों और दायित्वों को स्थापित करता है। विवाह की परिभाषा न केवल संस्कृतियों और धर्मों के बीच, बल्कि किसी भी संस्कृति और धर्म के इतिहास में भी दुनिया भर में बदलती है। आमतौर पर यह मुख्य रूप से एक संस्थान है, जिसमें पारस्परिक संबंध, आमतौर पर यौन संबंध स्वीकार किए जाते हैं या संस्वीकृत होते हैं।[7] वर्तमान में विवाह के स्वरूप पर बात करें तो अपनी सहमति से, विवाह के बिना लिव–इन–रिलेशनशीप में रहना हो, बिना गर्भ धारण किये सरोगेट माँ बनना हो या बिना ब्याह किये सिंगल पेरेंट बनना हो, यह कुछ ऐसी

घटनायें हैं, जो हमें विवाह के बदलते स्वरूप की और इशारा करती है कि पिता बनने के लिए जरूरी नहीं है कि शादी ही की जाये। हालाँकि पश्चिम ने तो इस अवधारणा को पहले ही स्वीकार कर लिया था। इससे तो विवाह नामक संस्था ही बिखर जायेगी, समाज में अनाचार फैलेगा, अवैध बच्चे पैदा होंगे, वर्ण संकर पैदा होंगे जिनकी बुद्धि सीमित होगी। इस तरह के कई सवाल भी खड़े हुए है।[8] अध्ययन क्षेत्र में इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास किया गया और जो तथ्य सामने आए उन्हें तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी क्र.06
परिवार में विवाह का स्वरूप

क्र.	विवाह का स्वरूप	क्या विवाह के स्वरूप में बदलाव आया है			
		हां	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
01	जातीय विवाह	110	73	40	27
02	अंतरजातीय विवाह	38	25	112	75
03	लिव इन रिलेशनशिप	08	05	142	95

अध्ययन क्षेत्र में उत्तरदाता महिलाओं का विवाह के प्रति क्या दृष्टिकोण है, इस संबंध में तथ्यों का एकत्रीकरण किया गया जो तथ्य प्राप्त हुए उनसे यह स्पष्ट होता है कि 73 प्रतिशत महिला उत्तरदाता अभी भी अपनी ही जाति में विवाह करना पसंद करती हैं, जबकि 27 प्रतिशत उत्तरदाता महिला जातीय विवाह के विरुद्ध विचार रखती हैं। 38 प्रतिशत महिलाओं ने अंतरजातीय विवाह का समर्थन किया है, जबकि 75 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं ने अंतरजातीय विवाह के विरुद्ध बात कही है। लिव इन रिलेशनशिप के प्रश्न पर 05 प्रतिशत महिलाएं सहमति दर्ज कराती हैं, जबकि 95 प्रतिशत महिलाएं इस संबंध में अपनी असहमति दर्ज कराती है। उपरोक्त विश्लेषण से उपकल्पना क्रमांक 04 असत्य साबित होती है।

निष्कर्ष- प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन के दौरान ग्रामीण समाज में महिलाओं की शैक्षणिक स्थित अच्छी है। अधिकांश ग्रामीण महिलाए साक्षर है। शोध के निष्कर्ष इस प्रकार रहे हैं-

- कोठी में पुरुष साक्षरता 84.05 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता दर 63.27 प्रतिशत है।
- अध्ययन क्षेत्र ग्राम कोठी में महिला साक्षरता की दर 63.27 प्रतिशत है। उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति से प्राप्त तथ्य यह बताते हैं कि 33 प्रतिशत निरक्षर, 33 प्रतिशत प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त, 17 प्रतिशत माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त, 10 प्रतिशत हाई स्कूल तक की शिक्षा प्राप्त और 07 प्रतिशत महिला उत्तरदाता उच्च शिक्षा प्राप्त करती हुई पाई गई है।
- अध्ययन क्षेत्र ग्राम कोठी में आज भी जहां वर्तमान भौतिकवादी संस्कृति तेजी से अपने पैर फैला रही है, इस स्थिति में वहां 74 प्रतिशत परिवार संयुक्त पाए गए हैं और जबकि 26 प्रतिशत परिवारों की स्थिति एकल रही है, जो यह दर्शाती है कि भारतीय संस्कृति की मूल धारणा जो परिवार के संबंध में रही है वह ग्राम कोठी में दिखाई देती है।
- महिला उत्तरदाताओं की व्यावसायिक स्थिति के संबंध में साक्षात्कार के दौरान

तथ्य एकत्रित किए गए और उसमें यह पाया गया कि 13 प्रतिशत महिलाएं परंपरागत व्यवसाय में, 13 प्रतिशत स्वतंत्र व्यवसाय में, 27 प्रतिशत मजदूरी के कार्य में, 13 प्रतिशत सरकारी सेवा में जो उच्च शिक्षा प्राप्त थी और 34 प्रतिशत महिलाएं कृषि के कार्यों में संलग्न है।

- 73 प्रतिशत महिला उत्तरदाता अभी भी अपनी ही जाति में विवाह करना पसंद करती हैं, जबकि 27 प्रतिशत उत्तरदाता महिला जातीय विवाह के विरुद्ध विचार रखती हैं। 38 प्रतिशत महिलाओं ने अंतरजातीय विवाह का समर्थन किया है, जबकि 75 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं ने अंतरजातीय विवाह के विरुद्ध बात कही है। लिव इन रिलेशनशिप के प्रश्न पर 05 प्रतिशत महिलाएं सहमति दर्ज कराती हैं, जबकि 95 प्रतिशत महिलाएं इस संबंध में अपनी असहमति दर्ज कराती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. https://hi.wikipedia.org/wiki
2. सुमन,श्रद्धा – अनुसूचित जाति की महिलाओं के उत्पीड़न के सामाजिक प्रभाव, राधाकमल मुकर्जी चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 01 जनवरी–जून–2014 पृ.स. 153
3. वर्मा, अमित कुमार – ग्रामीण समाज मे दलितो की स्थिति: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, राधाकमल मुकर्जी, चिन्तन परम्परा ,वर्ष 14 अंक 2 जुलाई– दिसम्बर 2012 पृ.स.–120
4. अहमद शकील – अनूसूचित जातीय महिला नेतृत्व की राजनीतिक अभिरूचि एवं सजगता, राधाकमल मुकर्जी: चिन्तन परम्परा वर्ष 16 अंक 2 जुलाई–दिसम्बर 2014 पृ.स. 62
5. शुक्ल अखिलेश, महिला सशक्तिकरण दशा एवं दिशा, सेंटर फॉर रिसर्च स्टडी, रीवा 2016, पृ.स. 108
6. ttps://wwwprabhasakshi.com/currentaffairs/importance&of& family&and &its&changing&nature
7. https://hi-wikipedia-org
8. https://www-jankipul-com

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

सोशल मीडिया का ज्यादा उपयोग किशोर बच्चों के संवेगात्मक व्यवहारों पर पड़ने वाला प्रभाव

• ज्योति बाला चौबे

सारांश- हमारे किशोर बच्चों के सांवेगिक व्यवहारों को सोशल मीडिया की डिजिटल- टेक्नालॉजी ने कई मायनों में प्रभावित किया है। सोशल मीडिया का उपयोग बच्चों को सकारात्मक के साथ साथ प्रतिकूल रूप से भी प्रभावित करने की क्षमतायें रखता है, जहाँ एक ओर यह सीमित उपयोग द्वारा किशोरों को विचार अभिव्यक्तियों, नवीन ज्ञान-विज्ञान एवं आधुनिक तकनीकों से जुड़ने के अवसर प्रदान करता है वहीं इसका अधिकतम उपयोग बच्चों मे भावनात्मक अस्थिरता व असंतुलन उत्पन्न कर रहा है। अमेरिकन एकेदमी ऑफ चाइल्ड व एडोलेसेंट सायकियाट्री (AACAP - aacap-org) के अनुसार अद्यतन सर्वेक्षण में बताया गया है कि 13 से 17 वर्ष की आयु के 95 प्रतिशत बच्चे सक्रिय सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं और वे 8 से 9 घंटे ऑनलाइन रहते हैं।सोशल मीडिया के अधिक उपयोग के प्रभाव पर हुये अनेक अध्ययन मे बताते हैं कि फेसबुक, ट्विटर, इन्स्टाग्राम आदि साइटों पर ज्यादा समय व्यतीत करने वाले किशोर बच्चों में चिंता, तनाव व अवसाद के लक्षण उत्पन्न होने की संभावनायें बढ़ जाती हैं।

मुख्य शब्द- किशोर, संवेग, सोशल मीडिया, फोमो

सोशल मीडिया का किशोर बच्चों के संवेगात्मक व्यवहार पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जबकि इसके कई सकारात्मक पहलू हैं, नकारात्मक प्रभावों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। उचित मार्गदर्शन और शिक्षा के माध्यम से, किशोरों को सोशल मीडिया का स्वस्थ और संतुलित उपयोग सिखाया जा सकता है, जिससे उनके मानसिक और संवेगात्मक विकास में सहायता मिल सके।

उद्देश्य-

- प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य यह जानना है कि किशोर बच्चे सोशल प्लेटफॉर्म का कितनी अवधि तक उपयोग कर रहे हैं।
- सोशल मीडिया से किशोरों के सांवेगिक व्यवहार किस प्रकार प्रभावित हो रहे हैं।
- किशोर बच्चों को सांवेगिक रूप से स्वस्थ बनाना, ताकि वे समाज से जुड़ सकें एवं अपनी व समाज की प्रगति में योगदान दे सकें।

• असि. प्रोफेसर मानव विकास (गृ.वि.) महिला महविद्यालय, सेक्टर-9, भिलाई

मेथेडालॉजी- 13 वर्ष से 19 वर्ष की आयु के किशोर- बच्चे जिसमें लड़के-लड़कियाँ शामिल थे का स्ट्रक्चर्ड इंटरव्यू मेथड से साक्षात्कार लिया गया।

हायपोथीसिस- सोशल मीडिया प्लेटफार्मस का ज्यादा उपयोग किशोर बच्चों के संवेगात्मक व्यवहारों को प्रभावित कर रहा है एवं किशोरों की कौन कौन सी भावनायें प्रभावित होकर उनके संवेगात्मक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं, इस शोध की परिकल्पना रही है।

परिचय- मानव जीवन की अत्यंत संवेदनशील किंतु महत्वपूर्ण अवस्था किशोरावस्था को माना जाता है इसे जीवन का बसंत काल या गोल्डन पीरियेड भी कहा जाता है। किशोर बच्चे वे बच्चे हैं जिन्होंने अपने जीवन के 19 वर्ष पूर्ण नहीं किये हैं। जे. जे. एक्ट 2000 की धारा 2 के अनुसार अठारह वर्ष से कम आयु के लड़के लड़कियों को किशोर माना गया है।

किशोरावस्था को अंग्रेजी में "एडोलेसेंस" (Adolescece) कहा जाता है। एडोलेसेंस लैटिन शब्द एडोलेसीयर (Adolescere) से उपन्न हुआ है जिसका अर्थ है "परिपक्वता की ओर बढ़ना" या परिपक्व होने के लिये बढ़ना है। इस अवस्था को बाल्यावस्था एवं वयस्कावस्था के माध्यमिक चरण के रूप में अर्थात 12 ब'ं से 19 वर्ष की आयु के बीच की अवस्था माना जाता है।

इमोशन (Emotion) शब्द लैटिन के इमोवर Emover से बना है। जिसका अर्थ है, स्थान से हिला देना, उथल पुथल मचा देना। (To move out or To Stir up) संवेग हमारे भावात्मक व्यवहार होते हैं जो, कि हर्ष, विषाद, भय, चिंता, तनाव, निराशाओं के रूप में महसूस किये जाते हैं।

सोशल मीडिया सूचनाओं को प्रदान करने वाली एवं ग्रहण करने वाली एक ऐसी डिजिटल प्रौद्योगिकी है जो आभासी नेटवर्क एवं समुदायों (ग्रुप्स) के माध्यम से लिखित सामग्री सहित, दृश्य एवं श्रव्य सूचनाओं का एवं विचारों को साझा करने की सुविधा प्रदान करती है।

सोशल मीडिया की सामग्री को लाइक करके, शेयर व टिप्पणी के द्वारा एवं चर्चा के माध्यम से तथा अपने कमेंट्स को जरूरत के अनुसार एक दूसरे को भेजकर सहभागिता को बढ़ावा दिया जाता है। हमारे किशोर बच्चे आधुनिक समय में सोशल मीडिया पर बहुत अधिक समय बिता रहे हैं आइये तालिका के द्वारा अलग अलग सोशल मीडिया के प्रकारों एवं अलग अलग मीडिया प्लेटफार्मो को देखते हैं- जिनका ज्यादा उपयोग किशोर बच्चे कर रहे हैं।

सोशल मीडिया के प्रकार व संबंधित प्लेटफॉर्म

क्र.	सोशल मीडिया	प्लेटफार्म
1.	सोशल नेटवर्क	फेसबुक ट्विटर, इन्स्टाग्राम, स्नैपचैट
2.	मीडिया साझेदारी	व्हाटसप, इन्स्टाग्राम यूं टचूब, टिकट,क
3.	ब्लॉगिंग	वर्डप्रेस, विकीपीडिया
4.	चर्चा एवं मंच	रेडिट, ट्विटर
5.	फिटनेस एवं जीवनशैली	फिटबिट

शोध-आलेख में यह ज्ञात किया गया कि कौन से कारण हैं जिनके फलस्वरूप

किशोर सोशल मीडिया पर अपना समय ज्यादा व्यतीत करते हैं।

सोशल प्लेटफॉर्म का ज्यादा उपयोग क्यों- सभी किशोरों ने बताया कि वे अन्य लोगों से सामाजिक रूप से जुड़ने की बजाय इस डिजिटल टेक्नीक के खातों के माध्यम से, अपने सहपाठियों एवं अन्य लोगों के लगातार संपर्क में रहना पसंद करते हैं। उन्हें महसूस होता है कि वे सब साथ हैं एवं सुरक्षित हैं।

अधिकांश किशोर बच्चे अपनी ऑनलाइन पहचान बनाने मे ज्यादा रुचि लेते हैं इसलिये वे उसमें घंटों समय बिताते हैं क्योंकि वे स्वयं की एक आदर्श छवि दूसरो के सामने पेश करना चाहते हैं किशोर लड़कियाँ अपनी अच्छी फोटो या तस्वीर छांटती हैं एवं इस बात से परेशान रहती हैं कि वे कौन सी पोस्ट करें। जबकि किशोर लड़के– अपने आप को स्टाइलिश तरीके से अपनी आकर्षक पोस्ट डालने का प्रयास करते हैं। समूह के सदस्यों से सवाल, जवाब, तर्क, वितर्क, शिकायतों आदि मे वे इतने व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें समय सीमा का अंदाज भी नहीं रहता है।

किशोरों में सोशल प्लेटफार्म के उपयोग की अवधि- लगभग सभी किशोर बच्चों ने बताया कि सुबह उठकर सबसे पहले वे सभी, पोस्ट एवं मेसेजेस चेक करते हैं। यहाँ तक की नाश्ते के वक्त भी। क्लासेस की अवधि को छोड़कर शेष समय स्वयं को सोशल प्लेटफार्मस पर व्यस्त रखते हैं इस दौरान उन्हें यदि अभिभावक किसी कार्यवश आवाज भी देते हैं तो उनका जवाब होता है– मैं अपने काम में व्यस्त हूँ डिस्टर्ब ना कीजिये। सभी किशोरों ने बताया कि वे औसतन कम से कम पाँच से छै घंटे एवं अधिकतम इससे ज्यादा समय सोशल मीडिया पर रहते हैं।

सांवेगिक व्यवहारों पर प्रभाव:परिणाम- संरचित साक्षात्कार में पाया गया कि सभी किशोर बच्चों के पास स्मार्टफोन्स हैं जिनका वे भरपूर उपयोग करते है किशोरों से ली गई जानकारी के अनुसार उनके संवेगों में निम्नलिखित व्यवहार देखे गये –

आत्म- छवि पर प्रभाव एवं हीनता- इस आयु में किशोर स्वयं को सुंदर एवं स्मार्ट दिखाने की होड़ में लगे रहते है लगभग 45 प्रतिशत किशोर बच्चों ने बताया कि वे ग्रुप्स मे स्वयं की आदर्श छवि बनाकर पोस्ट करते हैं भले वास्तविकता वैसी ना भी हो । यही कारण होता है कि उन पर हमेशा स्वयं को एक आकर्षक व्यक्ति के रूप में दिखाने का दबाव बना रहता है उन्हें हीनता का अनुभव भी होता है सुंदर पोस्ट देखकर।

इंटरव्यू में किशोरों ने बताया कि अन्य लोगो को देखकर उनने अपनी तुलना दूसरों से करनी शुरू कर दी थी। किशोर अक्सर विभिन्न फीड स्क्रॉल करके देखने रहते हैं जब वे देखते हैं कि हर कोई अच्छा दिख रहा है तो वे अपने वास्तविक आदर्शो से दूर होने लगते हैं एवं भ्रामक प्रोफाइलों एवं विचारों में रहने लगते हैं एवं वास्तविक सोच आने पर हीन महसूस करते हैं। डॉ. स्टीनर अडायन कहते हैं कि बच्चे जितना ज्यादा समय दिखावा करने में लगायेंगे वे अपनी आत्म छबि का सही मूल्यांकन करने से दूर होते जायेंगे।(चाईल्ड माइंड इन्स्टीट्यूट)

असुरक्षित महसूस करना- साक्षात्कार में किशोरों ने बताया कि उनमें से कोई भी यह नहीं चाहता कि उनकी ऑनलाइन गतिविधियों में कोई दखल दे वे इस मामले में प्राइवेसी चाहते हैं, जबकि प्रत्येक माता पिता बच्चो की सुरक्षा के प्रति चिंतित व आशंकित रहते हैं।

इस नाजुक अवस्था में कभी कभी किशोर अपनी उत्सुकताओं वश गलत वीडियोज, भ्रामक विज्ञापनों एवं गलत ऐपस के चक्कर में पड़ जाते हैं और जब वे स्वयं असुरक्षित महसूस करने लगते हैं तब वे अपने वयस्कों से यह शेयर करते हैं एवं मन में उनके डर बैठ जाता है कि कहीं वे दोबारा ऐसी गलती ना कर बैठें। प्रस्तुत शोध में 25 प्रतिशत बच्चों ने अपने आप के असुरक्षित महसूस करने एवं गलत ऐप के चयन की गलती करना बताया।

फोमो (FOMO)- इसमें ज्यादा समय सोशल मीडिया पर रहने वाले बच्चों को प्लेटफार्म पर कुछ छूट जाने का डर हमेशा बना रहता है।

चिंता- डॉ. विक का कहना है कि बच्चे विभिन्न व्हाट्स ऐप ग्रुप से जुड़े होते हैं इन रिश्तों में अपनी उपस्थिति देना उनके लिये इतना अनिवार्य हो जाता है कि के अपने ग्रुप से हाय, हैलो किये बिना बहुत बेचैनी महसूस करते हैं। अपने ओपिनियन्स को ग्रुप में शेयर करके जहाँ एक ओर वे अंतरंगता एवं राहत महसूस करते हैं वहीं दूसरी ओर विचारों की भिन्नता एवं असामनता की वजह से वे अपने रिश्ते-कमजोर होने की सोच से चिंतित भी हो जाते हैं। किशोर बच्चों ने बताया कि वे अपने समूह से भावात्मक लगाव महसूस करते है इसलिये आपसी विवाद, भेदभावों एवं दबावों के कारण उनमें चिंता उत्पन्न होती है। अध्ययन में 20 प्रतिशत किशोरों ने उपरोक्त के अलावा समूह से वे विलग ना किये जायें इस बात से भी चिंतित होने की बात कही।

क्लीनिकल विशेषज्ञ डॉ. केथरीन स्टीनर अडायर एवं डॉ. डोना विक का कहना है कि किशोर, बच्चे अधिक चिंता व कम आत्म सम्मान के साथ बड़े हो रहे हैं। गलत फहमी एवं अपमान जनक टेक्स्ट मेसेजेस से उनकी भावनायें भी आहत हो जाती हैं। (child mind.org)

अकेलापन (Loneliness)- सोशल मीडिया एक ऐसी संचार व्यवस्था है जो सामाजिक कहलाते हुये भी सामाजिक अलगाव के लिये जिम्मेदार है सबसे कनेक्टेड रहते हुये भी व्यक्ति स्वयं को अकेला समझता है। ठीक वैसे ही जैसे लोगों की भीड़ में भी खुद को अकेला महसूस करना। हायपर कनेक्शन के बीच कभी कभी अकेलापन तब लगता है जब व्यक्ति आश्वस्तता के साथ प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा हो और टेक्स्ट मेसेजेस या पोस्ट द्वारा प्रतिक्रिया नहीं प्राप्त होती है तब ये रिक्तता या शून्यता, अकेलापन महसूस कराती है उस समय यह शून्यता और भी बढ़ जाती है जब सापेक्ष की जगह निरपेक्ष या, फिर फीकी प्रतिक्रियायें प्राप्त होती है। परिणाम में 20 प्रतिशत किशोरों द्वारा, अकेलेपन की भावना को महसूस करना ज्ञात हुआ।

आत्म विश्वास में कमी एवं भय (Lack of self-confidence and Fear)- सोशल मीडिया किशोरों को ऐसे व्यक्तियों से बातचीत करने का या जुड़ने का मौका देता है जिनसे वे पहले कभी मिले ही नहीं होते हैं और इन्हीं कारणों से बच्चे अक्सर साइबर बुलिंग या फिर संदिग्ध सामग्रियों का शिकार बन जाते हैं। किशोर बच्चे इतने मेच्योर नहीं होते की सही निर्णय ले सकें एवं परिणामों के बारे में सोच सकें।

हेड्डी एलिसन बेंडर - न्यूरोसायकोलॉजिस्ट - (संज्ञानात्मक व्यवहार थेरेपी) के अनुसार मस्तिष्क का फ्रंटल लोब तब तक विकसित नहीं होता जब- तक हम 21 वर्ष के

नहीं हो जाते और यही तर्क, निर्णय एवं परिणामों बे बारे में सोचने को नियंत्रित करता है। हम जितने ज्यादा ऑनलाइन रहेंगे मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर उतना अधिक साइबर धोखों के मिलने का जोखिम बढ़ जाता है। अपमानजनक टिप्पणी किया जाना, डराना, धमकाना या परेशान किया जाना ये आम बातें हैं जो कि किशोरों में दहशत पैदा करके उनके आत्म विश्वास को कमजोर बनाती हैं। अध्य्यन में 30 प्रतिशत किशोर, बच्चो ने भय के फलस्वरूप अपने प्रति विश्वास को कम प्रदर्शित किया।

निराशा (Frustration)- न्यूयॉर्क प्रेस्बिटेरियन में यूथ एंग्ज़ाइटी सेंटर की सहक्लीनिकल निर्देशक ऐनी मैरी अल्बानो, पी एच.डी.- मनश्चिकित्सा व मेडिकल सायकॉलाजी की प्रोफेसर ने बताया कि- एक, औसत युवा 12 से 13 वर्ष की उम्र में सोशल एकाऊंट खोलता है। शोध से ज्ञात होता है कि जो युवा, जितना ज्यादा समय सोशल मीडिया पर बिताते हैं उतनी ही संभावना होती है कि उनमें निराशा, अलगाव एवं चिता जैसी भावनायें महसूस करने की।

हालिया अध्ययन के अनुसार सोशल मीडिया का उच्च स्तर पर उपयोग एवं निराशा व अवसाद के बीच संबंध पाया गया है। प्रस्तुत परिणामों में 40 प्रतिशत किशोर बच्चों द्वारा निराशा महसूस करना बताया गया।

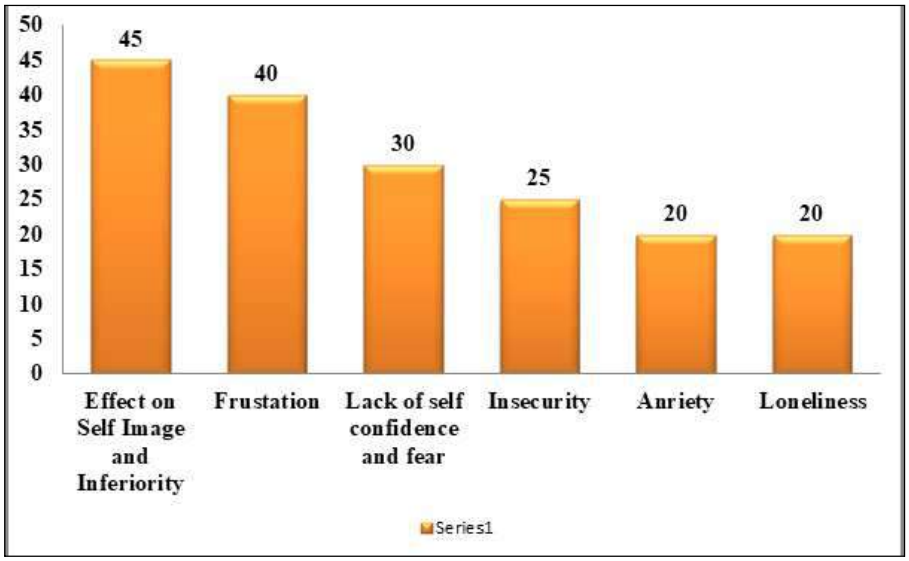
संवेगात्मक व्यवहारों पर नींद का प्रभाव- सोशल मीडिया के ज्यादा उपयोग के कारण स्क्रीन टाइम की अधिकता नींद की क्षमता को बाधिन करती है सोशल प्लेटफार्मस मस्तिष्क को उत्तेजित रखते हैं एवं किशोर देर तक जागे रहते हैं। ज्यादातर किशोर सेल फोन अपने बिस्तर पर बगल में ही रखकर सोते हैं इसमें होने वाले कंपन नींद में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। बिस्तर पर सेलफोन रखने का एक कारण फोमो भी है। अध्यनों से ज्ञात होता है कि नींद की कमी का संबंध किशोरों में निराशा, अवसाद, चिंता व तनावों सें भी है इसके लिये सोने से एक घंटे पूर्व इसका उपयोग बंद कर दिया जाना उत्तम होता है।

प्यू रिसर्च सेंटर 2022 के सर्वेक्षण के अनुसार 13 से 17 वर्ष की आयु के किशोरों का कहना था कि हम सोशल प्लेटफॉर्म पर कनेक्टेड महसूस करते हैं किंतु इसका ज्यादा उपयोग हमारे ध्यान को भटकाना है विशेषकर तब जब बुरे वीडियोज, अफवाह फैलाने वाली सूचनायें, एवं साथियों के दबाव हमारी नींद को प्रभावित करते हैं। (मेयो क्लीनिक द्वारा उल्लेखित)

मनोवैज्ञानिक स्टेनली हाल ने किशोर अवस्था को "तनाव एवं तूफान की अवस्था" बतलाया है। अवस्थागत हार्मोनल परिवर्तन किशोरों की जैविकीय जरूरत है जिसमें सोशल मीडिया का किशोरों द्वारा ज्यादा उपयोग में लाना उन के लिये आग में घीं जैसा बन जाता है। इस शोध के परिणामों से एवं विभिन्न अध्ययनों से इसे समझा जा सकता है।

APA - Psychology on Teen Research 2023/09 द्वारा सोशल मीडिया के उपयोग, किशोरों हेतु जारी (Health Advisory on Social media use in Adolescence, 2023) के द्वारा ये सिफारिश की गई है कि किशोरों को सोशल मीडिया के रिस्क से सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। इस गंभीर विषय पर हमारे लिये भी विचार करना जरुरी होगा।

Graphical Representation: - Excess use of social media and effect on emotional behavior of adolescent children.



सोशल मीडिया के उपयोग के लिए समय सीमा निर्धारित करें, ताकि किशोर अन्य महत्वपूर्ण गतिविधियों में भी भाग ले सकें। किशोरों को सोशल मीडिया का सकारात्मक और रचनात्मक उपयोग करने के लिए प्रेरित करें। सोशल मीडिया के संभावित खतरों और लाभों के बारे में शिक्षा प्रदान करें। उन्हें सिखाएं कि साइबर बुलिंग से कैसे निपटें और अपनी ऑनलाइन सुरक्षा कैसे सुनिश्चित करें। किशोरों के साथ उनकी ऑनलाइन गतिविधियों के बारे में खुली और ईमानदार बातचीत करें। उन्हें प्रोत्साहित करें कि वे किसी भी समस्या या चिंता को साझा करें। वयस्कों को स्वयं सोशल मीडिया का जिम्मेदार उपयोग करके उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. किशोर मनोविज्ञान – जरशील्ड
2. बाल मनोविज्ञान – प्रीति वर्मा
3. child mind Institute childmind.org.
4. National Library of Medicine NIN.
5. https://vikaspedia.in>child rights.
6. health matters.org
7. APA - American Psychology on teens Research 2023/9
8. AACAP-American Academy of Child and Adolescent Psychitry.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

युवाओं के आत्मगत स्वस्ति बोध पर लिंग भेद तथा आवासीय पृष्ठभूमि का प्रभाव

• अनुभा श्रीवास्तव
•• फ़हमीदा ज़ैदी

सारांश- आत्मगत स्वस्ति बोध (Subjective well-being) मानसिक स्वास्थ्य की धनात्मक दशा है, जिसमें व्यक्ति धनात्मक आत्म मूल्यांकन करता है। वर्तमान युग में चुनौतियों से भरे तनावपूर्ण जीवन में आत्मगत स्वस्ति बोध का पर्याप्त स्तर प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक कठिन कार्य बन गया है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य युवाओं में आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर पर लिंग भेद तथा आवासीय पृष्ठभूमि के प्रभाव का आंकलन करना था। अध्ययन के प्रतिदर्श में, पूर्वांचल के आजमगढ़ जनपद (उत्तर प्रदेश) के ग्रामीण तथा नगरीय अंचलों से 18 से 22 वर्षीय, 1200 युवा विद्यार्थियों (युवक तथा युवतियों) का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया था। चयनित युवाओं के आत्मगत स्वस्ति बोध का मापन करने हेतु Thakur एवं Singh (2005) द्वारा निर्मित आत्मगत स्वस्ति बोध मापनी के हिन्दी अनुकूलन का प्रयोग किया गया था। अध्ययन में विभिन्न समूहों के मध्यमानों के बीच सार्थक अन्तर ज्ञात करने हेतु टी-मूल्य की गणना SPSS (20.0) द्वारा की गई। अध्ययन के परिणामों से अग्रिम निष्कर्ष प्राप्त हुए (i) युवकों की तुलना में युवतियों में आत्मगत स्वस्ति-बोध का स्तर उच्च पाया गया (ii) ग्रामीण युवाओं की तुलना में नगरीय युवाओं में उत्तम आत्मगत स्वस्ति बोध प्राप्त हुआ (iii) नगरीय युवकों तथा ग्रामीण युवकों के आत्मगत स्वस्ति बोध की मात्रा में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया तथा (iv) ग्रामीण युवतियों की तुलना में नगरीय युवतियों में आत्मगत स्वस्ति बोध की मात्रा उच्च पाई गई।

मुख्य शब्द- आत्मगत स्वस्ति बोध, युवा, लिंग भेद, आवासीय पृष्ठभूमि

आत्मगत स्वस्ति बोध को प्राय: मनोविज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता के पर्यायवाची के रूप में उपयोग किया जाता है। आत्मगत स्वस्ति-बोध अंग्रेजी शब्द

• रिसर्च स्कॉलर, मनोविज्ञान विभाग, शिबली नेशनल पीजी कालेज, आजमगढ़ और सहायक प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, श्री अग्रसेन महिला महाविद्यालय, आजमगढ़
•• प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, शिबली नेशनल पीजी कॉलेज, आजमगढ़

Subjective Well-being (SWB) का हिन्दी अनुवाद है जिसका अभिप्राय किसी व्यक्ति की अपनी वर्तमान स्थिति के आत्मनिष्ठ मूल्यांकन से हैं। इस मूल्यांकन में जीवन के संज्ञानात्मक पक्ष (जैसे–जीवन संतुष्टि) तथा भावात्मक पक्ष/अनुभव (सुखद/दु:खद भाव) सम्मिलित होते हैं। यदि व्यक्ति में आत्मगत स्वस्ति बोध की उच्च स्थिति पाई जाती हैं तो उसमें धनात्मक संज्ञानात्मक/भावात्मक कारकों की उपस्थिति होती हैं। इस संदर्भ में Park (2004) ने कहा कि, आत्मगत स्वस्ति बोध में धनात्मक कारक समाहित होते है तथा नकारात्मक कारकों को अनुपस्थिति रहती है। Diener (1984) ने SWB को परिभाषित करते हुए कहा कि, आत्मगत स्वस्ति बोध एक बहुआयामी संप्रत्यय है जिसमें संज्ञानात्मक एवं भावात्मक पक्ष सम्मिलित है, उन्होनें बताया कि आत्मगत स्वस्ति बोध के मुख्यत: तीन तत्व होते हैं, जीवन संतुष्टि, धनात्मक भाव एवं नकारात्मक भाव। Synder तथा Lopez (2002) ने आत्मगत स्वस्ति बोध का अर्थ बताते हुए कहा कि, आत्मगत स्वस्ति बोध व्यक्ति के अपने जीवन का संज्ञानात्मक एवं भावात्मक मूल्यांकन हैं। इस मूल्यांकन में घटनाओं के प्रति संवेगात्मक प्रतिक्रियाएं, पूर्ति एवं संतुष्टि के संज्ञानात्मक निर्णय सम्मिलित होते हैं। व्यक्ति के आत्मगत स्वस्ति बोध का स्तर, आंतरिक कारकों (जैसे–व्यक्तित्व एवं व्यक्ति का दृष्टिकोण) तथा बाह्य कारकों (जैसे–समाज, संस्कृति, आर्थिक स्थिति तथा पारिवारिक स्थिति आदि) के द्वारा प्रभावित होता है। आत्मगत स्वस्ति बोध (SWB) को अनेक कारक प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से निर्धारित करते हैं। जिसमें प्रमुख निर्धारक हैं – लिंग भेद, आयु, शिक्षा, आय, विवाह, कार्य संतुष्टि, स्वास्थ्य, धर्म, जीवन घटनाएँ, निवासीय पर्यावरण, सक्षमता एवं व्यक्तित्व शीलगुण आदि। इस सम्बन्ध में पूर्व में अनेक शोध कार्य हुए है जो इन कारकों की प्रमाणिकता निर्धारित करते हैं जैसे – Easterlin (2003) ने अपने अध्ययन में आत्मगत स्वस्ति बोध पर लिंग भेद तथा आयु के प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन में युवकों की तुलना में युवतियों में प्रसन्नता का उच्च स्तर पाया गया। आयु के सम्बन्ध में इन्होनें वृद्ध पुरूषो की तुलना में वृद्ध महिलाओं में प्रसन्नता का निम्न स्तर प्राप्त किया। Ranjana (2014) ने विश्वविद्यालयीन छात्रों के आत्मगत स्वस्ति बोध पर सांवेगिक बुद्धि का प्रभाव देखने के लिए एक अध्ययन किया और परिणाम पाया कि, सांवेगिक बुद्धि का स्तर सम्पूर्ण आत्मगत स्वस्ति बोध को प्रभावित करता है। Campbell et. al. (1976) ने अमेरिकंस की स्वस्ति बोध का अध्ययन किया और पाया कि जनसांख्यकीय कारक जैसे – आयु, वेतन, एवं शिक्षा स्वस्ति बोध के लिए अधिक आवश्यक नहीं है।

प्रस्तुत अन्वेषण इस प्रश्न का उत्तर देने का एक प्रयास है कि, क्या युवाओं के आत्मगत स्वस्ति बोध का स्तर लिंग भेद तथा आवासीय पृष्ठभूमि द्वारा निर्धारित होता है? अध्ययन में आवासीय पृष्ठभूमि के SWB पर प्रभाव के परीक्षण हेतु नगरीय तथा ग्रामीण पृष्ठभूमि को तथा लिंग भेद के SWB पर प्रभाव के परीक्षण हेतु युवकों (छात्रों) तथा युवतियों (छात्राओं) को चयनित किया गया है।

उद्देश्य

1. आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर पर लिंग भेद के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. युवाओं (युवकों + युवतियों) के आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर पर आवासीय

पृष्ठभूमि के प्रभाव की जाँच करना।

3. नगरीय युवकों तथा ग्रामीण युवकों के आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर में अन्तर ज्ञात करना।
4. नगरीय युवतियों तथा ग्रामीण युवतियों के आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर में अंतर की जाँच करना।

विधि

प्रतिदर्श- प्रस्तुत अध्ययन के प्रतिदर्श में पूर्वांचल के आजमगढ़ जनपद (उत्तर प्रदेश) के ग्रामीण तथा नगरीय अंचलों से 18 से 22 वर्षीय 1200 युवा विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा किया गया। सभी विद्यार्थी स्नातक तथा स्नाकोत्तर कक्षाओं के अध्येता थे तथा मानसिक एवं शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ थे। समस्त 1200 युवाओं मे, 600 युवा नगरीय पृष्ठभूमि से तथा 600 युवा ग्रामीण पृष्ठभूमि से चयनित किये गये थे। नगरीय पृष्ठभूमि से चयनित 600 युवाओं में 300 युवक एवं 300 युवतियां सम्मिलित की गई थी। इसी प्रकार ग्रामीण पृष्ठभूमि से चयनित 600 युवाओं में 300 युवक एवं 300 युवतियां सम्मिलित थी।

तालिका संख्या 01
प्रतिदर्श विवरण

लिंग	आवासीय पृष्ठभूमि		योग
	नगरीय	ग्रामीण	
युवक	300	300	600
युवतियाँ	300	300	600
योग	600	600	1200

प्रयुक्त उपकरण- अध्ययन में सहभागियों के आत्मगत स्वस्ति बोध के मापन हेतु Thakur एवं Singh (2005) द्वारा निर्मित आत्मगत स्वस्ति बोध मापनी (हिन्दी अनुकूलन) का प्रयोग किया गया है। इसमें कुल 40 (धनात्मक एवं नकारात्मक) पद है। SWB के मापन हेतु यह एक मानकीकृत, विश्वसनीय, वैध एवं उत्तम मापनी है।

प्रदत्त संकलन प्रक्रिया- अध्ययन में आजमगढ़ के नगरीय तथा ग्रामीण अंचलों में स्थित महाविद्यालयों में शिक्षारत् छात्र तथा छात्राओं पर प्रदत्त संकलन किया गया। इस हेतु परीक्षण प्रशासन अलग-अलग महाविद्यालयों के विद्यार्थियों पर बारी-बारी से किया गया। परीक्षण प्रशासन से पूर्व सम्बन्धित महाविद्यालयों के प्राचार्यो से मिलकर उनसे प्रदत्त संकलन हेतु औपचारिक सहमति प्राप्त की गई। सहमति प्राप्ति के पश्चात् विद्यार्थियों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें छोटे-छोटे समूहों (10-15 विद्यार्थी प्रति समूह) में बॉटा गया। परीक्षण प्रशासन की औपचारिकताओं को पूर्ण करने के पश्चात् सभी समूहों पर बारी-बारी से परीक्षण को नियमत: प्रशासित कर परिक्षार्थियों के प्रतिउत्तर प्राप्त किये गये। अंत में, समस्त परीक्षार्थियों के प्रतिउत्तरों का फलांकन कर उनका वर्गीकरण तथा सारणीयन किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण- वर्तमान शोध में विभिन्न समूहों के मध्यमानों के सार्थक अन्तर को ज्ञात करने हेतु SPSS (20.0) की सहायता से टी-मूल्यों की गणना की गई। साथ ही

मध्यमान प्राप्तांकों की स्पष्ट तुलना हेतु स्तंभाकृति की सहायता से उनका रेखाचित्रीय प्रदर्शन भी किया गया।

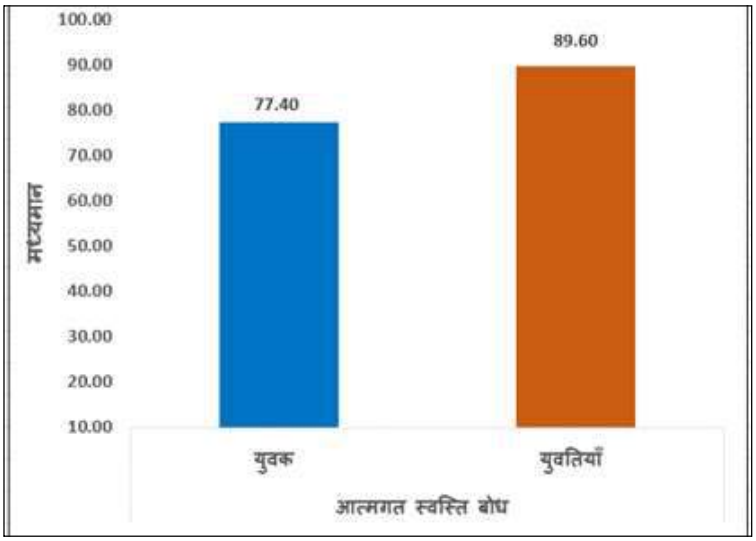
परिणाम एवं विवेचना- प्रस्तुत अनुसंधान का उद्देश्य, आत्मगत स्वस्ति बोध (SWB) पर लिंग भेद तथा आवासीय पृष्ठभूमि के प्रभाव का परीक्षण करना था। अध्ययन में सम्मिलित विभिन्न समूहों तथा उप समूहों के मध्यमानों की सांख्यिकीय तुलना कर, परिणाम प्राप्त किये गये। शोध परिणामों को क्रमशः आगे तालिकाओं में व्यक्त करते हुए उनकी व्याख्या अग्र वर्णित है–

तालिका संख्या 02
युवकों तथा युवतियों के आत्मगत स्वस्ति-बोध
के प्राप्तांकों के मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता सम्बन्धी टी - मूल्य

समूह	N	M	SD	t	P
युवक	600	77.40	20.45	11.85	0.01
युवतियाँ	600	89.60	14.75		

तालिका संख्या –2 से विदित है कि, छात्रों तथा छात्राओं के आत्मगत स्वस्ति बोध की मात्रा में अंतर सार्थक ($t = 11.85, p < 0.01$) पाया गया है। सम्बन्धित तालिका के परीक्षण से स्पष्ट है कि युवकों का SWB पर प्राप्त मध्यमान $= 77.40 \pm 20.45$ तथा युवतियों का SWB पर प्राप्ताकों का मध्यमान $= 89.60 \pm 14.75$ रहा है। निष्कर्षतः, परिणामावलोकन से अध्ययन में छात्राओं/युवतियों में, छात्रों/युवकों की तुलना में SWB की मात्रा अधिक पाए जाने की पुष्टि हुई है जिसका चित्रण स्तंभाकृति संख्या – 1 पर भी उपलब्ध है।

स्तंभाकृति संख्या 01
युवकों तथा युवतियों के आत्मगत
स्वस्ति बोध सम्बन्धी मध्यमानों की तुलना

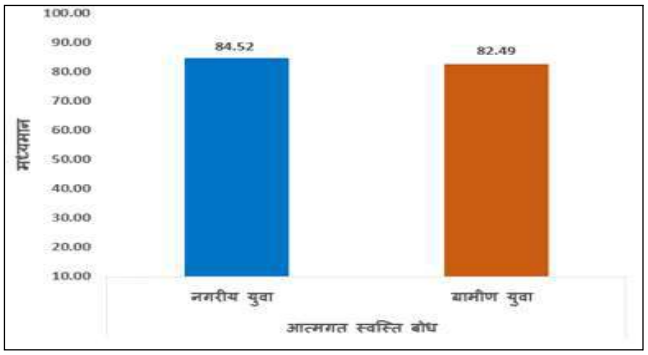


तालिका संख्या 03
नगरीय युवाओं तथा ग्रामीण युवाओं के आत्मगत स्वस्ति बोध के प्राप्तांकों के मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता सम्बन्धी टी - मूल्य

समूह	N	M	SD	t	P
नगरीय युवा (छात्र+छात्राएँ)	600	84.52	15.65	1.98	0.05
ग्रामीण युवा (छात्र+छात्राएँ)	600	82.49	19.85		

परिणाम तालिका – 3 से इस बात का अवबोध होता है कि, नगरीय तथा ग्रामीण पृष्ठभूमि में निवास करने वाले युवाओं (महिला+पुरूष) के SWB के स्तर में सार्थक अंतर ($t = 1.98, p < 0.05$) संज्ञात हुआ है। उपर्युक्त तालिका तथा स्तंभाकृति संख्या – 2 में प्रदर्शित माध्य मूल्य से साफ हो जाता है कि, ग्रामीण अंचलों के निवासी युवाओं की आत्मगत स्वस्ति बोध की मात्रा ($M = 82.49 \pm 19.85$) नगरीय क्षेत्र में निवास करने वाले युवाओं की तुलना में ($M = 84.52 \pm 15.65$) कम पाई गई है।

स्तंभाकृति संख्या 02
नगरीय युवाओं तथा ग्रामीण युवाओं के आत्मगत स्वस्ति बोध सम्बन्धी मध्यमानों की तुलना

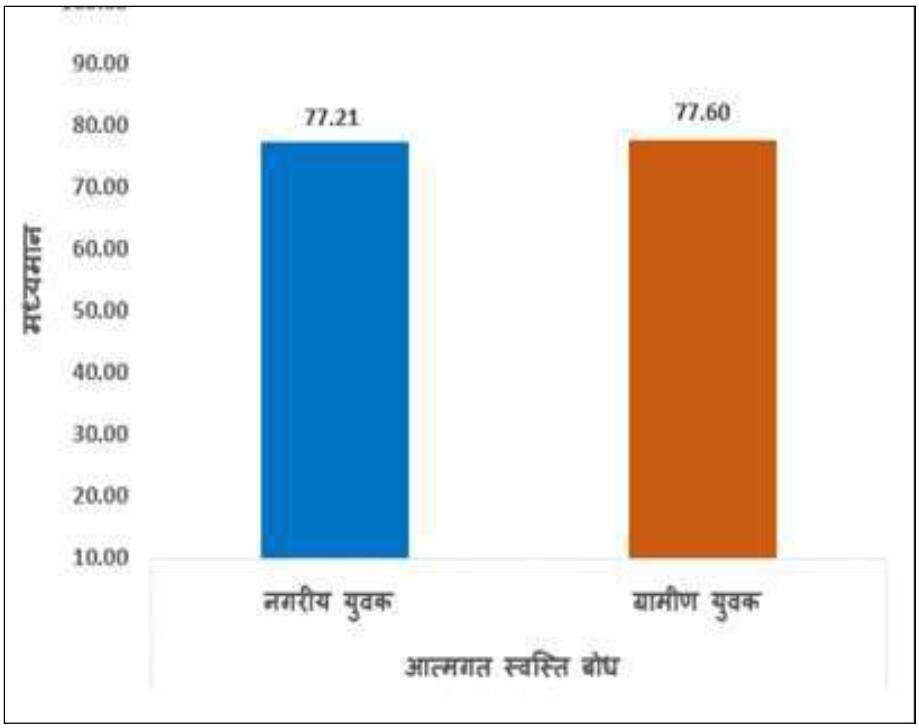


तालिका संख्या 04
नगरीय युवकों तथा ग्रामीण युवकों के आत्मगत स्वस्ति बोध के प्राप्तांकों के मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता सम्बन्धी टी - मूल्य

समूह	N	M	SD	t	P
नगरीय युवक	300	77.21	19.66	0.24	असार्थक
ग्रामीण युवक	300	77.60	21.23		

तालिका संख्या – 4 तथा स्तंभाकृति संख्या– 3 में प्रदर्शित सांख्यिकीय मूल्यों ($M_1 = 77.21 \pm 19.66$, $M_2 = 77.60 \pm 21.23$ तथा $t = 0.24$) से प्रमाणित होता है कि, नगरीय तथा ग्रामीण युवकों के SWB की मात्रा में सार्थक अंतर नहीं पाया गया है।

स्तंभाकृति संख्या 03
नगरीय युवकों तथा ग्रामीण युवकों
के आत्मगत स्वस्ति बोध सम्बन्धी मध्यमानों की तुलना

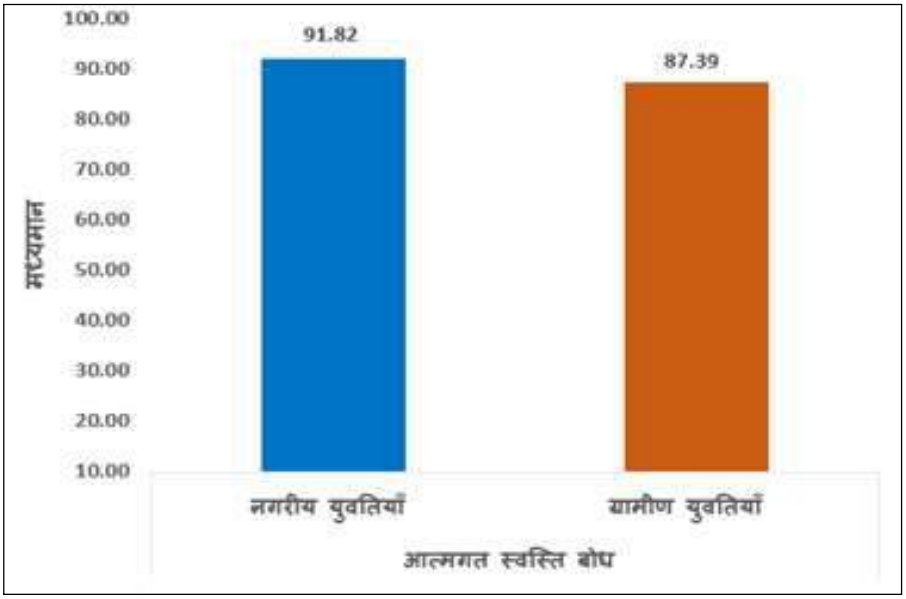


तालिका संख्या 05
नगरीय युवतियों तथा ग्रामीण युवतियों के आत्मगत स्वस्ति बोध
के प्राप्तांकों के मध्यमानों के मध्य अन्तर की सार्थकता सम्बन्धी टी - मूल्य

समूह	N	M	SD	t	P
नगरीय युवतियाँ	300	91.82	11.64	3.72	0.01
ग्रामीण युवतियाँ	300	87.39	17.05		

तालिका संख्या – 5 में उपलब्ध टी – मूल्य ($t = 3.72, p < 0.01$) के प्रकाश में नि:संदेह यह कहा जा सकता है कि, नगरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली युवतियों में आत्मगत स्वस्ति बोध का स्तर अलग–अलग पाया गया है। उक्त तालिका तथा स्तंभाकृति संख्या – 4 में लिखित मध्यमान मूल्यों से प्रमाणित है कि, ग्रामीण युवतियों ($M = 87.39 \pm 17.05$) में नगरीय युवतियों की तुलना में ($M = 91.82 \pm 11.64$) SWB की मात्रा कम पाई गई है।

स्तंभाकृति संख्या - 4
नगरीय युवतियों तथा ग्रामीण युवतियों
के आत्मगत स्वस्ति बोध सम्बन्धी मध्यमानों की तुलना



वर्तमान अध्ययन में युवकों (पुरूषों) की तुलना में युवतियों (महिलाओं) में SWB का स्तर अधिक पाया गया है। अर्थात् परिणाम में SWB पर लैंगिक विभेद का प्रभाव पाया गया है। Batz तथा Tay (2018) ने इस सम्बन्ध में अध्ययन कर SWB पर लिंग विभेद का प्रभाव प्राप्त किया है। Inglehart (2002) ने अपने शोध में आत्मगत स्वस्ति बोध पर यौन भेद का सार्थक प्रभाव पाया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि 45 वर्ष से कम उम्र की महिलाएं पुरूषों की तुलना में ज्यादा खुशहाल होती हैं। Ryff (1989) तथा Ryff एवं Keyes (1995) ने अपने शोध में महिलाओं की तुलना में पुरूषों में मनोवैज्ञानिक स्वस्ति बोध की मात्रा कम पाई। इन अध्ययनों के परिणाम वर्तमान शोध परिणाम को समर्थन प्रदान करते हैं।

वर्तमान अन्वेषण में नगरीय तथा ग्रामीण युवाओं के आत्मगत स्वस्ति बोध की मात्रा में वास्तविक विभेद पाया गया है। इसमें नगरीय युवाओं में ग्रामीण युवाओं की तुलना में आत्मगत स्वस्ति बोध का स्तर अधिक ज्ञात हुआ है। इस परिणाम को अन्य पूर्व शोधों का समर्थन प्राप्त है यथा – Singh (2011) ने अपने अध्ययन में पाया कि, ग्रामीण छात्रों की तुलना में शहरी छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है। Patel (2015) ने निवासीय स्थित के दृष्टिगत ग्रामीण तथा शहरी युवाओं पर अध्ययन कर परिणाम प्राप्त किया कि, ग्रामीणों की तुलना में नगरीय युवाओं में आत्मगत स्वस्ति बोध की मात्रा बेहतर पाई गई। Shaheen तथा Shahzeen (2016) ने भी छात्रों पर अध्ययन कर शहरी छात्रों में ग्रामीण छात्रों की तुलना में मनोवैज्ञानिक स्वस्ति बोध अधिक पाया।

वर्तमान शोध में नगरीय युवतियों तथा ग्रामीण युवतियों के SWB की मात्रा में सार्थक अंतर प्राप्त हुआ, किन्तु नगरीय युवकों तथा ग्रामीण युवकों के आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर में सार्थक अंतर प्राप्त नहीं हुआ है। इसका कारण लिंग भेद तथा आवासीय पृष्ठभूमि के मध्य अन्त:क्रिया हो सकती है।

निष्कर्ष- वर्तमान अध्ययन के परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि, प्रस्तुत अनुसंधान में (i) युवक तथा युवतियों के आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर में सार्थक अन्तर पाया गया है, (ii) नगरीय युवाओं तथा ग्रामीण युवाओं के आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर में भी सार्थक अन्तर पाया गया है, (iii) नगरीय युवकों तथा ग्रामीण युवकों के आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं प्राप्त हुआ है तथा (iv) नगरीय युवतियों एवं ग्रामीण युवतियों के आत्मगत स्वस्ति बोध के स्तर में सार्थक अन्तर प्राप्त हुआ।

अध्ययन की सीमाएं एवं भावी अनुसंधान हेतु सुझाव- सभी शोधों में कुछ न कुछ सीमाएं अवश्य होती हैं। वर्तमान अनुसंधान में भी कुछ सीमाएं निहित हैं। जैसे-(i) वर्तमान शोध में प्रतिदर्श चयन केवल आजमगढ़ के कुछ ही नगरीय तथा ग्रामीण महाविद्यालयों से किया गया था। अत: व्यापक समष्टि पर इसका सामान्यीकरण करना कठिन कार्य है। अत: परिणामों के व्यापक सामान्यीकरण हेतु भावी अध्ययनों में प्रतिदर्श क्षेत्र व्यापक होना चाहिए (ii) अध्ययन में परीक्षार्थियों की आयु 18-22 वर्ष थीं। अस्तु इसके परिणामों को सभी आयु वर्ग की जनसंख्या पर लागू नहीं किया जा सकता, इसके लिए भावी शोधों में परिक्षार्थियों की आयु विस्तार को बढ़ाना होगा। (iii) चूंकि प्रस्तुत शोध केवल स्नातक तथा स्नातकोत्तर के छात्रों पर किया गया है, अत: अध्ययन के प्राप्त परिणामों का व्यापकीकरण अन्य कक्षाओं के विद्यार्थियों पर करना संदेहास्पद हो सकता है। इस सीमा को दूर करने हेतु भविष्य अध्ययन में अन्य कक्षाओं के विद्यार्थियों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- Batz, C., & Tay, L. (2018) Gender differences in subjective well-being. *Handbook of well-being*, 1-15
- Campbell, A., Converse, P. E., & Rodgers, W. L. (1976). The quality of American life. New York, Russell Sage Foundation.
- Diener, E. (1984). Subjective well-being. *Psychological Bulletin, 95*, 542–575.
- Easterlin, R. A. (2003). Happiness of women and men in later life: Nature, determinants, and prospects. In M. J. Sirgy, D. R. Rahtz, A. Coskun-Samli (Eds.) *Advances in quality-of-life theory and research* (pp. 13-26). Dordrecht, Netherlands: Kluwer Academic.
- Inglehart, R. (2002). Gender, aging, and subjective well-being. *International Journal of Comparative Sociology, 43*, (3-5), 391-408.
- Park, N. (2004). The role of subjective well-being in positive youth development. *The Annals of the American Academy of Political and Social*

Science, 591, 25-39.

- Patel, H. A. (2015). Emotional Intelligence and Psychological Wellbeing of Adolescents. *International Journal for Technological Research in Engineering, 2*, (10), 2333-2336.
- Ranjana. (2014). The impact of emotional intelligence on subjective well-being.
  Indian Journal of Psychology and Mental Health, 1, (7), 80-89.
- Ryff, C. (1989). Happiness is everything, or is it? Explorations on the meaning of psychological well-being. *Journal of Personality and Social Psychology, 57*, 1069-1081.
- Ryff, C. D., & Keyes, C. L. M. (1995). The structure of psychological well-being revisited. *Journal of Personality and Social Psychology, 69(4)*, 719-727.
- Shaheen, S., & Shahzeen, H. (2016). Emotional intelligence in relation to psychological well-being among students. *International Journal of Indian Psychology, 3*, (4), No. 63.
- Singh, S. K. (2011). Role of emotional intelligence in occupational stress and burnout. *Indo-Indian Journal of Social Science Researches, 7*, 1, 118-125.
- Synder, C. R., & Lopez, S. J. (2002). *Handbook of Positive Psychology*.
- Thakur, G.P., & Singh, R. N. (2005). T-S Subjective Well-being Inventory. Prasad Psycho Corporation, Varanasi/ Delhi.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

योग का समग्र व सामाजिक प्रभाव

• अलका रानी

सारांश- योग दर्शन हिंदू दर्शन की एक शाखा है जो शारीरिक मुद्राओं, साँस लेने के व्यायाम, ध्यान और कई अलग-अलग शैलियों और तीव्रताओं में एक विशिष्ट दर्शन को जोड़ता है। योग दर्शन पर पतंजलि जो लगभग 2000 साल पहले भारत में रहते थे द्वारा तब योग पर 'योग सूत्र' नामक एक व्यापक ग्रंथ लिखा गया। वास्तव में, यह पुस्तक आज भी नैतिक जीवन जीने के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में उपयोग की जाती है। योग दर्शन केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, यह पूरे विश्व में प्रचलित है। योग आज पहले से कहीं अधिक लोकप्रिय हो गया है, हर दिन लाखों लोग इसका अभ्यास करते हैं। आज, यह पूरे विश्व प्रकृति की ओर वापस लौट रहा है। प्रस्तुत लेख में योग की महत्ता प्रकाश डालते हुए इसके अपनाये जाने व लाभ पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

मुख्य शब्द- योग, आयुर्वेद, प्रकृति, दर्शन

1. प्रस्तावना- योग संस्कृत के दो शब्दों 'युज' और 'आसन' से मिलकर बना है। युज का अर्थ है जुड़ना या जोड़ना, जबकि आसन का अर्थ है आसन। योगिक ज्ञान के अनुसार संक्षेप में, 'आसन' का अभ्यास मुख्य रूप से आपके अतीत के साथ आपके रिश्ते को प्रभावित करता है, 'प्राणायाम' आपके वर्तमान के साथ आपके रिश्ते को प्रभावित करता है और 'ध्यान या मेडिटेशन' मुख्य रूप से आपके भविष्य के साथ आपके रिश्ते को प्रभावित करता है। योग, एक प्राचीन संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है 'ब्रह्मंड के साथ एकता', एक व्यापक जीवन दृष्टिकोण है। उस समय भी, कई लोगों को लगा कि दुनिया बहुत तेजी से विकसित हो रही है। लोग शिकार कर रहे थे, इकट्ठा हो रहे थे और प्रजनन कर रहे थे जिसे उस समय तीव्र गति माना जाता था। सभी अराजकता की प्रतिक्रिया के रूप में, प्राचीन ऋषियों, या सत्य के द्रष्टाओं ने, व्यक्ति को प्रकृति के संपर्क में वापस लाने के लिए प्रथाओं को तैयार किया। फिर उन्होंने इन सच्चाइयों को उन लोगों को सिखाया जो अधिक शांतिपूर्ण अस्तित्व की तलाश में थे। बाद में जैसे-जैसे भारत पर मुस्लिम आक्रमण हुआ और जैसे-जैसे शिक्षक और छात्र भारत से बाहर पूर्वी दुनिया के अन्य हिस्सों में जाने लगे, योग का प्रसार शुरू हो गया। 1800 के दशक में, योग का अभ्यास यूरोप और उत्तरी अमेरिका में फैल गया। जब ब्रिटिश विद्वान संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद

• प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, मदरहुड विश्वविद्यालय, रूडकी (हरिद्वार)

करने लगे तो वे प्राचीन हिंदू शिक्षाओं से मंत्रमुग्ध हो गए। जैसे–जैसे लेखन में रुचि बढ़ी, पवित्र पुरुषों या स्वामियों ने पूरे यूरोप और उत्तरी अमेरिका में सम्मेलनों और विश्वविद्यालयों में भाग लिया। वे ज्ञानोदय के अपने इस संस्करण पश्चिमी दुनिया में लेकर आये।

2. वास्तव में योग क्या है- योग की परिभाषा देते हुए पतंजलि कहते है, "योगचित्त वृत्ति निरोध:" अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना योग है। यहां चित्त, वृत्ति एवं निरोध ये तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं। चित्त से अभिप्राय यहाँ अन्त:करण (मन, बुद्धि और अंहकार) से लिया गया है। चित्त शब्द का मन के पर्याय के रुप में भी प्रयोग किया जाता है। चित्त सत्व प्रधान प्रकृति का परिणाम है। अर्थात् प्रकृति के परिणामों में सबसे अधिक सत्व का उदय चित्त में होता है। चित्त प्राकृत होने से जड़ और प्रतिक्षण परिणामशील है। यह चित्त सत्व, रज और तम की अधिकता के कारण क्रमश: तीन प्रकार का होता है–प्रज्ञाशील चित्त, प्रवृत्तिशील चित्त तथा स्थितिशील चित्त। प्रज्ञा (ज्ञान) रूप चित्त सत्व, रज और तम से संतुष्ट होने पर ऐश्वर्य और शब्दादि विषयों का प्रेमी बनता है। तम से युक्त होने पर यही चित्त अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य से व्याप्त हो जाता है। तम क्षीण होने पर रज के अंश से युक्त होने पर चित्त सर्वत्र प्रद्योतमान होता है और धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य से युक्त होता है।

योग की परिभाषा में दूसरा शब्द वृत्ति है। वृत्ति का अर्थ बताते हुए महर्षि व्यास कहते हैं "वृत्तय: चित्त परिणाम विशेषा:" अर्थात् चित्त का परिणाम विशेष ही चित्त की वृत्तियाँ हैं, जब चित्त अपने मूल रुप को छोड़कर विषयों के सम्पर्क में जाकर उनके आकार का होता रहता है तो उसे ही चित्त का परिणाम कहा जाता है। शास्त्रों में चित्त को स्वच्छ दर्पण या शुद्ध स्फटिक के समान बताया गया है, वह जिस भी विषय के सम्पर्क में होता है उसी का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ता है। चित्त का विषयाकार होना ही उसकी वृत्ति है। या साधारण शब्दों में कहें तो यही चित्त में उत्पन होने वाले विचार हैं।

वृत्तियाँ जब चित्त में उत्पन्न होकर क्षय प्राप्त कर लेती है, तब ये पूर्णतया समाप्त नहीं होती अपितु उनका सूक्ष्म रुप संस्कार के रुप में विद्यमान रहता है। जैसे पृथ्वी में किसी वृक्ष की जड़ या बीज विद्यमान होते हैं और अनुकूल परिस्थितियां आने पर वही उगकर पुन: वृक्ष का रुप धारण कर लेते हैं, वैसे ही वृत्तियों के संस्कार रुपी बीज अपने अनुकूल विषय के उपस्थित होने पर वृत्तियों का रुप धारण कर लेते हैं। वृत्ति से संस्कार और संस्कार से वृत्ति यह चक्र संसार रुपी सागर में चलता रहता है तो जीवात्मा सुखी–दु:खी होता रहता है। यही जीवात्मा के दु:ख का बन्धन का कारण है। इस बन्धन को योग के द्वारा ही काटा जा सकता है। वृत्तियों का निरोध हो जाने पर द्रष्टा अर्थात् जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। यही वास्तव में पूर्ण स्वस्थता है। अर्थात जो भी आपको अमिमत हो उसका ध्यान करें तो आपके चित्त के विक्षेप दूर हो जायेगें। ध्यान के अभ्यास से हमारा चित्त (मन) निर्मल होता है। और चित्त के निर्मल होते ही हमारी व्याधियां भी दूर हो जाती है।

3. योग की प्रक्रिया- योग – आपका अतीत, वर्तमान और भविष्य है। यदि आप ध्यान से अपने योग अभ्यास को देखें– आसन का अभ्यास आपको आपके भौतिक शरीर से

जोड़ता है, प्राणायाम आपकी सांस और मन से जोड़ता है, और ध्यान आपको अपने मन से परे जाने में मदद करता है। लेकिन ध्यान रखें कि आसन आवश्यक रूप से योग नहीं है। आज योग की कई शैलियाँ अलग-अलग कारणों से फैंसी नामों के साथ उपलब्ध हैं। तकनीकी रूप से कहें तो, यदि आप आसन का अभ्यास केवल शारीरिक फिटनेस के रूप में या सांस की जागरूकता के बिना कर रहे हैं, तो यह योग नहीं है।

3.1. प्राणायाम - आपका वर्तमान: क्या आपने कभी अपने मन पर गौर किया है, यह हमेशा अतीत और भविष्य के बीच झूलता रहता है, शायद ही वर्तमान क्षण में रहता है। या तो आप अपने अतीत को लेकर पछता रहे हैं या भविष्य को लेकर चिंतित हो रहे हैं। जितना अधिक मन अस्थिर होता है, उतना अधिक आप अपने तंत्रिका तंत्र में तनाव का अनुभव करते हैं। लेकिन खुशी का अनुभव केवल वर्तमान क्षण में ही होता है। तो अपने मन को वर्तमान क्षण में कैसे लाएं?

शरीर का सांस के माध्यम से आपके दिमाग से सीधा संबंध होता है। सांस की मदद के बिना मन के पैटर्न को रोकना मुश्किल है। मन के लिए सांस उड़ती पतंग के धागे की तरह है। आपकी सांसें इस बात का प्रतिबिंब हैं कि आप कैसे सोचते हैं। यह आपकी भावनात्मक स्थिति को भी दर्शाता है, यदि आप क्रोधित हैं तो आप तेजी से सांस लेते हैं, यदि आप शांत हैं तो धीमी गति से सांस लेते हैं। प्रत्येक भावना का अपना श्वसन पैटर्न होता है। ये पैटर्न अनजाने में आकार दिए गए हैं। हालाँकि, जब आप सचेत रूप से अपनी सांस को आकार देते हैं, तो आपके चेतन मन को संलग्न होना पड़ता है और बदलना पड़ता है। चयनित पैटर्न को बनाए रखने के लिए मन को वर्तमान क्षण में होना चाहिए। इसे प्राणायाम कहते हैं। गहरे स्तर पर, साँस लेने का यह नया अभ्यास धीरे-धीरे आपके अचेतन मानसिक पैटर्न को आकार देता है, और मन की स्थिति को बदलता है। इस प्रकार, प्राणायाम के माध्यम से सचेतन श्वास आपको वर्तमान क्षण में ले आती है।

3.2. आसन - आपका अतीत: आपके जन्म के दिन से लेकर अब तक, आपका शरीर हर पल आपके अतीत को संग्रहीत कर रहा है। आप जो भी करते हैं, सोचते हैं, खाते हैं वह धीरे-धीरे आपके शरीर में प्रकट होता है। यदि आप नियमित रूप से उचित व्यायाम करते हैं, तो आप फिट और फिट रह सकते हैं, यदि आप इसे नजरअंदाज करते हैं तो यह शरीर में विभिन्न प्रकार की बीमारियों के रूप में दिखाई देने लगती है। इस प्रकार, आपकी जीवन शैली, भोजन, वातावरण, आप कैसे सोचते हैं और उस पर कार्य करना चुनते हैं, इसका भावनात्मक, शारीरिक और मनोवैज्ञानिक रूप से आपके तनाव स्तर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, शरीर इन तनावों को एकत्र करता है और आप आसन अभ्यास के दौरान इसे प्रतिरोध के रूप में अनुभव करते हैं। हालाँकि, प्रेम, कृतज्ञता, सफलता और सहजता का समय भी आता हैं। आपको लगता है कि आपका शरीर अधिक खुला है, और आपको आसन अभ्यास में कम प्रतिरोध का अनुभव होता है। आसन या पोज आपको अधिक सुलभ या आसान लगते हैं। इस प्रकार, योग आसन का नियमित अभ्यास मुख्य रूप से आपके शरीर की पिछले अनुभव की प्रतिक्रिया को बदल देता है।

3.3. ध्यान- आपका भविष्य: ध्यान या मेडिटेशन तीनों में सबसे सूक्ष्म और शक्तिशाली है। जब आप ध्यान करते हैं, तो आप पहले चरण से शुरुआत करते हैं, इसे धारणा या

एकाग्रता कहा जाता है। आपका मुख्य लक्ष्य व्याकुलता से एकाग्रता की ओर बढ़ना है, अतीत के अनुभवों से ध्यान भटककर वर्तमान में आना है, और एक बिंदु पर बने रहना है। यह प्रक्रिया बहुत ही सौम्य है ताकि आप अपने दिमाग को इसमें आने दें न कि उस पर दबाव डालें। क्योंकि यदि आप जबरदस्ती करने की कोशिश करेंगे तो मन विद्रोह कर देगा या अधिक ताकत से पलटवार करेगा।

आरंभ में कुछ समय के लिए पहले चरण में रह सकते हैं लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे आप नियमित रूप से अभ्यास करना जारी रखेंगे, आपका दिमाग स्वचालित रूप से आपको ध्यान या ध्यान नामक दूसरे चरण में ले जाएगा, जो धारणा के अधिक गहरे स्तर को जन्म देता है। इस अवस्था में मन व्याकुलता से मुक्त हो जाता है, शांत और शांत हो जाता है और आंतरिक उपचार शुरू हो जाता है। जैसे-जैसे आप आगे बढ़ते हैं, आप तीसरे चरण में प्रवेश कर सकते हैं जिसे समाधि या अतिक्रमण कहा जाता है। यह स्पष्ट बोध का उच्चतम स्तर है। इस चरण में, आप अपनी आत्म-पहचान से परे जाने का अनुभव करते हैं - आप पुरुष या महिला, युवा या बूढ़े, काले या सफेद नहीं हैं। आप उच्चतम सत्य के संपर्क में आते हैं। जैसे-जैसे आप अभ्यास करना जारी रखते हैं और ऐसी स्थिति में गोता लगाते हैं, धीरे-धीरे अंदर से बाहर तक परिवर्तन शुरू हो जाता है, आप सशर्त पहचान के बजाय आत्म-ज्ञान की इस स्पष्ट स्थिति से निर्णय लेना शुरू कर देते हैं। आप अपने आप बदलना शुरू कर देते हैं, अपनी आदतें बदलना शुरू कर देते हैं या अलग तरह से कार्य करना या प्रतिक्रिया करना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार, आप अपना भविष्य बदलना शुरू करते हैं।

4. योग कैसे करें- यदि आरंभ करने के लिए उत्सुक हैं, तो निम्नलिखित प्रयास किये जा सकते हैं। सबसे पहले अपने आसन का अभ्यास करने के लिए प्रत्येक दिन एक नियमित समय चुनें। शुरुआती लोगों के लिए योग के लिये वार्म-अप से शुरुआत करें। सबसे पहले, अपने पाठ में 'शुरुआती कार्यक्रम' अध्याय से केवल दो या तीन मुद्राएँ चुनें। फिर धीरे-धीरे नई मुद्राएँ जोड़ना शुरू करें। प्रत्येक सत्र को हमेशा पाँच मिनट के विश्राम के साथ समाप्त करें। योग के शास्त्रीय ब्रह्मंड में चार मुख्य शाखाएँ हैं। वे भक्ति हैं, भक्ति मार्गय कर्म, सक्रिय पथय ज्ञान, दार्शनिक मार्गय और राजा, वैज्ञानिक मार्ग। योगा फॉर डमीज में, जॉर्ज फ्यूरस्टीन और लैरी पायने ने बुनियादी चार का विस्तार किया है। हांलाकि भक्ति से लेकर भौतिक तक आठ मौजूदा प्रमुख शाखाओं पर प्रकाश डाला है। आपको अन्य विषयों में से कोई एक अपनी पसंद के अनुसार अधिक मिल सकता है।

4.1. भक्ति योग- भक्तिमय। यदि आप अपनी भावनाओं से शासित होते हैं और अक्सर अधिक नियंत्रण की इच्छा रखते हैं, तो यह योग आपके लिए हो सकता है। यह सबसे धार्मिक मार्ग है और इसमें जप, प्रार्थना और मंत्र शामिल हैं। अनुयायी एक सर्वोच्च सत्ता में विश्वास करते हैं और खुद को उसके प्रति समर्पित कर देते हैं।

4.2. गुरु योग- गुरु के प्रति समर्पण। अपने शिक्षक के प्रति समर्पण इस अनुशासन में केंद्रीय फोकस है। सोच यह है कि आप उस व्यक्ति के साथ संबंध के माध्यम से आत्मज्ञान के करीब हो जाते हैं जिसने इसे पहले ही हासिल कर लिया है।

4.3. हठ- शारीरिक अनुशासन। हठ में शरीर के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान का मार्ग

अपनाया जाता है। शुद्धिकरण और तैयारी फोकस, स्पष्टता और आनंद के लक्ष्यों को प्राप्त करने में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं।

4.4. ज्ञान- बौद्धिक और दार्शनिक। बुद्धि पर एकाग्रता और सत्य की खोज योग की इस शाखा का आधार है। यह शाखा विवेक और वैराग्य की बौद्धिक तकनीकों के माध्यम से वास्तविकता को समझने का प्रयास करती है।

4.5. कर्म- पारलौकिक। पश्चिमी दुनिया में भावातीत ध्यान के उद्भव के बाद से, 'कर्म' एक सामान्य शब्द बन गया है। कर्म के सच्चे अनुयायी अपने वर्तमान जीवन पथ से आगे बढ़ना चाहते हैं और दूसरों की सेवा, अहंकार और भौतिक आसक्तियों को खत्म करने और एक छोटे समुदाय के रूप में इस बड़े, विविध दुनिया में आने के माध्यम से अपने भाग्य को सकारात्मक रूप से प्रभावित करना चाहते हैं।

4.6. मंत्र- शक्तिशाली ध्वनि। शरीर, मन और आत्मा को ध्यान और सामंजस्य में लाने के लिए, योग का यह रूप भावनात्मक संतुलन, कल्याण और तनाव से मुक्ति की स्थिति को सुविधाजनक बनाने के लिए ध्वनि, विशेष रूप से मंत्र के उच्चारण का उपयोग करता है। मूल अवधारणा में गुप्त रूप से अपने शिक्षक से उसकी शक्ति में प्रशिक्षित होने के बाद एक विशेष मंत्र प्राप्त करना शामिल था। हालाँकि, वर्तमान पश्चिमी मान्यता आपके मंत्र के लिए अपना शब्द या शब्द चुनने की स्वतंत्रता देती है।

4.7. राजा- राजसी या शास्त्रीय। यह वह रूप है जो योग के मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक पहलुओं के संयोजन पर जोर देता है। अष्टांग के अनुयायी मन और शरीर दोनों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मानना है कि आत्मज्ञान के आठ रास्ते हैं: नैतिक अनुशासन, आत्म-संयम, सही मुद्रा संरेखण, सांस नियंत्रण, संवेदी निषेध, विस्तारित फोकस, ध्यान और परमानंद।

4.8. तंत्र- निरंतरता। तंत्र का दूसरा नाम कुंडलिनी है। इसे योग के यौन रूप के रूप में काफी हद तक गलत समझा जाता है। हालाँकि, तंत्र में प्राथमिक ध्यान चिंतन के माध्यम से आध्यात्मिक ऊर्जा की रिहाई है। यह रूप जटिल अनुष्ठानों और देवताओं की कल्पना पर जोर देता है।

अष्टांग जो शक्ति योग के नाम से मशहूर है, यह शैली उन अभ्यासकर्ताओं के बीच लोकप्रिय है जो उच्च शक्ति वाली एरोबिक कसरत चाहते हैं। इसका सबसे अच्छा उपयोग उन लोगों द्वारा किया जाता है जो उच्च शारीरिक और एरोबिक फिटनेस स्तर पर हैं।

वास्तव में, अधिकांश लोग एक विशिष्ट समय पर अपनी आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के आधार पर रूपों के संयोजन का अभ्यास करते हैं। आपकी रुचि जो भी हो, योग का प्रत्येक रूप एक ही अंतिम बिंदु की ओर ले जाता है: जागरूकता और विश्राम।

5. योग के लाभ- योग के अभ्यास के अनगिनत लाभ हैं जो किसी व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। चाहे वह आपके रक्तचाप को कम करना हो या आपकी दर्द सहनशीलता को बढ़ाना हो। नीचे कुछ बिन्दु सूचीबद्ध हैं जिन पर योग काम करता है।

(https://www.dabur.com/blog/yoga/importance-and-benefits-yoga)

बेहतर रक्त संचार- योग आपके रक्त संचार को बेहतर बनाता है। इसका मतलब है कि

पूरे शरीर में ऑक्सीजन और पोषक तत्वों का बेहतर परिसंचरण होता है। बेहतर रक्त प्रवाह स्वस्थ अंगों और चमकती त्वचा का भी संकेत देता है।

मुद्रा में सुधार- योग सिखाता है कि कैसे नियंत्रण करना है और कैसे संतुलन बनाना है। नियमित अभ्यास से आपका शरीर अपने आप सही मुद्रा अपना लेगा। आप आत्मविश्वास से भरे और स्वस्थ दिखेंगे।

मूड अच्छा होता है- नियमित रूप से योग का अभ्यास करने से आपका मूड तुरंत अच्छा हो जाता है, क्योंकि यह आपके शरीर को ताजगी भरी ऊर्जा प्रदान करता है।

रक्तचाप में कमी- रोजाना योग करने से शरीर में रक्त संचार बढ़ता है। इससे शरीर में ऑक्सीजन का संचार होता है, जिससे रक्तचाप में उल्लेखनीय कमी आती है और शरीर शांत हो जाता है।

समय से पहले बुढ़ापा नही आता– समय से पहले बुढ़ापा क्यों नहीं आता? जी हाँ, योग आपको डिटॉक्स करने और विषाक्त पदार्थों और मुक्त कणों को खत्म करने में सहायता करता है। यह, अन्य लाभों के अलावा, बुढ़ापे को भी धीमा करने में मदद करता है। योग तनाव को भी कम करता है जो बुढ़ापे को रोकने वाला एक और कारक है।

तनाव कम करता है- जब आप योग करते हैं, तो आप अभ्यास पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इसका मतलब है कि आपका पूरा ध्यान उस विषय पर केंद्रित है। आपका दिमाग धीरे–धीरे तनाव और परेशानियों को बाहर निकालता है जो उसे परेशान कर रहे हैं।

नाड़ी की गति में कमी- योग तनाव को कम करके शरीर को आराम देता है। जब शरीर आराम करता है, तो नाड़ी की गति कम हो जाती है। कम नाड़ी दर यह दर्शाती है कि आपका दिल कम धड़कनों में ज्यादा रक्त पंप करने के लिए पर्याप्त मजबूत है।

ताकत बढ़ाता है- आप अपनी ताकत बढ़ाने के लिए अपने शरीर के वजन का उपयोग करते हैं। यह शक्ति प्रशिक्षण की एक बहुत ही आश्चर्यजनक विधि है।

चिंता प्रबंधन- थोड़ा सा घूमना, झुकना और नियंत्रित श्वास लेना आपको चिंता पर काबू पाने में मदद करता है।

बेहतर कार्डियोवैस्कुलर सहनशक्ति- योग शरीर में ऑक्सीजनेशन को बेहतर बनाता है और हृदय गति को भी कम करता है। इसके परिणामस्वरूप उच्च कार्डियोवैस्कुलर सहनशक्ति होती है।

श्वसन दर में कमी- योग में नियंत्रित श्वास प्रक्रिया शामिल है। इसमें आपके फेफड़ों को उनकी पूरी क्षमता तक भरना शामिल है, जिससे वे अधिक कुशलता से काम कर सकें।

अवसाद से मुक्ति- जब आप योग का अभ्यास करते हैं, तो दबी हुई भावनाएँ सतह पर आ जाती हैं। हालाँकि आप उदास महसूस कर सकते हैं, लेकिन नकारात्मक ऊर्जा बाहर निकल जाती है। यह अवसाद से लड़ने में मदद करता है।

संतुलन सिखाता है- योग संतुलन को बेहतर बनाने पर भी ध्यान केंद्रित करता है और आपको अपने शरीर पर नियंत्रण पाने में भी मदद करता है। योग का नियमित अभ्यास कक्षा में आसन को संतुलित करने और कक्षा के बाहर अच्छी तरह से ध्यान केंद्रित करने की आपकी क्षमता को बढ़ाएगा।

अंगों की उत्तेजना- जब आप योग का अभ्यास करते हैं तो आंतरिक अंगों की मालिश होती है, जिससे रोगों के प्रति आपकी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। साथ ही, एक बार जब आप अपने शरीर के प्रति सजग हो जाते हैं, तो वर्षों के अभ्यास के बाद, आप तुरंत बता पाएंगे कि आपका शरीर ठीक से काम नहीं कर रहा है।

रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि- योग और रोग प्रतिरोधक क्षमता एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। चूंकि योग शरीर की हर कोशिका को स्वस्थ और बेहतर बनाने की दिशा में काम करता है, इसलिए आपका शरीर अपने आप ही अधिक रोग प्रतिरोधक क्षमता वाला बन जाता है। अत: आपकी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

शरीर के प्रति जागरूकता पैदा करता है- नियमित रूप से योग का अभ्यास करने से आपको अपने शरीर के प्रति जागरूक होने में मदद मिलेगी। आप अपने सरेखण को बेहतर बनाने के लिए सूक्ष्म हरकतें करना शुरू कर देंगे। समय के साथ, योग आपको अपने शरीर में सहज होने में मदद करता है।

जठरांत्र संबंधी स्वास्थ्य में सुधार- नियमित रूप से योग का अभ्यास करने से पाचन तंत्र सक्रिय होता है और अपच और गैस जैसी पेट से जुड़ी अन्य बीमारियाँ दूर होती हैं। इसलिए, पुरुषों और महिलाओं दोनों में जठरांत्र संबंधी कार्य बेहतर होते हैं।

कोर की ताकत बढ़ाना- यह समझना जरूरी है कि जब आपका कोर मजबूत होता है, तो आपका शरीर मजबूत होता है। आपका कोर आपके शरीर का वजन संभालता है। यह चोटों के प्रति आपकी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है और आपको बेहतर तरीके से ठीक होने में भी मदद करता है। योग कोर पर काम करता है और इसे स्वस्थ, लचीला और मजबूत बनाता है।

दर्द सहनशीलता का उच्च स्तर- योग दर्द सहनशीलता के स्तर को बढ़ाता है और पुराने दर्द को कम करने की दिशा में भी काम करता है।

चयापचय में वृद्धि- योग चयापचय को नियंत्रण में रखता है क्योंकि आदर्श वजन प्राप्त करने के लिए संतुलित चयापचय आवश्यक है।

आत्मविश्वास- योग आपके आत्मविश्वास को बढ़ाता है और पूर्ण विश्राम और अधिक नियंत्रण प्रदान करता है।

नवीनीकृत ऊर्जा- योग में आपके मन और शरीर को तरोताजा महसूस कराने की क्षमता है। जो लोग रोजाना योग करते हैं, वे योग के एक सत्र के बाद ऊर्जावान महसूस करते हैं।

नींद में सुधार- योग आपके दिमाग को पूरी तरह से शांत करने में मदद करता है। यह आपको अनावश्यक तनाव से निपटने में मदद करता है, जिससे आपको बेहतर नींद आती है।

शरीर का एकीकृत कार्य- जब आप नियमित रूप से योग का अभ्यास करते हैं, तो आपका मन आपके शरीर के साथ मिलकर काम करना शुरू कर देता है। इससे गतिशीलता और सुंदरता बढ़ती है।

आत्म-स्वीकृति की अनुमति देता है- योग आत्म-जागरूकता और स्वास्थ्य की बेहतरी को सक्षम बनाता है। आपका आत्म-सम्मान बढ़ता है और आपको अधिक आत्मविश्वास आता हैं।

आत्म-नियंत्रण विकसित करता है- योग की नियंत्रित गतिविधियां आपको अपने जीवन के सभी पहलुओं पर आत्म-नियंत्रण करना सिखाती हैं।

जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण- नियमित रूप से योग का अभ्यास करने से तंत्रिका तंत्र में कई हार्मोन स्थिर हो जाते हैं। इससे आपको अधिक सकारात्मक बनने में मदद मिलती है और आप जीवन को ताजा और सकारात्मक दृष्टिकोण से देखते हैं।

शत्रुता कम करना- जब नियमित रूप से योग किया जाता है, तो क्रोध पर काफी हद तक नियंत्रण होता है। श्वास और ध्यान तंत्रिका तंत्र को शांत करते हैं, जिससे क्रोध और शत्रुता कम होती है। शत्रुता में कमी का मतलब है रक्तचाप में कमी। यह स्वचालित रूप से जीवन के प्रति तनाव मुक्त और स्वस्थ दृष्टिकोण को सक्षम बनाता है।

शांति और स्थिरता- सांस लेने और ध्यान करने से आप अपने विचारों से मुक्त हो जाते हैं। इससे आपको शांत होने में मदद मिलती है। प्रतिदिन योगाभ्यास से आप देखेंगे कि शांति अब सिर्फ आपके अभ्यास का हिस्सा नहीं रह गई है- यह जीवन जीने का एक तरीका बन गई है।

साथ ही प्रतिदिन योग करने से अंततः बेहतर एकाग्रता प्राप्त होगी और आठ सप्ताह से भी कम समय के योग अभ्यास में आप स्वयं को अधिक प्रेरित पाएंगे। अतः योग आपके जीवन को बदल देता है और आपके क्षितिज को उन तरीकों से व्यापक बनाता है जिनकी आप कभी कल्पना भी नहीं कर सकते। यह निश्चित रूप से प्रयास करने लायक है।

6. योग और विश्व- हाल के वर्षों में योग कक्षाओं में पुरुषों की बढ़ती संख्या, नए स्टूडियो और कक्षाओं के कारण है जो मांसपेशियों के एकीकरण और गतिशीलता पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो कि अधिकांश पुरुष जिम में व्यक्तिगत मांसपेशियों पर ध्यान केंद्रित करके बनाते हैं । ये कक्षाएं योग की उत्पत्ति के इर्द-गिर्द अधिक संरचित हैं और पश्चिमी दुनिया ने इसकी व्याख्या कैसे की है इस पर कम, अधिक जोरदार और बिना अर्थ वाली शैलियों पर ध्यान देने के साथ। पुरुषों या किसी के भी योगाभ्यास न करने का सबसे आम कारण यह है कि वे लचीले नहीं होते हैं। जिस तरह कोई ताकत और सहनशक्ति बनाने के लिए जिम जाता है, उसी तरह कोई अपने लचीलेपन को बेहतर बनाने के लिए योग कर सकता है।

आज 20 मिलियन से अधिक लोग योग करते हैं, जिनमें से केवल 18 प्रतिशत पुरुष हैं। उत्तरी अमेरिकी संस्कृति में, योग अपनी उत्पत्ति से हॉलीवुड की मशहूर हस्तियों और मध्यम वर्ग की महिलाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित हुआ। हांलाकि यह अभ्यास एक अधिक ध्यान शैली बन गया जो पुरुषों के मजबूत दिमाग और शरीर को विकसित करने के मूल अभ्यास से भटक गया । 21वीं सदी में रूढ़िवादिता और योग के विकास के कारण, इस अभ्यास को पुरुषों के लिए स्त्रियोचित और अत्यधिक संवेदनशील माना जाता है। इन परिवर्तनों से यह रूढ़ि उत्पन्न हुई कि योग केवल महिलाओं के लिए है और कंपनियों ने विज्ञापन और कपड़ों के माध्यम से इसका उपयोग अपने लाभ के लिए किया। आज, कई योग स्टूडियो इस रूढ़िवादिता को हराने की कोशिश कर रहे हैं और दिखा रहे हैं कि योग केवल पुरुषों के लिए कक्षाएं या अधिक मांग

वाली कक्षाएं बनाकर सभी को लाभ पहुंचा सकता है जो इस बात पर जोर देती हैं कि पुरुष आमतौर पर व्यायाम में क्या तलाश रहे हैं और अभ्यास को उसकी जड़ों में वापस लाते हैं।

हाल के वर्षों में ऐसे कई समर्थक एथलीट हैं जिन्होंने विभिन्न कारणों से योग का अभ्यास करना शुरू कर दिया है और अब बात करते हैं कि इससे उन्हें अपने खेल को बेहतर बनाने में कैसे मदद मिली है। कीथ मिशेल एक पूर्व एन.एफ.एल लाइनबैकर हैं जो अब एक प्रमाणित योग प्रशिक्षक हैं। एक वार से वह नीचे गिर गया और उसकी रीढ़ की हड्डी में चोट लग गई। योग को एक थेरेपी के रूप में सुझाया गया था ताकि उसे कुछ कार्य करने में मदद मिल सके और शायद यही कारण था कि वह खेल में वापस आने में सक्षम हो सका। अन्य एथलीट जैसे लेब्रोन जेम्स और टिम थॉमस भी अपने खेल के अलावा योग का अभ्यास करते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रचलित सबसे आम शैली हठ योग है। आसन, श्वास और ध्यान पर जोर देना। इन प्रथाओं का संयोजन मन-शरीर संबंध को मजबूत करता है। योग शक्ति निर्माण, लचीलापन बढ़ाने और संतुलन, स्थिरता, नींद और विश्राम में सुधार करने में सिद्ध हुआ है। यह वास्तव में एक पूर्ण-शरीर कसरत है जो मन-शरीर के कनेक्शन पर ध्यान केंद्रित करती है क्योंकि व्यक्ति किसी मुद्रा या विशिष्ट मांसपेशी या मांसपेशियों के समूह में आगे बढ़ता है। अध्ययनों द्वारा हृदय गति और रक्तचाप के साथ-साथ चिंता और अवसाद को कम करने के लिए व्यायाम के अन्य रूपों के अलावा योग का अभ्यास करने का सुझाव दिया जाता है।

7. योग और आयुर्वेद- योग से संबंधित अपने शरीर के प्रकार को समझने के लिए, आपको पहले भारतीय शिक्षा की एक प्राचीन शाखा, आयुर्वेद की अवधारणाओं को समझना चाहिए। आयुर्वेद शब्द दो संस्कृत जड़ों से लिया गया हैरू आयुस, या जीवन, और वेद, जिसका अर्थ है विज्ञान या ज्ञान। आयुर्वेद प्राचीन हिन्दीवासियों द्वारा प्रचलित तीन विषयों में से एक है। योग प्रकृति और सत्य के साथ मिलन है, तंत्र वह विधि है जिसके द्वारा हम ऊर्जा को नियंत्रित करते हैं, और आयुर्वेद उपचार की कला और विज्ञान है।

वात: वायु और आकाश का संयोजन। शुष्क त्वचा और बालय पतला शरीर का ढाँचा, बेचैन सक्रिय मन, मीठा, खट्टा और नमकीन खाद्य पदार्थों का स्वाद पसंद है। बहुत लंबा या बहुत छोटा, भावनात्मक स्वभाव भयभीत, असुरक्षित और अप्रत्याशित की ओर झुकता है।

पित्त- अग्नि और जल का संयोजन। नरम, तैलीय गर्म त्वचाय आक्रामक और बुद्धिमान दिमाग, मीठे, कड़वे और कसैले खाद्य पदार्थों का स्वाद पसंद है। मध्यम ऊंचाई और वजन, भावनात्मक स्वभाव, आक्रामक, चिड़चिड़ा, या ईर्ष्यालु की ओर झुकता है।

कफ- जल और पृथ्वी का संयोजन। मोटी, तैलीय, ठंडी त्वचा, शांत, धीमा मनय तीखा, कड़वा और कसैला भोजन का स्वाद पसंद करता है। लम्बे या छोटे और अधिक वजन वाले शरीर के ढाँचे, भावनात्मक स्वभाव शांत, लालची या जरूरतमंद की ओर झुकता है।

हममें से अधिकांश मूल तीन का संयोजन हैं। योग का उद्देश्य इनका संतुलन बनाना है। यदि आप कफग्रस्त हैं और शांत एवं धीमे हैं, तो आप अपनी ऊर्जा बढ़ाने पर काम करना चाहेंगे। यदि आप वात हैं, तो आप धीमा करना चाहेंगे। पित्त किसी भी दिशा में

जा सकता है, लेकिन गति धीमी करके लाभ भी पहुंचा सकता है। अत: सबसे बढ़कर मजा लें। सही योग शैली चुनना कोई विज्ञान नहीं, बल्कि एक कला है। आनंद लेना।

8. योग का सामाजिक महत्व- एक स्वस्थ नागरिक से स्वस्थ परिवार बनता है तथा एक स्वस्थ व संस्कारी परिवार से एक आदर्श समाज की स्थापना होती है। इसलिए समाजोत्थान में योगाभ्यास का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। योग वास्तव में एक वैज्ञानिक जीवन शैली है जिसका हमारे जीवन के प्रत्येक पक्ष पर गहराई से प्रभाव पड़ता है।

शर्मा (2023) के अनुसार सामाजिक गतिविधियां व्यक्ति के शरीर और मानसिक दोनो पक्षों को प्रभावित करती है। आज व्यक्तियों पर इन गतिविधियों का नकारात्मक प्रभाव देखने को मिल रहा है पंरतु योग में वर्णित कर्म योग, हठ योग, भक्ति योग, ज्ञान योग, अष्टांग योग आदि साधन समाज को नई रचनात्मक व शांतिदायक शिक्षा प्रदान कर रहे है।

आर्थिक रूप से भी शास्त्रों मे वर्णित सुख निरोगी काया बाद में धन और माया के आधार पर योग विशेषज्ञों ने पहला धन निरोगी शरीर को माना है। एक स्वस्थ व्यक्ति जहां अपनी आय के साधनों का विकास कर सकता है। वहीं अधिक परिश्रम से व्यक्ति अपनी प्रति व्यक्ति आय को भी बढा सकता है। जबकि दूसरी तरफ शरीर में किसी भी प्रकार का रोग ना होने के कारण व्यक्ति का औषधियों व उपचार पर होने वाला व्यय भी नही होता है। अत: योग सामाजिक व आर्थिक रूप से भी समृद्धि प्रदान करता है।

9. उपसंहार- अत: आज के युग में, यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम योग दर्शन को अपनाएं और इसके सार को खोए बिना इसका अभ्यास करें। कई बार, योग को भौतिकवादी प्रथाओं के एक समूह में बदल दिया जाता है जो केवल भौतिक शरीर पर आधारित होता है। संदर्भ के लिए, नई पीढ़ी की प्रथाओं में शवासन को छोड़ना, फोन से ध्यान भटकाना, खुद को दूसरों से बेहतर बनने की चुनौती देना, बुनियादी योग नियमों का पालन न करना आदि शामिल हैं।

यह खुशी का विषय है कि पिछले कुछ दशकों में योग के प्रचलन में तेजी से वृद्धि हुई है। चिकित्सा पेशेवर और मशहूर हस्तियाँ भी इसके विभिन्न लाभों के कारण योग के नियमित अभ्यास को अपना रहे हैं और इसकी अनुशंसा कर रहे हैं। हांलाकि कुछ लोग योग को सिर्फ एक और प्रचलित फैशन मानते हैं और इसे नए युग के रहस्यवाद से जोड़ते हैं, वहीं अन्य लोग इस बात की पुष्टि करते हैं कि व्यायाम का यह रूप कितना आश्चर्यजनक लगता है। वे यह नहीं समझते कि जिसे वे सिर्फ एक और व्यायाम के रूप में देखते हैं, वह उन्हें ऐसे तरीकों से लाभ पहुँचाएगा जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. त्रिलोक जैन, राजीव (2008) . संपूर्ण योग विद्या. मंजुल पब्लिशिंग हाउस प्रा. लिमिटिड, भोपाल
2. अनाम. (2015) सरल प्राकृतिक चिकित्सा: योग एंव पाकृतिक चिकित्सा. मनोज प्रकाशन, दिल्लीश
3. र्मा, रूचि (2023) योग का महत्व. युगवार्ता, 12.1.2023. https://www.yugwarta.com/Encyc/2023/6/12/Importance-of-yoga.html.
4. Vivekananda, Swami (2019). The Complete Book of Yoga: Karma Yoga, Bhakti Yoga, Raja Yoga, Jnana Yoga. Prakash Book Depot, New Delhi.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

आधुनिक भारतीय चित्रकला में टैगौर परिवार की भूमिका

• कंचन देवी
•• नीतू वशिष्ठ

सारांश- अठारवी सदी के अंत और उन्नीसवीं सदी की शुरूआत में चित्रों में अर्ध-पश्चिम स्थानीय शैलियाँ शामिल थी, विषय वस्तु आमतौर पर भारतीय सामाजिक जीवन, लोकप्रिय त्योहारों और मुगल स्मारकों से ली गई थी। रविन्द्रनाथ टैगोर, अवनीन्द्रनाथ टैगोर और गगनेन्द्रनाथ टैगोर ने आधुनिक भारतीय चित्रकला को एक नई ऊचाई तक लेकर गये। शान्ति निकेतन में बंगाल स्कूल का विकास हुआ जहाँ रविन्द्रनाथ टैगोर ने कला भवन की स्थापना कर आधुनिक भारतीय चित्रकला को एक नया आयाम दिया।

मुख्य शब्द- चित्रकार, तकनीक, आधुनिकता, शैली, शताब्दी, रंग

भारतीय चित्रकला मे आधुनिक कला के मुख्य रूप से नायकों मे अवनी बाबू का नाम सबसे पहले आता है। इनके अग्रज भाई गगनेन्द्र नाथ टैगोर भी एक चित्रकार थे। इनके परिवार मे भाई व चाचा रविन्द्र नाथ टैगोर सभी को चित्रकार होने का पैतृक श्रेय था।

19वीं शताब्दी के परिवर्तनीय युग में आधुनिक भारतीय चित्रकला में टैगोर परिवार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। कला गुरू अवनीन्द्रनाथ टैगोर एक आदर्श चित्रकार के साथ-साथ चित्रकलां के अध्यापक भी थे। जिन्होने जापानी चित्रकारों के प्रभाव से 'वाश' तकनीक को जन्म दिया। टैगोर बन्धु गगनेन्द्र नाथ ने भी यूरोपीय घनवादी कला का विकास किया। रविन्द्र नाथ टैगोर के चित्र स्वयं प्ररेणादायक एवं सृजनशील रहे है। आधुनिक भारतीय चित्रकला में आधुनिकता को उजागर करने का सबसे पहला प्रयास उन्हें दिया जाता है। गगनेन्द्र नाथ ने बंगाल शैली एवं भारतीय आधुनिक कला को एक ऊँचे मुकाम पर पहुँचाया। भारतीय चित्रकला को आधुनिक चित्रकला के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय रविन्द्र नाथ को जाता है।

अवनीन्द्र नाथ टैगोर जी ने हैवल को एक नई विचारधारा से कला के व्यापक क्षेत्र में सहयोग प्रदान किया। कलागुरू अवनीन्द्र नाथ टैगोर एक आदर्श चित्रकार के साथ-साथ चित्रकला अध्यापक भी थे। जिन्होने जापानी चित्रकारों के प्रभाव से एक नई विद्या 'वाश' को जन्म दिया। ई.वी. हैवल व अवनीन्द्र नाथ टैगोर ने भारतीय कला को

• शोधार्थी, श्री क्रुन्द - क्रुन्द जैन पी.जी. कॉलेज खतौली, मुजफ्फरनगर
•• शोध निर्देशक, श्री क्रुन्द - क्रुन्द जैन पी.जी. कॉलेज खतौली, मुजफ्फरनगर

अपने समूचे अध्ययन के बाद कला जगत को एक नई दिशा प्रदान की। अवनी बाबू ने अपने चित्रण विधि मे 'मुगल चित्रशैली' का अनुसरण किया इसलिये वे 'मुगल सिद्ध' कलाकार के रूप में माने जाते है। अवनी बाबू ने जापानी चित्रकारों के प्रभाव से एक नई तकनीक 'वाश' को जन्म दिया। 1901 से अवनी बाबू ने 'तैल रंगो' मे काम करना शुरू कर दिया था। 1920-26 के दौरान उनकी कला में नये-नये परिवर्तन आये। अवनी बाबू ने 'पेस्टल रंगो' का भी गम्भीरता से प्रयोग किया।

वाश तकनीक को सीखने के बाद अवनी बाबू ने निम्न चित्र बनाये जैसे- भारत माता, तिष्यरक्षिता, यात्रा का अन्त, उमरख्य्याम की रूबाईयो पर आधारित चित्र श्रृंखला और रविन्द्र नाथ के नाटक चित्रांगदा के लिए अनेक रेखांकन बनाये जिनकी बहुत तारीफ हुई। ''चाहे तैल हो या जल रंग, टैम्परा विधि में काम हो या वाश तकनीक का प्रयोग, सर्वत्र रंगीय सन्तुलन और निपुणता का प्रदर्शन शायद की कोई दूसरा कलाकार कर सका है, जैसा अवनीन्द्रनाथ ने किया।''[1]

19वी शताब्दी के अन्त में भारत की स्थिति हर तरह से संकटग्रस्त थी। ब्रिटिश प्रभुत्व के इस दबदबे मे भारत की कला और संस्कृति का मजाक उड़ाया जा रहा था तथा यह माना जा रहा था कि इस देश में अपनी कोई मौलिकता नहीं है। इन्ही दिनों अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने भारत की कला विदेशी दासत्व से छुटकारा दिलाकर एक नया रास्ता अपनाया।

रविन्द्रनाथ टैगोर ने अवनी बाबू के लिए ठीक ही कहा था, ''उन्होने देश को आत्महीनता के पाप से बचाया है ओर उसे निराशा के गर्त से निकालकर वह सम्मानपूर्ण पद दिलाया है, जो आधिकारिक तौर पर उनका ही था।''[2]

टैगोर बन्धु गगनेन्द्र नाथ ने यूरोपीय घनवादी कला का विकास किया। 20वी सदी के छठे दशक के बाद नये भारतीय कलाकार पाश्चात्य आधुनिक शैलियो के अनुसरण में लग गये और सार्वजनिक संस्थानों की प्रदर्शनियों मे आधुनिक कला के अतिरिक्त अन्य शैलियों के चित्रों का दर्शन दुर्लभ हो गया। अवनी बाबू ने पाश्चात्य समस्याओं को सुलझाने से सम्बन्धित एवंव उनमें निरन्तर बदलाव लाने का प्रयास किया। वही गगनेन्द्र नाथ ने पूर्ण रूप से बंगाल शैली को प्रोत्साहित किया। टैगोर परिवार में भाई व चाचा रविन्द्रनाथ टैगोर सभी को चित्रकार होने का पैतृक श्रेय था।

गगनेन्द्र नाथ ने भारतीय विषयों के लिए सबसे पहले घनवादी शैली का प्रयोग किया तथा दूसरी विदेशी शैलियों के मिश्रण से अपनी कला का एक नितान्त मौलिक स्वरूप का विकास किया। गगनेन्द्रनाथ बहुत साहस के साथ अपने रास्ते पर चले लेकिन उनकी काफी आलोचना भी हुई। उनकी कला को रोमांटिक यथार्थवाद कहा गया है। ''वस्तुत: गगनेन्द्र के शैलीगत अनेक प्रयोग उनके अपने मूड से संचालित थे। उन्होने अपना सृजन न तो कला के लिए किया और न ही किसी सुनिश्चित दिशा को पाने के लिए किया था। उनके विषय इतिवृत्तात्मकता अथवा रूपक कथाओं पर नही बल्कि चाक्षुष प्रत्यक्षज्ञान पर आधारित होते थे।''[3]

गगनेन्द्र नाथ सुनहरे धरातलों एवं रेशम पर काली स्याही से स्केच करके विभिन्न वित्र बनाते थे जिनमें कहीं-कहीं लाल तथा हरे रंगो के स्पर्श चित्रों की सुन्दरता

प्रदान करते हैं। इसी तरह इंक से बना गगनेन्द्र नाथ का चित्र "पैलेस ऑफ स्नो" है। गगनेन्द्र नाथ टैगोर की कला का मुख्य योगदान चित्रों में रहस्यात्मकता को सृजित करना रहा है जो गगन बाबू की अपनी खुद की विशेषता है। यह बात तो स्पष्ट है कि गगनेन्द्र नाथ टैगोर ने भारतीय कला को आधुनिक बनाने का अत्याधिक महत्वपूर्ण कार्य किया। "अवनीन्द्र नाथ तथा गगनेन्द्र नाथ दोनो ही भारत में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के युग मे हुए थे। यह वह युग था जब कला के अलावा राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीय अस्मिता की तलाश के प्रयास हो रहे थे।"[4]

रविन्द्र नाथ टैगोर ने बचपन में किसी से कला तकनीक का प्रशिक्षण नही लिया बल्कि रवी बाबू तो अपनी अनुभूतियों को रेखाओं मे उभारकर अपने मन को बहलाया करते थे। कल्पना और यथार्थवादी प्रवृत्ति की वजह से कविगुरू की कृतियाँ आधुनिकता की प्रेरक की तरह से आई। स्टेला क्रैमरिश ने ठीक कहा है कि "उनके चित्रों में उन भावनाओं और विचारो की अभिव्यक्ति हुई है, जो शब्दों में बंधने से रह गये है।"[5]

कवि रविन्द्र नाथ टैगोर ने परम्परावादी तथा यथार्थवादी चित्रकला को न अपनाकर कला की आधुनिक शैली को अपनाया जिसे रविन्द्र नाथ ने समन्वयात्मक शैली कहा। नारियों के प्रति आकर्षण रवि बाबू की एक अन्य विशेषता है। श्रृंगार और सौन्दर्य के अलग-अलग भावों का अंकन रवीन्द्र ने ऐसी स्त्रीयों का चित्रण किया जो सहज ही हमे अपनी ओर आकृष्ट किया। रविन्द्र नाथ ने सब प्रकार के रंगों का उपयोग किया, लेकिन वे द्रव्य मिश्रित रंगों को पसन्द करते और स्याही का भी भरपूर मात्रा में उपयोग करते उनको रंग नही मिलता तो वे फूलों की पंखुडियों को दबाकर जो रस निकलता उसको रंगो की तरह काम में लेते। शुरूआत मे रवीन्द्र नाथ ने केवल स्याही के पेन से रेखांकन करके कला का निर्माण किया। जिसमें काल्पनिक पक्षी या जानवर जैसे आकार भरपूर मात्रा में है। "सन 1926 ई. के करीब उन्होने कपड़े के टुकड़ो या अंगुलियो को स्याही मे डुबोकर चित्रण शुरू किया व बाद मे सीमित रंगो का उपयोग किया।"[6]

रविन्द्र नाथ टैगोर का आधुनिक चित्रकला में बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। रवि बाबू को आधुनिक भारत का प्रथम तथा रचनात्मक चित्रकार माना गया है। वे एक समर्थ साहित्यकार संगीतकार व कुशल चित्रकार भी थे। रविन्द्र ने भारत में चित्रकला के क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात किया।

अत: टैगोर परिवार का आधुनिक भारतीय चित्रकला में अहम योगदान रहा। जिसके परिणाम स्वरूप 19वीं शताब्दी का परिवर्तनीय युग व बंगाल में पुनरूत्थान हुआ और यह युग कला की दृष्टि से पुनरूत्थान काल या जागृति काल कहा गया। लगभग दो शताब्दियों तक घृणा की नजर से देखी जाने वाली भारतीय कला के क्षेत्र में जागृति हुई। इस जागृति को लाने का श्रेय अवनीन्द्र नाथ टैगोर, गगनेन्द्र नाथ टैगोर व रविन्द्र नाथ का है। इस प्रकार आधुनिक भारतीय चित्रकला में टैगोर परिवार ने अहम भूमिका निभाई तथा महत्वपूर्ण योगदान किया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. डॉ. ज्योतिष जोशी, आधुनिक भारतीय कला, पृष्ठ सं0 36
2. डॉ. रीता प्रताप, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ.सं. 319
3. डॉ. प्राणनाथ मागो, भारत की समकालीन कला (एक परिप्रेक्ष), पृ.सं. 30
4. डॉ. प्राणनाथ मागो, भारत की समकालीन कला (एक परिप्रेक्ष), पृ.सं. 30
5. डॉ. ज्योतिष जोशी, आधुनिक भारतीय कला, पृ.सं. 23
6. डॉ. रीता प्रताप भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला, पृ.सं. 338

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

भारत में आधुनिक कला का वास्तविक स्वरूप

•सतेन्द्र कुमार
••वन्दना वर्मा

सारांश- भारतीय आधुनिक चित्रकला ने गतवर्षों के कला जगत से अनेक समर्थ कलाकार जुड़े है, किन्तु हर कलाकार अपने साथ आधुनिक कला की नई-नई (टेकनीक) तथा नई शैली को लेकर प्रकट हो रहा है भारतीय आधुनिक चित्रकला के कलाकार का अपना-अपना माध्यम प्रयोग विधा की अपनी प्रक्रिया है। आधुनिक भारतीय कलाकृतियों में हमें सशक्त रंग प्रयोग, नवीन तालिका संघात रूपाकार मुद्राए रेखाएं तथा विघटित आकृतियां दिखाई देती है। उनका भाव जगत भी जाना-पहचाना लगता है उसकी बनावट हमारे अंदर गहरी अन्तर्दृष्टि का विकास करती है। इन्हीं कलाकारों ने आधुनिक चित्रकला का इतिहास रचा और उसके भावीस्वरूप की भूमिका तैयार की भारतीय चित्रकारों की कला में सभ्यता के साथ अत्याधिक चिन्तन की गहराई भी दिखाई देती है।

मुख्य शब्द- आधुनिक चित्रकला,कलाकार, अभिव्यक्ति अमूर्त, मनोवैज्ञानिक, चित्रकार, नई, चित्र

अठारहवीं सदी के अंत और उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में चित्रों में अर्ध-पश्चिमी स्थानीय शैलियों शामिल थी जिन्हें ब्रिटिश निवासियों और आगंतुकों द्वारा संरक्षण दिया गया था। विषयवस्तु आम तौर पर भारतीय सामाजिक जीवन, लोकप्रिय त्योहारों और मुगल स्मारकों से ली गई थी। ये तात्कालिक मुगल परंपराओं को दर्शाते थे। लेडी इम्पे के लिए शेख जिया उद दीन का पक्षी अध्ययन और विलियम फ्रेजर और कर्नल स्किनर के लिए गुलाम अली खान के चित्र चित्र इस अवधि के कुछ उत्कृष्ट चित्रों के उदाहरण हैं।

उन्नीसवीं सदी के उतरार्ध में कलकता, बंबई और मद्रास जैसे प्रमुख भारतीय शहरों में यूरोपीय मॉडल पर कला विद्यालय स्थापित किए गए। त्रावणकौर के राजा रवि वर्मा की पौराणिक और सामाजिक विषयों को चित्रित करने वाली तैलचित्र इस समय अत्यधिक लोकप्रिय हुई।

रवींद्रनाथ टैगोर, अबनिंद्रनाथ टैगोर, ईबी हैवेल और आनंद केहतीश कुमारस्वामी ने बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट के उद्भव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

• शोधार्थी, जे.के.पी.पीजी कालेज, मुजफ्फरनगर
•• शोध निर्देशक, जे.के.पी.पीजी कालेज, मुजफ्फरनगर

शांतिनिकेतन में बंगाल स्कूल का बहुत विकास हुआ, जहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कला भवन की स्थापना की। नंदलाल बोस, बिनोद बिहारी मुखर्जी और रामकिंकर बैज जैसे प्रतिभाशाली कलाकारों ने महत्वाकांक्षी कलाकारों को प्रशिक्षण प्रदान किया। नंदलाल अक्सर भारतीय लोक कला और जापानी चित्रकला से प्रेरणा लेते थे जबकि बिनोद बिहारी मुखर्जो को प्राच्य परंपराओं में गहरी रुचि थी। इस काल के एक अन्य महान चित्रकार जामिनी रॉय ने क्रिसा की पाटा पेंटिंग और बंगाल की कालीघाट पेंटिंग से प्रेरणा ली। महान चित्रकार अमृता शेरगिल ने पेरिस और बुडापेस्ट में शिक्षा प्राप्त की। एक सिख पिता और हंगेरियन मां की संतान मानी जाने वाली, उन्होंने भारतीय विषयों, विशेषकर भारतीय महिलाओं और किसानों पर चमकीले रंगों से चित्रकारी की। हालांकि उनकी मृत्यु बहुत कम उम्र में हो गई, लेकिन वह अपने पीछे भारतीय चित्रकला की एक समृद्ध विरासत छोड़ गई। धीरे–धीरे अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त शहरी मध्यवर्ग की सोच में कुछ गहरे बदलाव आये जो कलाकारों की अभिव्यक्ति में झलकने लगे। ब्रिटिश शासन, राष्ट्रवाद के आदर्शों और राष्ट्रीय पहचान की इच्छा के बारे में बढ़ती जागरुकता ने ऐसी कृतियों को जन्म दिया जो पहले की कला परंपराओं से अलग थीं।

1943 में, द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान परितोष सेन, निरोदा मजूमदार और प्रदोष दास गुप्ता के नेतृत्व में कलकता के चित्रकारों ने एक समूह बनाया, जिसने नई दृश्य भाषा और नवीन तकनीकों के माध्यम से भारत के लोगों की स्थिति का चित्रण किया।[1]

एक और महत्वपूर्ण विकास 1948 में फ्रांसिस न्यूटन सूजा के तहत बॉम्बे में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप का गठन था। समूह में एसएच रजा, एमएफ हुसैन, के.एम. आरा, एसके बकरे और एचए गोडे भी शामिल थे। यह समूह बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट से अलग हो गया और स्वतंत्र भारत की आधुनिक सशक्त कला का प्रतिनिधित्व किया। 1970 के दशक में कलाकारों ने अपने परिवेश का आलोचनात्मक सर्वेक्षण करना शुरू किया। गरीबी और भ्रष्टाचार, देश की राजनीतिक अव्यवस्था, विस्फोटक सांप्रदायिक तनाव और अन्य शहरी मुद्दों से दैनिक मुठभेड़ उनके कार्यों का विषय या विषय बन गई।

देबी प्रसाद रॉय चौधरी और केसीएस पणिकर के नेतृत्व में मद्रास स्कूल ऑफ आर्ट स्वतंत्रता के बाद के समय में एक महत्वपूर्ण कला केंद्र के रूप में उभरा और आधुनिक कलाकारों की एक नई पीढ़ी को प्रभावित किया। आधुनिक भारतीय कलाकारों के रूप में अपनी पहचान बनाने वाले कुछ कलाकार हैं तैयब मेहता, सतीश गुजराल, कृष्ण खन्ना, मंजीत बावा, केजी सुब्रमण्यम राम कुमार, अंजलि इला मेनन, अकबर पदमसी, जतिन दास, जहांगीर सबावाला और ए रामचंद्रन।

आधुनिक चित्रकला के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि उसके विकास के पीछे जो प्रेरणा रही है उसे यथार्थ रूप में ग्रहण किया जाय। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण से लेकर बीसवीं अर्धशती तक चित्रकला में जो विभिन्न प्रयोग होते आये हैं उनका एक स्पष्ट लक्ष्य रहा है। द्वितीय महायुद्ध के बाद मनुष्य की वायोन्मुखता पर गहरा आघात लगा और उसकी वृत्ति आभ्यन्तरिक सत्यों की खोज और उनकी अभिव्यक्ति की ओर प्रेरित हुई। इसमें केवल पलायन की प्रवृत्ति न होकर गंभीरतम सत्य की खोज भी छिपी हुई थी। किसी एक दिशा में बढ़ना दूसरी दिशा से पलायन कहा जा

सकता है परन्तु ऐसा कहना उचित नहीं है क्योंकि किसी दिशा विशेष में मनुष्य की प्रगति का एक उद्देश्य भी हो सकता है। विज्ञान के नवीन शक्तियों के संघात ने मनुष्य की चेतना पर प्रभाव डाला। मार्क्स और फ्रायड के जीवन दर्शन ने उसके पुरातन विचारों को झकझोर दिया और यह कभी भी नहीं हुआ कि विचार के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन हो और वह कला के क्षेत्र में तद्नुरूप अभिव्यक्त न पाये । आधुनिक चित्रकला आधुनिक बौद्धिक मनुष्य की कृति है और उसके पीछे आधुनिक जीवन दर्शन स्पष्टतया झलकता है। सामंती और पूंजीवादी समाज व्यवस्था ने उत्तराधिकार में मनुष्य को जो दिया वह भी आधुनिक कला में प्रतिबिम्बित है। व्यक्तिवाद का इतना व्यापक रूप कदाचित इसी कारण है।[2]

आधुनिक कला आन्दोलन के दौर में यूरोप में कला के लिए जिस वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ, इसने बुद्धिजीवियों के समाज में एक हलचल मचा दी। हर तरफ एक नई बहस छिड़ गई। कला के 'जीवन' और समाज से जुड़े अनेक विचारों के सूत्रपात हुए। कला में नित नई खोजों और सिद्धान्तों के भी प्रतिपादन हुए। एक समय में प्रख्यात चिन्तक हीगेल का मानना था कि व्यक्ति की सम्पूर्ण चेतना विचार में ही है। कलाकार की जिन मानसिक क्रियाओं में विचार की प्रक्रिया निहित होती है, वे ही कलात्मक संवेदन क्रियाएं अस्पष्ट रूप से उसकी संवेदना में कार्यशील होती है। विचार प्रक्रिया के बगैर कलाकार किसी भी कला सर्जना को जन्म नहीं दे सकता। यूरोप की कला में पुनर्जागरण काल के लम्बे अन्तराल के बाद इतनी क्रान्तिकारी बातें सम्भवत: इसलिए आई की समाज विश्वयुद्ध के संक्रमण से आक्रान्त था और औद्योगिक क्रान्ति के बाद समाज की संरचना के लिए अनेक विचार जन्म ले चुके थे। साथ ही कला के अन्तप्रवाह में नई खोजों ने भी कला को नई दिशा दी।[3]

दूसरी ओर भारतीय आधुनिक कलाकारों पर दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि आधुनिकता उनके लिए एक समस्या के रूप में सामने आयी। कलाकार अपनी जड़ों को छोड़कर पाश्चात्य दिशाओं की ओर कातर दृष्टि से निहार रहे थे। इसी के साथ कला नये आकारों को अभिव्यक्ति देने की ललक में बंगाल की वाश शैली की रुढ़ियों को तोड़ने में संघर्षरत थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि तीसरे और चौथे दशकों में रवीन्द्रनाथ टैगोर, अमृता शेरगिल, यामिनी राय, जार्ज कीट और बाद में शैलोज मुखर्जो ने अपने व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा आधुनिकता के प्रारम्भिक दौर में भारतीय कला को अविस्मरणीय योगदान दिया। लेकिन उनके प्रयासों के बावजूद कोई भी शक्तिशाली और विचारशील कला आन्दोलन भारतीय भूमि पर अवतरित न हो सका। 1948 ई. में मुम्बई में प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप की स्थापना (जिसका उद्देश्य रचनात्मक एवं कलात्मक स्वतन्त्रता पाने के लिए राष्ट्रीय आदर्शवाद और सामाजिक व पारम्परिक भ्रान्तियों को अनदेखा करना) तथा इसके पश्चात कलकता आर्टिस्ट ग्रुप, मद्रास प्रोग्रेसिव पेन्टर्स एसोसिएशन एवं दिल्ली शिल्पी चक्र के गठन ने भारतीय कला को एक उन्मुख दिशा दी। परम्परावादियों के मिथक टूटते नजर आये और प्रयोगधर्मो कलाकारों ने बिल्कुल नई समझ सृजन कार्य आरम्भ किया। इस प्रकार धीरे-धीरे कला जीवन का प्रतिविम्ब बनती गई। मकबूल फिदा हुसैन, फ्रांसिस न्यूटन सूजा, सैय्यद हैदर रजा, आरा, वी. एस. गायतोण्डे तथा तैयब मेहता सरीखे

कलाकारों ने कला के नये अर्थ को जन्म दिया और इस प्रकार पाँचवें दशक में भारतीय कला का जो रूप देखा गया, उसकी पहचान 'आधुनिक' कला के रूप में की गई। इसके बाद आधुनिक कला की एक पूरी अर्द्धशती में नित नए मुहावरों, प्रयोगों, नवीन वैज्ञानिक संसाधनों और इनके माध्यम से हुई नई वैचारिक स्थापनाओं ने कला को एक सार्वभौम अर्थ दिया तथा इस दौर में रची गई अनेक कलाकृतियों को कालातीत कला कहकर सम्बोधित किया गया।[4]

आखिरकार ये कलाकार एक ऐसी सच्चाई कलाकारों द्वारा प्रमुख रूप से व्यक्तिगत स्तर पर विकसित की गई कला शैली गढ़ने में सफल जो विदेशों में जाकर बसने वाले भारतीय कलाकारों की कला के समान ही सत्य थी। इस ग्रुप के सदस्य एरिक बोवेन, जगदीश स्वामीनाथन, गुलाम मोहम्मद शेख, जेराम पटेल, ज्योति भट्ट, हिम्मत शाह, विचार विमर्श के लिए भावनगर (गुजरात) में इकट्ठे हुए थे। इनके सूचीपत्र का आमुख भारत में मेक्सिको के राजदूत ओम्टेवियों पात्र द्वारा लिखा गया था जो प्रसिद्ध अतिकार्यवादी कवि और तीसरे विश्व के बृद्धिजीतियों के आदर्श थे।[5]

इन कलाकारों की केवल एक आधारभूत मान्यता थी वह थी अचेतन मन का महत्व और परिणाम स्वरूप कला की स्वत: प्रवृत्ति। इस प्रकार अतियथार्थवादी सिद्धान्त ने एक महत्वपूर्ण और प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया। 1960 व 70 के दशकों की कला पाश्चात्य कला सिद्धान्तों व विचारों पर आधारित थी। उसमें केवल मनोव्यथा थी, हर्षोन्माद का पूर्ण प्रभाव था, जबकि पौर्वात्य कला आनन्द की ही देन है। वह उस भारतीय दर्शन और संस्कृति से उपजी है, जिसमें मृत्यु को मोक्ष और मोक्ष पूर्ण आनन्द माना जाता है। उसमें असीम सहनशक्ति, सह-अस्तित्व और 'आनो भद्राक्रतवो यन्तु विश्वत:' का गहन विश्वास है। इसी से वैश्वीकरण के इस दौर के पीढ़ी ने भारतीय कलाकारों ने 'उपनिवेशवाद' के प्रति शिकायत और 'राष्ट्रीयता के प्रति चेतना को छोड़कर समस्त विश्व की विचारधाराओं और कलाओं से प्रेरणा लेना प्रारम्भ कर दी। वे आज भी संकर संस्कृति से बचने का प्रयास नहीं करते हैं, बल्कि अपनी समृद्ध व गहन सांस्कृतिक धरोहर से अपनी विम्ब प्रतीक प्रयुक्त करके व उनको विश्वजनित अभिव्यंजना दे रहे हैं।'

1980 के दशक से सबसे त्वरित संचार माध्यमों द्वारा संसार के प्रत्येक भाग की घटनाओं, विचार व कला के प्रभाव आने प्रारम्भ हो गये हैं, भारतीय कलाकारों में भी कुछ अर्न्तदर्शन, कला के मानदण्डों के प्रति सचेतना और अपने देश की लोक व जनजातीय कलाओं के प्रति विश्वास जाग्रत हुआ है। जे. स्वामीनाथन और के. जी. सुब्रमण्यम आदि की प्रेरणा से उनके शिष्यों व सहयोगी कलाकारों ने भारतीय लोक और जनजातीय कला से प्रेरणा लेनी प्रारम्भ की है। ये कलायें भारत की जीवित परम्परा की देन हैं। इनमें वास्तविक भारतीय जनमानस की विचारधारा धार्मिक विश्वास और विम्ब परिलक्षित होता है और यह जीवन्त व चिर-स्थायी प्रेरणास्रोत है।[6]

आज के तार्किक और आध्यात्म को भी वैज्ञानिक दृष्टि से परखने के युग में कुछ कलाकारों ने आध्यात्मिक दर्शन पर सोचपूर्ण चित्रण किया है। इन्होंने चमकदार रंगों के प्रभावों और सूक्ष्म रूपों को संयोजित कर रहस्यमय आकर्षणपूर्ण चित्र बनाये हैं। इनमें सैय्यद हैदर रजा, गुलाम रसूल, जी. आर. सन्तोष, वीरेन दे और लक्ष्मण पै आदि के चित्र आते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में कला में वैज्ञानिक प्रयोग किये जा रहे थे। बीसवीं शताब्दी को विद्वान मनोवैज्ञानिक युग समझते हैं। इस शताब्दी में जितना प्रादुर्भाव मनोविज्ञान का हुआ है उतना और किसी अन्य वस्तु का नहीं हुआ। आज मनोविज्ञान को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्व दिया जा रहा है और कला इससे अछूती नहीं रही है। कुछ लोग मनोविज्ञान को शिक्षा के आधार के साथ-साथ वास्तविक शिक्षा भी मानते हैं। ऐसी अवस्था में कला मनोविज्ञान न हो ये कैसे सम्भव है। अत: आधुनिक कला में मनोवैज्ञानिक आधार है। चित्रकार मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्र बनाता है। मनोविज्ञान वह विद्या है जिसके द्वारा हम स्थिर करते हैं कि ऐसा क्यों होता है? इस कार्य अथवा व्यवहार का कारण क्या है?

इसी प्रकार विभिन्न देशों के कलाकारों की यह धारणा बन गयी है कि मनोविज्ञान के आधार पर नवीन प्रयोग हों, जिसके फलस्वरूप अभिव्यंजनात्मक प्रवृत्ति का जन्म हुआ है। यह फ्रांसीसी चित्रकारों के जंगलवाद (फावइज्म) के विरुद्ध जर्मन में उत्पन्न हुआ। अभिव्यंजनावाद के विभिन्न अर्थ लगाये जाते हैं। आन्तरिक अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वच्छन्दता, अभिव्यंजना के लिए रंग-रेखाओं का मनमाने ढंग से प्रयोग, किसी भी तरीके से या साधन से, प्रज्वलित रंगों से, आकृति विकृतिकरण से, परिप्रेक्ष्य की उपेक्षा से अथवा परिवर्तन से किसी भी प्रकार व्यक्तिगत भावनाओं, रहस्यों, विचारों और अनूभूतियों आदि की अभिव्यक्ति करना ही अभिव्यंजनात्मक प्रवृत्ति कहलाती है। भारतीय आधुनिक कलाकारों में इस प्रकार की चित्रांकन प्रवृत्ति हमें सर्वप्रथम स्व. रविन्द्रनाथ ठाकुर तथा गगनेन्द्रनाथ की कृतियों में दिखलाई दी है। आज ऐसे अनेक चित्रकार हैं, जिन्होंने चित्रांकन की भित्ति इसी भावना से बनाई है। इसी दृष्टि से आधुनिक चित्रकारों में हुसैन, सतीश गुजराल तथा रामकुमार आदि अनेक चित्रकार सामने आये हैं। वास्तव में नये चित्रकार इस प्रवृत्ति से अधिक प्रभावित हुए हैं।भारत में कला, संगीत आदि को बढ़ावा देने के लिए दो सरकारी संस्थाएँ स्थापित की गई हैं। राष्ट्रीय आधुनिक कला गैलरी में एक ही छत के नीचे आधुनिक कला का सबसे बड़ा संग्रह है। दूसरी ललित कला अकादमी है जो सभी क्षेत्रों में कलाकारों को मान्यता देती है और उन्हें संरक्षण देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. डॉ. शैफाली भटनागर, स्वातंत्रोत्तर काल में भारतीय संस्कृति एवं कलाकुंज भारती, पृष्ठ सं. 19।
2. डॉ. सरन सक्सैना, डॉ. सुधा सक्सैना, कला सिद्धांत और परम्परा, 1986, पृष्ठ सं. 149-150।
3. गुलशन राय मेहता, कलाकुंज भारती, दिसम्बर 2003, प्रकाशन - वी 203, पुराना विधायक निवास, विधानसभा मार्ग, लखनऊ-1, पृष्ठ सं. 11।
4. मीनाक्षी भारती, समकालीन कला, परिदृश्य में आधुनिकता, ललित कला अकादमी की पत्रिका अंक 17 मई 1996, सम्पादक ज्योतिष जोशी, पृष्ठ सं. 48।
5. मीनाक्षी भारती, समकालीन कला, परिदृश्य में आधुनिकता, ललित कला अकादमी की पत्रिका अंक 17 मई 1996, सम्पादक ज्योतिश जोशी, पृष्ठ सं. 48।
6. मीनाक्षी भारती, समकालीन कला, परिदृश्य में आधुनिकता, ललित कला अकादमी की पत्रिका अंक 17 मई 1996, सम्पादक ज्योतिष जोशी, पृष्ठ सं. 47

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

महिला हिंसा का समाज एवं परिवार पर प्रभाव : (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

• गुंजन सिंह

सारांश- पारिवारिक हिंसा आधुनिक युग में एक प्रमुख समस्या है। यद्यपि घरेलू हिंसा परिवार में किसी भी सदस्य के प्रति हो सकती है, परन्तु पारिवारिक हिंसा का अभिप्राय मुख्यत: महिलाओं के प्रति हिंसा से है। नवीन पारिवारिक परिस्थितियाँ और भी ज्यादा घरेलू हिंसा को प्रोत्साहित कर रहीं हैं। स्त्री परिवार व समाज की केन्द्र बिन्दु है। इसके बावजूद पुरूष प्रधान समाज ने सदियों से उसका शोषण किया है। आज की नारी आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र, भावनात्मक रूप से परिपक्व और बौद्धिक रूप से सजग महिला है अत: वह विवाह बंधनों के जरिये मिलने वाले मान्यता प्राप्त सुख की जगह बंधनमुक्त बौद्धिक-भौतिक जीवन जीने की कोशिश कर रही है। प्राचीन संस्कार और नवीन का द्वन्द्व आज नारी के लिए भीषण समस्या बन गया है। परिवार स्नेह, सहानुभूति, सहयोग और शान्तिपूर्ण वातावरण में जीवन व्यतीत करने का एक स्थान है। एक स्वाभाविक परिवार में सुख और दु:ख, शान्ति और अशान्ति, भोज और रोग, जन्म एवं मृत्यु सब कुछ का एक समन्वय और संतुलन होता है। यह समन्वय व संतुलन परिवार के सदस्यों के क्रियात्मक विश्वास, सहयोग, स्नेह, घनिष्ठता, सहिष्णुता एवं त्याग के कारण ही संभव होता है। महिला परिवार की एक महत्वपूर्ण इकाई है जो कुछ समाज में दिखाई देता है, वह परिवार का छोटा स्वरूप है। महिला परिवार की आधारशिला है और परिवार समाज की। यह दोनों ही सामाजिकता को विकसित करने का साधन है। इसलिए परिवार में महिला का स्थान केन्द्रीय है।

मुख्य शब्द- पारिवारिक हिंसा, बंधनमुक्त बौद्धिक-भौतिक जीवन, समन्वय व संतुलन

आजाद हिन्दुस्तान गांवों का देश था। सन् 1951 में देश की आबादी की लगभग 83 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती यह कहना अन्यथा न होगा कि परिवार महिला से सम्बन्धित होता है और परिवार समाज से यदि परिवार में महिला का अपमान होता है उस पर तीखे व्यंगों का प्रहार करते हैं तो महिला कुण्ठित हो जाती है। इस सबके फलस्वरूप विघटन प्रक्रिया प्रारंभ होती है।[1] जिस कारण महिला का व्यैक्तिक विघटन होता है। उसके

• अतिथि विद्वान, समाज कार्य विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

बाद पारिवारिक तनाव जो पारिवारिक विघटन का प्रारंभिक रूप है यह विघटन अन्त में सामाजिक विघटन का रूप लेता है। जिस प्रकार एक कड़ी दूसरी से जुड़कर उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है उसी प्रकार एक कड़ी स्वयं विघटित होकर पूरी जंजीर के विघटन का कारण बनती है। यह उक्ति महिलाओं के मानसिक प्रतिफल को गहराई से रेखांकित करती है। आज भारत में नारी स्वातंत्र्य का मुद्दा गहराया है। औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, विज्ञान के बढ़ते प्रचार-प्रसार और शिक्षा के आलोक में वह अपने नये-नये रूपों से परिचित हुई है। वह घर की दहलीज से निकलती है, आत्मनिर्भन बनती है और पुरूष के साथ कदमताल मिलाने की कोशिश करती है लेकिन पुरूष की मानसिकता में तो खास अंतर आया नहीं। वह नारी को मादा के रूप में ही देखता है और नीचा दिखाने का भरपूर प्रयत्न करता रहा है। जाहिर है, नारी शोषण का सिलसिला बदस्तूर है। कई शताब्दियाँ बीत जाने पर भी पुरूष का सामन्ती दृष्टिकोण बरकरार है। वह कपड़े के पार नारी देह को देखता है। युग के बदलते परिवेश में जो नारी व्यक्तित्व रच, पक रहा है, उसमें अपनी पहचान की छटपटाहट है और सामाजिक अन्याय के प्रति आकोश है उसमें।[2]

युग सापेक्ष बदलती स्थितियों ने महिलाओं को अपने अस्तित्व और पहचान के लिए उपक्रम करने का एक नया मार्ग प्रशस्त किया है। अस्मिता की खोज ने महिलाओं के सामने ऐसी स्थितियां निर्मित कर रही है जिसके कारण घर और परिवार के बीच एक नया अंर्तद्वंद्व शुरू हो गया है यह अंर्तद्वंद महिलाओं के साथ पारिवारिक हिंसा के नये-नये संदर्भों की सृष्टि कर रहा है।

महिलाओं के प्रति हिंसात्मक व्यवहार कोई आज के युग की ही घटना नहीं है वरन् प्राचीन भारत में भी इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। शिव ने सती से अंसतुष्ट होकर उनसे मानसिक विरक्ति कर ली थी जिसका परिणाम सती का अग्नाहुति के रूप में हुआ। श्रीराम ने मात्र एक धोबी के कहने के कारण सीता जैसी पत्नी को त्याग दिया। रानी होते हुए भी वह गर्भवती अवस्था में वन में ऋषि आश्रम में रहीं। महाभारत काल में युधिष्ठिर ने अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए में दांव पर लगा दिया और दुर्योधन ने भरी सभा में उसका चीर हरण कर अपमानित किया था। विधवाओं को भारत में उनके मानवीय अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। जिस कार्य के लिए वे जिम्मेदार नहीं थी उन कारणों के लिए उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दिये जाते रहे हैं। सतीत्व के नाम पर उन्हें जिन्दा जलाया जाता रहा है।[3]

वैश्विक बदलाव के बावजूद आज भी नारी मानसिक शारीरिक प्रताड़ना सहने के लिए विवश है। दहेज को लेकर नारी को जिन्दा जला देना या हत्या कर देना आज के युग की सबसे बड़ी त्रासदी है। हम आये दिन समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, दूरदर्शन आदि में पति द्वारा पत्नी पर अत्याचार और मारपीट की घटनाएं पढ़ने, देखने सुनने को मिलती हैं। समाचार-पत्रों में बलात्कार की घटनाएँ तो आए दिन प्रकाशित होती हैं, जिनमें से कुछ में तो पुलिस और प्रशासन की भूमिका भी संदिग्ध होती है। इस प्रकार से महिलाओं का उत्पीड़न और शोषण, उनके साथ बलात्कार, उनके साथ मारपीट एवं गाली-गलौज करना, उन्हें जला देना, उनकी हत्या कर देना आदि घटनाएं महिलाओं के प्रति बढ़ते हिंसात्मक व्यवहार के प्रमुख उदाहरण हैं।[4]

अतीत पर गौर करें तो प्राचीनकाल में भारत के ऋषि-मुनियों ने नारी के महत्व को भली-भांति समझा था इसलिए उस समय नारी का सर्वांगीण विकास हुआ, धीरे-धीरे समय परिवर्तित हुआ और हमारे देश में कुप्रथाएं फैलनी शुरू हुई। परिणामस्वरूप नारी का महत्व घटना शुरू हो गया, तदुपरान्त स्त्री देवी न रह कर विलास की सामग्री बनने लगी और उसके प्रति आदर और सम्मान घटने लगा। फलस्वरूप नारी, पुरूष की ऐसी बपौती हो यी, जिसको वह घर की चारदिवारी के भीतर बन्द करके सुरक्षित रखने लगा और नारी को न शिक्षा का अधिकार रहा, न बोलने का। धीरे-धीरे नारी जाति का इतना पतन हुआ कि वह स्वयं अपने आपको भूल गयी कि समाज में उसका भी कोई स्थान है। उसके हृदय से विकास की भावना लुप्त हो गई।[5]

पतन के बाद उत्थान प्रकृति का नियम है, लम्बे अंतराल के बाद 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में राष्ट्रीय आन्दोलनों के साथ-साथ सामाजिक आन्दोलन भी प्रारंभ हुए, जिससे समाज में जागृति की एक लहर उठी। मनुष्य ने नारी के महत्व को समझना शुरू किया और महिलाओं ने आगे बैठक समाज का पथ-प्रदर्शन किया। नारी समाज पुनः जागृत हुआ। वर्तमान युग नारी-पुरूष समानता का युग है। भारतीय समाज की दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति के साथ-साथ महिलाओं के स्वर, उनके सम्मान व गरिमा में भी परिवर्तन आया है। समाज के बदलते परिवेश में जहां व्यक्ति आधुनिकता की दौड़ में शामिल हुआ है, वहीं महिलायें भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो हर क्षेत्र में पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ी हैं। भारत के संविधान में भी नारी को पुरूष के समान अधिकार प्राप्त हैं, नारी किसी भी दृष्टि से पुरूषों से कम नहीं है।[6]

अध्ययन पद्धति- प्रस्तुत अध्ययन में समग्र सूचनादाताओं में से 300 उत्तर दाताओं का चयन सविचार निर्दशन विधि द्वारा उनकी स्थिति, कार्य क्षेत्र आदि को ध्यान में रखते हुए किया गया है। चयनित सूचनादाताओं से शोध सम्बन्धी प्राथमिक सामग्री संग्रहण के लिए साक्षात्कार अनुसूची एवं साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया है साथ ही महिलाओं के हिंसात्मक व्यवहार सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने हेतु महिला समिति के पदाधिकारी एवं महिला थाना से सम्पर्क कर तथ्य एकत्रित किये गए हैं। आवश्यकतानुसार विभिन्न स्त्रोतों यथा संदर्भ ग्रंथ, शोध प्रबंध, शोध पत्रिकाएं, समाचार पत्र आदि से द्वितीयक समयंकों का संकलन किया गया है। संकलित तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण कर शोध प्रबंध एवं शोध प्रतिवेदन तैयार किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण- शोधार्थी ने जब प्रताड़ना की शिकार महिलाओं से स्वंय उनके ऊपर उत्पीड़न के प्रभाव के विषय में पूछा कि पारिवारिक प्रताड़ना का स्वंय उनके उपर प्रभाव पड़ता है या नही यदि पड़ता है तो किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। महिलाओं से प्राप्त उत्तर निम्नवत है-

तालिका क्र.01
स्वंय पर प्रभाव - पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव

क्र.	प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
1.	प्रभाव पड़ता है	283	94.33
2.	प्रभाव नही पड़ता है	17	05.66
	योग	300	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 94.3 प्रतिशत महिलाओं पर पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव पड़ा जब कि 5.7 प्रतिशत महिलाओं पर प्रताड़ना सहने के बाद भी कोई प्रभाव नही पड़ता है इससे निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश पीड़ित महिलाये प्रताड़ना से प्रभावित है। जब प्रताड़ित महिलाओं से पूछा गया कि वह प्रताड़ना से किस प्रकार प्रभावित हुई तो निम्न बाते सामने आई।

तालिका क्र. 02
पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव

क्र.	प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
1.	नैतिक पतन	11	3.88
2.	रोगग्रस्त	109	38.51
3.	भयग्रस्त	72	25.44
4.	कुठांग्रस्त	47	16.60
5.	प्रतिशोध का भावना	10	3.53
6.	पुरूष वर्ग से नफरत	20	7.06
7.	घर से दूर रहना	14	4.94
	योग	283	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि पारिवारिक प्रताड़ना के कारण 3.7 प्रतिशत महिलाओं का नैतिक पतन हुआ 38.51 प्रतिशत महिलायें रोगग्रस्त हो गई, इसमें कुछ प्रतिशत महिलायें मानसिक बीमारियों के कारण परेशान थी। 25.44 प्रतिशत महिलायें पारिवारिक प्रताड़ना के प्रभाव स्वरूप जीवन जीने की आदी हो चुकी थी। 16.60 प्रतिशत महिलाओं का जीवन पारिवारिक प्रताड़ना के प्रभाव स्वरूप कुंठ से परिपूर्ण हो चुका था। 3.53 प्रतिशत महिलाओं में प्रतिशोध की भावना का जन्म हो गया था। 7.06 प्रतिशत महिलाये पुरूष वर्ग से नफरत करती है। 4.94 प्रतिशत महिलायें पारिवारिक हिंसा से प्रभावित हो कर घर से बाहर रहना पसंद करती है।

पारिवारिक प्रताड़ना के प्रभाव स्वरूप सर्वाधिक 36.3 प्रतिशत महिलायें रोगग्रस्त थी। महिलाओं द्वारा स्वंय पर पारिवारिक प्रताड़ना के अप्रत्यक्ष प्रभाव निम्न लिखित बताये गये है।

- पारिवारिक हिंसा और प्रताड़ना स्त्री की उन्नति तथा विकास का मार्ग अवरूद्ध करती है, उनके सोचने तथा कार्य करने तथा विपरीत परिस्थितियों में स्वयं निर्णय लेने की क्षमता समाप्त हो जाती है।
- आर्थिक निर्भरता के कारण स्त्री पारिवारिक प्रताड़ना सहने को मजबूर है।

- पारिवारिक प्रताड़ना की शिकार महिलाएं अपने मन की बात किसी से न कहकर अंदर ही अंदर घुटती रहती हैं। ऐसी महिलायें डिप्रेशन की शिकार हो जाती है।
- आजीवन मार पीट झेलती महिलाये शारीरिक रूप से बहुत कमजोर हो जाती है। महिलाओं में एकाकीपन का लाभ उठाकर पुरूष सहयोगी उनका शोषण करने लगते हैं। इस प्रकार महिलाए दोहरें शोषण का शिकार होती है।
- प्रताड़ित महिलायें परिवार के प्रति लापरवाह हो जाती है। परिवार पर ध्यान न देने कारण उनका परिवार सरलतापूर्वक विघटित हो जाता है।
- पारिवारिक प्रताड़ना की शिकार महिलायें पहले मानसिक रूप से अंसतुलित होती है। जो दिखाई नही देता है लेकिन धीरे-धीरे ये रोग शारीरिक रोग के रूप में दिखाई देने लगते है जैसे शरीर र्दद ,थकान, भय, अवसाद, मानसिक असंतुलन आदि।

शोधार्थी ने जब प्रताड़ना की शिकार महिलाओं से उत्पीड़न के प्रभाव के बारे में पूछा कि उत्पीड़न का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है? तब महिलाओं के द्वारा बताये प्रभाव निम्नलिखित है कुछ प्रभाव दिखाई पड़ते है जब कि कुछ प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है।

तालिका क्र. 3
बच्चों पर पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव

बब	प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
1.	प्रभाव पड़ता है	225	75
2.	प्रभाव नही पड़ता है	75	25
	योग	300	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 75 प्रतिशत बच्चों पर पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव पड़ा जबकि 25 प्रतितशत बच्चों पर पारिवारिक प्रताड़ना कर कोई प्रभाव नही पड़ा। जब पारिवारिक प्रताड़ित महिलाओं से पूछा कि उनके बच्चों पर पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव किस प्रकार पड़ा तो उत्तर में निम्न लिखित तालिका प्राप्त हुई।

तालिका क्र. 4
बच्चों पर पड़ने वाला प्रभाव

क्र.	प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
1.	नैतिक पतन हुआ	70	31.11
2.	पढ़ाई प्रभावित हुई	52	23.11
3.	भयभीत रहने लगे	47	20.88
4.	अपशब्दों का प्रयोग करने लगे	25	11.11
5.	घर से दूर रहने लगे	17	7.55
6.	कुठां ग्रस्त	14	6.22
	योग	225	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि बच्चों पर पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव

किस प्रकार पड़ा। 31.11 प्रतिशत बच्चों का पारिवारिक प्रताड़ना के प्रभाव के रूप में नैतिक पतन हुआ, 23.11 प्रतिशत बच्चों की पढ़ाई प्रभावित हुई, 20.88 प्रतिशत बच्चे भयभीत रहने लगे जबकि 11.11 प्रतिशत बच्चे अपशब्दों का प्रयोग करने लगे। 7.55 प्रतिशत घर से दूर रहने लगे जबकि 6.22 प्रतिशत बच्चे कुष्ठाग्रस्त हो गए। इससे निष्कर्ष निकलता है कि पारिवारिक प्रताड़ना के प्रभाव के स्वरूप सर्वाधिक 31.11 प्रतिशत बच्चों में नैतिक पतन हुआ।

जब पारिवारिक प्रताड़ित महिलाओं से पूछा कि उनके बच्चों पर पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव किस प्रकार पड़ती महिलाओं ने अप्रत्मक्ष रूप निम्नलिखित प्रभाव बताये।

- बचपन में पारिवारिक प्रताड़ना झेल चुकी बच्चियों का आत्म विश्वास बहुत कमजोर हो जाता है तथा वह हीन भावना का शिकार हो जाती है। भावी पीढ़ी का विकास अवस्थ हो जाता है। पारिवारिक हिसां का बच्चों एवं किशोरो दोनों में भावनात्मक एवं मानसिक तौर पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।
- सहजता से किसी के साथ भावनात्मक सम्बंध विकसित नही कर पाते जो बच्चियॉ अपने माता-पिता तथा परिवार के बड़े पुरूष को हमेशा घर की महिलाओं के साथ मारपीट तथा झगड़ा करते हुए देखती है उनके मनमें पुरूष वर्ग की बुरी छवि गहराई तक बस जाती है।
- बच्चों में आपराधिक प्रवृति जागृति हो जाती है।
- जिन परिवारों में पारिवारिक हिंसा का वातावरण होता है उन परिवारों के बच्चों में अर्न्तसम्बंधो के मध्य स्नेह सेवा और त्याग की भावना समाप्त हो जाती है।

इस प्रकार कही न कही पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है।

शोधार्थी ने जब पारिवारिक प्रताड़ना की शिकार महिलाओं से पूछा कि क्या पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव पारिवारिक सदस्यों पर पड़ता है या नही? यदि प्रभाव पड़ता है तो किस प्रकार का प्रभाव पडता है? महिलाओं से प्राप्त उत्तर निम्नलिखितहै।

तालिका क्र. 5

पारिवारिक प्रताड़ना से पारिवारिक सदस्यों पर प्रभाव

क्र.	प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
1.	प्रभाव पड़ता है	300	100
2.	प्रभाव नही पड़ता है	0.00	0.00
	योग	300	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि सभी महिलाओं ने यह स्वीकार किया कि पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव किसी न किसी रूप में परिवार के सदस्यों को प्रभावित करता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पारिवारिक प्रताड़ना का प्रभाव पारिवार के सदस्यों पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनो रहने से पड़ता है।

तालिका क्र.6
पारिवारिक प्रताड़ना से पारिवारिक सदस्यों पर पड़ने वाले प्रभाव

क्र.	प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
1.	प्राथमिक सम्बंधो के द्वारा	95	31.7/
2.	पारिवारिक विघटन	50	16.7/
3.	एकाकी परिवार का निर्माण	105	35/
4.	आपराधिक राह का चुनाव	30	10/
5.	प्रतिस्पर्धा का जन्म	20	6.6/
	योग	300	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि पारिवारिक सदस्य पारिवारिक प्रताड़ना से निम्नप्रकार से प्रभावित पाये गये।

31.7 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया कि उनके परिवार में सदस्यों के बीच प्राथमिक सम्बंधों का ह्रास हो चुका था जबकि 16.7 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि पारिवारिक हिंसा के कारण उनके परिवार विघटित हो चुके थे। 35 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार उनके एकाकी परिवार का निर्माण पारिवारिक हिंसा का ही प्रभाव है। 10 प्रतिशत महिलाओं के अनुसार पारिवारिक हिंसा के प्रभाव स्वरूप उनके पारिवार के सदस्य अपराधिक राह का चुनाव कर चुके थे। 6.6 प्रतिशत महिलाओं के परिवार के सदस्यों में प्रतिस्पर्धा का जन्म हो चुका था।

इससे निष्कर्ष निकलता है कि पारिवारिक प्रताड़ना के फलस्वरूप सबसे अधिक 35 प्रतिशत एकाकी परिवारों का निर्माण हो रहा है। महिलाओं ने परिवार के सदस्यों के उपर पड़ने वाले अप्रत्यक्ष प्रभाव निम्नलिखित बताये है।

- पारिवारिक सदस्यों के आपसी रिश्ते नितान्त अस्वाभाविक तथा औपचारिक हो जाते है।
- पारिवारिक सदस्यों में सहयोगी प्रवृति का आभाव हो जाता है।
- पारिवारिक सदस्य आपस में सहयोग करने के स्थान पर एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करते है।
- सहयोगी प्रवृति का आभाव होने के कारण पारिवारिक समस्याओं की समाप्ति के बजाय उनमें वृद्धि होने लगती है।
- पारिवारिक रिश्तों में रिश्तो की मधुरता की जगह तनाव हो जाता है।
- पारिवारिक सदस्य परिवार में अपने से बड़ों का सम्मान नहीं करते है न ही कोई कार्य करने से पहले बड़ों से उनकी स्वीकृत लेना आवश्यक समझते है। बच्चों के भीतर से माता-पिता का भय समाप्त हो जाता है।
- यदि पारिवारिक हिसां आर्थिक कारणों से होती है तो अधिक से अधिक कमाने की लालसा उन्हें अपराधिक राह पर ले जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. जौहरी, डॉ. महालक्ष्मी : भारतीय समाज में घरेलू हिंसा की शिकार महिलाएं पेज 24
2. सिंह यादव, डॉ. बीरेन्द्र : महिला उत्पीड़न के मनोवैज्ञानिक आयाम पेज–21
3. सिंह वर्षा : आधी आबादी का यथार्थ और भारतीय समाज, सत्यगंगा 23 जनवरी 2009
4. यंग पी.वी. (1960) साइन्टिफिक सोशल सर्वेज एण्ड रिसर्च एशिया पब्लिसिंग हाउस बाम्बे, पेज – 44
5. जी.ए. लुण्डवर्ग ओ.पी. सिंह पेज 09
6. मोसर सी.ए. (1961) सर्वे मेथड इन सोशल इन्वेस्टिगेशन, हिनमेन लंदन, पेज–3

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

महिला पुलिस का कमजोर वर्ग, महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवहार: (रीवा संभाग के विशेष संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन)

• प्रियंका तिवारी

सारांश- महिला पुलिस का कमजोर वर्ग महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवहार एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय विषय है, जिसे विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। महिला पुलिस अधिकारियों का कमजोर वर्ग की महिलाओं और बच्चों के साथ व्यवहार कई प्रकार से सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। महिला पुलिस अधिकारी कमजोर वर्ग की महिलाओं और बच्चों की स्थितियों को बेहतर तरीके से समझ सकती हैं क्योंकि वे स्वयं भी महिलाएं हैं। इससे वे अधिक संवेदनशीलता और सहानुभूति के साथ उनकी समस्याओं का समाधान कर सकती हैं। महिला पुलिस अधिकारियों की उपस्थिति कमजोर वर्ग की महिलाओं और बच्चों को सुरक्षा का अहसास दिला सकती है। इससे वे अधिक आत्मविश्वास महसूस कर सकती हैं और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा सकती हैं। कमजोर वर्ग की महिलाएं और बच्चे महिला पुलिस अधिकारियों के सामने अपनी समस्याएं अधिक स्वतंत्रता और ईमानदारी से व्यक्त कर सकते हैं। उन्हें यह डर नहीं होता कि उन्हें गलत समझा जाएगा या उन पर किसी प्रकार का अन्याय होगा। महिला पुलिस अधिकारी समाज में महिलाओं और बच्चों के प्रति दृष्टिकोण बदलने में मदद कर सकती हैं। वे एक रोल मॉडल के रूप में कार्य कर सकती हैं, जिससे कमजोर वर्ग की महिलाएं और बच्चे प्रेरित हो सकते हैं और अपने जीवन में सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं। महिला पुलिस अधिकारी कमजोर वर्ग की महिलाओं और बच्चों को कानूनी सहायता और मार्गदर्शन प्रदान कर सकती हैं, जिससे वे अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें और न्याय प्राप्त कर सकें। इन सब पहलुओं से यह स्पष्ट होता है कि महिला पुलिस का कमजोर वर्ग की महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवहार न केवल उनके लिए बल्कि पूरे समाज के लिए लाभकारी है। यह समाज में न्याय, समानता और सम्मान को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इस शोध पत्र में इन्हीं तथ्यों का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- कमजोर वर्ग, दृष्टिकोण, पुलिस, संवेदनशीलता, सहानुभूति, आत्मविश्वास, समाज

• अतिथि विद्वान, समाज कार्य विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा मध्य प्रदेश

अवधारणात्मक विवेचन- भारत में कमजोर वर्ग की अवधारणा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कारकों पर आधारित है। यह अवधारणा उन व्यक्तियों और समुदायों को इंगित करती है जो विभिन्न कारणों से समाज के अन्य वर्गों की तुलना में वंचित, शोषित या उपेक्षित होते हैं। कमजोर वर्ग की पहचान और उनका समर्थन भारत में विभिन्न सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। कमजोर वर्ग की अवधारणा निम्नलिखित प्रमुख समूहों को शामिल करती है। अनुसूचित जातियाँ वे जातियाँ हैं जिन्हें ऐतिहासिक रूप से अछूत माना गया और जिन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से शोषित किया गया। अनुसूचित जातियों को आरक्षण, शिक्षा, रोजगार, और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं। अनुसूचित जनजातियाँ वे आदिवासी समुदाय हैं जो समाज की मुख्य धारा से कटे हुए रहे हैं और जो विशेष रूप से जंगलों और पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। इन जनजातियों को भी शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में विशेष आरक्षण और सहायता प्राप्त होती है। अन्य पिछड़ा वर्ग उन जातियों और समुदायों को संदर्भित करता है जो सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं लेकिन अनुसूचित जाति या जनजाति नहीं हैं। समुदायों को भी आरक्षण और अन्य विकासात्मक योजनाओं का लाभ दिया जाता है। समाज के किसी भी वर्ग की महिलाएँ जिन्हें लैंगिक भेदभाव, शोषण, या उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के लिए विशेष योजनाएँ, सुरक्षा, शिक्षा, और रोजगार के अवसर प्रदान किए जाते हैं। विशेष रूप से वे बच्चे जो बाल श्रम, बाल विवाह, या किसी भी प्रकार के शोषण का सामना करते हैं। बच्चों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, और सुरक्षा की विशेष योजनाएँ चलायी जाती हैं। ऐसे व्यक्ति और परिवार जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है और जिनकी वार्षिक आय एक निश्चित सीमा से कम है।

पूर्व साहित्य की समीक्षा- पुलिस बल में महिलाओं को सम्मिलित करने का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रथम प्रयास संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था। अमेरिका में पुलिस विभाग महिलाओं के प्रवेश से संबंधित प्रभाव के संबंध में अनेक अध्ययन किए गए हैं, जिनमें से हीगिंस (1961), ओविंग्स (1969) तथा हार्न (1975) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने अपने अध्ययनों में विशेष रूप से महिला पुलिस की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उनकी आवश्यकता उनका प्रशिक्षण, उनके कार्यों का वितरण और कल्याण एवं परामर्श के संबंध में उनकी भूमिका का अध्ययन किया था। महिला पुलिस की भूमिका के संबंध कुछ अध्ययन हुए जिनमें से शेरमेन (1973), ब्ल,क एंड एंडरसन (1974), बार्टलेट और रोसेनब्लम (1977), सीचेल (1978), चार्ल्स (1981), स्नोर्टम (1983) के अध्ययन महत्वपूर्ण है। इन अध्ययनों के जो निष्कर्ष निकले, उनमें प्रमुख यह है कि महिला पुलिस की भूमिका का निर्वहन का स्तर पुरुष पुलिसकर्मियों के समान ही था।वेक्सलेर (1985) और लेकब (1987) ने अपना ध्यान इस बात पर केंद्रित किया कि जो पद परंपरागत रूप से पुरुष पुलिस कर्मियों के लिए थे, उन पदों पर आकर महिला पुलिसकर्मियों ने अच्छे तरीके से कार्य किया है।राष्ट्रीय स्तर पर पुलिस सम्बंधित विषयों पर अरुण प्रसाद मुर्कजी, ए.पी. मोहम्मद अली, बी. रामन, बी.पी. शाह, बी.आर. लाल, बी.एल. बोहरा, किरण बेंदी, एस.अखिलेश आदि ने महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। 2008 में

अखिलेश शुक्ल भारत में पुलिस संगठन नामक पुस्तक में महिला पुलिस की संगठनात्मक इसकी विवेचना प्रस्तुत की थी। संगठनात्मक विवेचना प्रस्तुत करते हुए ड, शुक्ल ने महिला पुलिस के दायित्वों एवं कर्तव्यों का विवेचन किया है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र के मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना है कि महिला पुलिस का कमजोर वर्ग, महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवहार कैसा है।

परिकल्पनाएँ – अध्ययन एवं अनुभव के आधार पर शोध अध्ययन के संदर्भ में शोधार्थो की परिकल्पनाएँ निम्नानुसार हैं–

1. महिला पुलिस का कमजोर वर्ग के साथ व्यवहार अच्छा रहता है।
2. महिला पुलिस का महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवहार अच्छा रहता है।

शोध पद्धति- शोध अध्ययन में तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के उपयोग किया गया है। शोध अध्ययन का अध्ययन का क्षेत्र रीवा संभाग है। जनता के विभिन्न वर्गों के 300 लोगों का साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से लिया गया है। इनका चयन सविचार (उद्देश्यपूर्ण) निदर्शन प्रणाली के माध्यम से किया गया है। निर्दशित वर्गो का विवरण इस प्रकार है। अध्यापक, अधिवक्ता, चिकित्सक, पत्रकार, छात्र, जनप्रतिनिधि, व्यवसायी, कृषक, पंचायतकर्मी तथा श्रमिक। उक्त चयनित प्रदर्शों में समाज के सभी वर्गों– अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों, सामान्य तथा व्यावसायिक दृष्टि से अध्यापकों, अधिवक्ता, चिकित्सक, पत्रकार, छात्र, जनप्रतिनिधियों, व्यवसाईयों, कृषकों, पंचायत कर्मियों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखा गया है। निदर्शों के चयन के पश्चात साक्षात्कार के लिये अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इन प्राथमिक स्रोतों के साथ ही साथ अध्ययन में द्वैतीयक स्रोतों– पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, रिपोर्ट्स एवं प्रकाशित आंकड़ों का भी प्रयोग किया गया है। तत्पश्चात् तथ्यों का सारणीयन, विश्लेषण करते हुये प्रतिवेदन लेखन का कार्य किया गया है।रीवा संभाग भारत के मध्य प्रदेश राज्य की एक प्रशासनिक भौगोलिक इकाई है, जो उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र से लगी हुई है। जिला रीवा, संभाग का प्रशासनिक मुख्यालय है।

तथ्यों का विश्लेषण एवं सारणीयन- इस अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु महिला पुलिस है। इन अधिकारियों में राजपत्रित पुलिस अधिकारी, पुलिस निरीक्षकों, उपनिरीक्षकों, सहायक उपनिरीक्षकों, प्रधान आरक्षकों और आरक्षकों का चयन किया गया है, जिनका आमना–सामना जनता से अनेक दायित्वों के निर्वहन के समय होता है। महिला पुलिसकर्मियों और उनके परिवारजनों से उनकी व्यक्तिगत समस्याओं का संबंध में साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्रश्न पूछे गए जिनका विश्लेषण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।कमजोर वर्गो से महिला पुलिस का व्यवहार कैसा है इस संबंध में उत्तरदाताओं से तथ्य एकत्रित किए गए जिन्हें निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

कमजोर वर्ग के साथ महिला पुलिस का व्यवहार- सामान्य अर्थ में भारत में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों को कमजोर वर्ग की संज्ञा प्रदान की जाती है। भारतीय संविधान निर्माताओं ने इस सत्य को समझ लिया था कि भारत में समानता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करने के लिए

सामाजिक स्तर पर भेदभाव को समाप्त करना तथा अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों को संवैधानिक आधार पर विशेष सुविधाएँ प्रदान करना आवश्यक होगा। भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए विशेष प्रावधानों की व्यवस्था की गयी है। उदाहरण के लिये अनुच्छेद 15 (1) के अनुसार धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर राज्य नागरिकों के साथ भेदभाव नहीं करेगा। अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता का उन्मूलन तथा अनुच्छेद 23 के द्वारा भारतीय समाज में प्रचलित बेगार प्रथा को समाप्त कर दिया गया है। संविधान में सामाजिक असमानता पर आधारित भेदभावों को समाप्त करने के लिये विशेष प्रावधान किये गये हैं। इसी तरह कमजोर वर्गों के लिये व्यवस्थापिका सदनों एवं शासकीय सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था की गयी है। शिक्षण संस्थाओं में स्थानों का भी आरक्षण किया गया है। प्रत्येक राज्य व केन्द्र शासित क्षेत्रों में कल्याण विभाग की स्थापना की गयी है। समाज में अस्पृश्यता के रोग को जड़-मूल से समाप्त करने हेतु संवैधानिक प्रावधान (अनुच्छेद 17) के अलावा अलग से विधि विनिर्मित की गयी हैं। इस समय यह विधिक "नागरिक अधिकार संरक्षण" के रूप में प्रभावशाली हैं। सांविधानिक एवं अन्य विधिक प्रावधानों को सफल बनाने के लिये पुलिस का सहयोग अत्यन्त आवश्यक होता है।

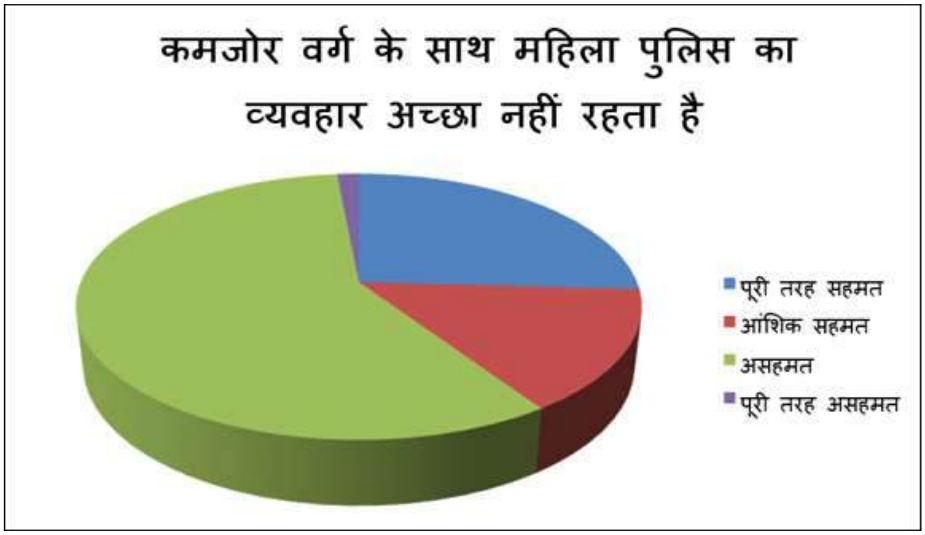
तालिका क्र. 01

कमजोर वर्ग के साथ महिला पुलिस का व्यवहार अच्छा नहीं रहता है?

क्र.	उत्तरदाता	पूरी तरह सहमत	आंशिक सहमत	असहमत	पूरी तरह असहमत	उत्तरदाताओं की संख्या
01	अध्यापक	07	03	15	05	30
02	अधिवक्ता	08	03	13	06	30
03	चिकित्सक	06	04	14	06	30
04	पत्रकार	06	04	13	07	30
05	छात्र	08	04	14	04	30
06	जनप्रतिनिधि	06	04	13	07	30
07	व्यवसायी	05	04	15	06	30
08	कृषक	06	04	14	06	30
09	पंचायतकर्मी	04	03	16	07	30
10	श्रमिक	07	02	15	06	30
	योग	63	35	142	60	300
	प्रतिशत	21	12	47	20	100

इस शोध अध्ययन में यह पाया गया है कि 21 प्रतिशत नागरिक पूरी तरह तथा 12 प्रतिशत नागरिक आंशिक रूप से यह स्वीकार करते हैं कि स्वतंत्रता के 75 वर्षों के पश्चात भी महिला पुलिस का व्यवहार समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के साथ अच्छा नहीं रहता है, जबकि 47 प्रतिशत इस धारणा से असहमत पाये गये हैं। उल्लेखनीय है कि 20 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को पूरी तरह अस्वीकार करते हैं कि महिला पुलिस थानों में कमजोर वर्ग के लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता है। उक्त स्थिति को नीचे डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्राफ क्र.01
कमजोर वर्ग के साथ महिला पुलिस का व्यवहार अच्छा नहीं रहता है?



बच्चों व स्त्रियों के साथ महिला पुलिस का व्यवहार- आज के इस बदलते समाज में बच्चों व स्त्रियों के साथ व्यवहार एक महत्वपूर्ण पहलू है। हम देखते हैं कि पुलिस जनों द्वारा बच्चों व स्त्रियों के साथ गलत व्यवहार करने से उन्हें उच्च अधिकारियों द्वारा सजा ही नहीं बल्कि नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाता है। अत: इस बदलते समाज में प्रत्येक महिला पुलिस अधिकारी/कर्मचारी को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जब भी कोई घटना घटित होती है और यदि स्त्री व बच्चे घटना स्थल से तथा अपराधियों की सही जानकारी दे सकते हैं तो जब उनसे पूँछताछ की जाती है तो उनके साथ सद्व्यवहार के साथ पेश आना चाहिए। यदि स्त्री है तो उसके पति या पालक के समक्ष घटना की जानकारी लेनी चाहिए, अकेले महिला को एकान्त स्थान पर ले जाकर पूंछताछ नहीं करनी चाहिए। यदि बालक को किसी मामले में थाने में बुलाया जाता है तो उसके माता-पिता या किसी रिश्तेदार के समक्ष पूंछताछ करनी चाहिए। यदि हो सके तो ऐसी कार्यवाही, सादी ड्रेस में या किसी वरिष्ठ अधिकारी के समक्ष या नहीं है तो उससे नीचे वाले अधिकारी के समक्ष पूंछताछ करनी चाहिए। बच्चों को थाने में बिना मतलब अधिक देर तक नहीं बैठाना चाहिए तथा उनके साथ मारपीट नहीं करनी चाहिए। यदि किसी मामले में बालक मुल्जिम है तो उसे पुरूष हवालात में नहीं रखना चाहिए। उसके माता-पिता या पालक यदि जमानत पेश करते हैं तो उसे छोड़ देना चाहिए। यदि किसी महिला को किसी मामले में पुलिस थाने में बुलाया गया है तो ऐसी परिस्थिति में उसके किसी रिश्तेदार के समक्ष पूंछताछ करके यदि जमानतीय मामला है तो उसे तत्काल ही (लिखित) जमानत पर छोड़ देना चाहिए और जमानत में लेने वाले व्यक्ति को यह हिदायतें देनी चाहिए कि सम्बन्धित न्यायालय में जिस तारीख को उपस्थिति होना है, उसे पेश करेगाा, यदि वह उपस्थित करने में असफल रहता है तो दुबारा थाने में बुलवाकर पेश

कराने की इत्तिला करनी चाहिए। महिला के मामले में यह सावधानी अवश्य ही बरतनी चाहिए। प्रत्येक पुलिस कर्मचारी अपनी ड्यूटी पर उसके साथ कोई जबरदस्ती न करे और न ही किसी प्रकार का अभद्र व्यवहार करें। हमेशा उसके साथ वैसा व्यवहार करें जैसा कि सामान्य नागरिक के साथ किया जाता है।

बालक एवं स्त्रियों को यदि वे किसी मामले में अपराधी ठहराए गए हैं तो महिला पुलिस कर्मचारी उसे हथकड़ी नहीं लगाएगी। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि बालक व स्त्री को भले ही उन्हें गवाही के रूप में थाना बुलाया जाता है या उन्हें मुल्जिम के रूप में बैठाया जाता है और उनके साथ सद्व्यवहार नहीं किया जाता है तो दोषी व्यक्ति को विभाग की ओर से सजा तो मिलती है लेकिन पुलिस की छवि बिगड़ जाती है। अत: प्रत्येक स्थिति में महिलाओं एवं बच्चों के साथ सद्व्यवहार करें जिससे पुलिस को समाज का सहयोग प्राप्त हो सके। द.प्र.सं. की धारा 51 में यह स्पष्ट किया गया है कि यदि किसी महिला की तलाशी लेनी है तो यह कार्य दूसरी महिला द्वारा शिष्टता का पूरा ध्यान रखकर किया जायगा। इसी प्रकार का प्रतिबंध द. प्र. सं. की धारा 100 में किसी स्थान की तलाशी में भी लगाया है। महिलाओं एवं बच्चों से महिला पुलिस का व्यवहार कैसा है, इस संबंध में उत्तरदाताओं से तथ्य एकत्रित किए गए जिन्हें निम्न तालिका में प्रस्तुत किया जा रहा है।

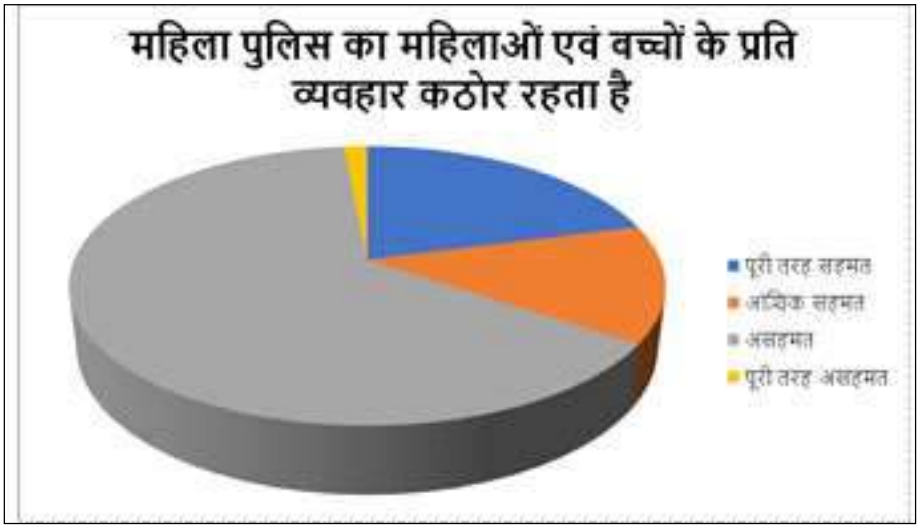
तालिका क्र.०२

महिला पुलिस का महिलाओं एवं बच्चों के प्रति व्यवहार कठोर रहता है?

क्र.	उत्तरदाता	पूरी तरह सहमत	आंशिक सहमत	असहमत	पूरी तरह असहमत	उत्तरदाताओं की संख्या
01	अध्यापक	06	03	16	05	30
02	अधिवक्ता	09	03	12	06	30
03	चिकित्सक	02	04	18	06	30
04	पत्रकार	04	04	15	07	30
05	छात्र	06	04	14	06	30
06	जनप्रतिनिधि	06	02	15	07	30
07	व्यवसायी	04	04	16	06	30
08	कृषक	05	04	15	06	30
09	पंचायतकर्मी	03	03	17	07	30
10	श्रमिक	05	02	17	06	30
	योग	50	33	155	62	300
	प्रतिशत	17	11	52	20	100

स्वतंत्रोत्तर भारत में महिलाओं के प्रति महिला पुलिस के व्यवहार में शालीनता में वृद्धि हुई है। इस अध्ययन में 52 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि, महिलाओं के प्रति महिला पुलिस का व्यवहार अच्छा रहता है। 20 प्रतिशत उत्तरदाता पूरी तरह इस बात को अस्वीकार करते हैं कि महिला पुलिस का महिलाओं के प्रति व्यवहार कठोर रहता है। इस तरह 72 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं के प्रति महिला पुलिस के व्यवहार को शिष्ट मानते हैं। केवल 11 प्रतिशत आंशिक रूप में और 17 प्रतिशत उत्तरदाता पूरी तरह यह मानते हैं कि अभी भी महिला पुलिस का महिलाओं के प्रति व्यवहार कठोर रहता है। उक्त स्थिति को नीचे डायग्राम में प्रस्तुत किया जा रहा है।

ग्राफ क्र.०२
महिला पुलिस का महिलाओं एवं बच्चों के प्रति व्यवहार कठोर रहता है?



निष्कर्ष- भारत में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों को कमजोर वर्ग की संज्ञा प्रदान की जाती है। कमजोर वर्गो से महिला पुलिस का व्यवहार कैसा है, इस संबंध में उत्तरदाताओं से तथ्य एकत्रित किए गए। इस शोध अध्ययन में यह पाया गया है कि 21 प्रतिशत नागरिक पूरी तरह तथा 12 प्रतिशत नागरिक आंशिक रूप से यह स्वीकार करते हैं कि स्वतंत्रता के 75 वर्षों के पश्चात भी महिला पुलिस का व्यवहार समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के साथ अच्छा नहीं रहता है, जबकि 47 प्रतिशत इस धारणा से असहमत पाये गये हैं। उल्लेखनीय हैं कि 20 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को पूरी तरह अस्वीकार करते हैं कि महिला पुलिस थानों में कमजोर वर्ग के लोगों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता है। बच्चों व स्त्रियों के साथ व्यवहार एक महत्वपूर्ण पहलू है। हम देखते हैं कि पुलिस जनों द्वारा बच्चों व स्त्रियों के साथ गलत व्यवहार करने से उन्हें उच्च अधिकारियों द्वारा सजा ही नहीं बल्कि नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाता है। अत: इस बदलते समाज में प्रत्येक महिला पुलिस अधिकारी/कर्मचारी को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि जब भी कोई घटना घटित होती है और यदि स्त्री व बच्चे घटना स्थल से तथा अपराधियों की सही जानकारी दे सकते हैं तो जब उनसे पूछताछ की जाती है तो उनके साथ सद्व्यवहार के साथ पेश आना चाहिए। महिलाओं एवं बच्चों से महिला पुलिस का व्यवहार कैसा है, इस संबंध में उत्तरदाताओं से तथ्य एकत्रित किए गए। स्वतंत्रोत्तर भारत में महिलाओं के प्रति महिला पुलिस के व्यवहार में शालीनता में वृद्धि हुई है। इस अध्ययन में 52 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि, महिलाओं के प्रति महिला पुलिस का व्यवहार अच्छा रहता है। 20 प्रतिशत उत्तरदाता पूरी तरह इस बात को अस्वीकार करते हैं कि महिला पुलिस का महिलाओं के प्रति व्यवहार कठोर रहता है। इस तरह 72 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं के प्रति महिला पुलिस के व्यवहार को शिष्ट मानते हैं। केवल 17 प्रतिशत आंशिक रूप में और 11 प्रतिशत उत्तरदाता पूरी तरह यह

मानते हैं कि अभी भी महिला पुलिस का महिलाओं के प्रति व्यवहार कठोर रहता है।

सुझाव- महिला पुलिस का कमजोर वर्ग महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवहार मैं सुधार के संबंध में महिला पुलिसकर्मियों को विशेष ट्रेनिंग देनी चाहिए जो उन्हें कमजोर वर्ग महिलाओं एवं बच्चों के साथ व्यवहार, फील्ड काम, जैसे कि इन्वेस्टीगेशन, पेट्रोलिंग, लॉ एंड आर्डर, वीआईपी प्रोटेक्शन आदि में समर्थ बना सके। महिला पुलिसकर्मियों को समर्थित और भेदभाव रहित वातावरण में काम करने का मौका देना चाहिए। अधिक महिला पुलिसकर्मियों की भर्ती करने के लिए नीतिगत उपाय अपनाने चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. चन्द्र, विपिन (1996), पुलिस अभिरक्षा एवं मानवाधिकार, उत्तर प्रदेश पुलिस जरनल, लखनऊ।
2. चौधरी चरण सिंह, (1978), विकासशील समाज और पुलिस, सर्विसेज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
3. चतुर्वेदी डॉ. शैलेन्द्र (2008) भारतीय पुलिस का इतिहास (अतीत से मुगल तक) पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो नई दिल्ली।
4. दुबे, रमेश प्रसाद (1978), विकासशील समाज और पुलिस, सर्विसेज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5. डॉ. एस. अखिलेश, (1995) पुलिस और समाज, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
6. अवस्थी डॉ. अमरेश, (1995) भारतीय प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
7. डॉ. एस. अखिलेश, (1995) आधुनिक भारत और पुलिस की भूमिका, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

शिक्षा और महिला नेतृत्व: पंचायतों में महिला जनप्रतिनिधियों का अध्ययन (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में)

• शिखा पाण्डेय

सारांश- शिक्षा और महिला नेतृत्व एक दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं। शिक्षा न केवल व्यक्तिगत विकास का माध्यम है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन और समग्र विकास का भी मुख्य आधार है। विशेष रूप से महिलाओं के संदर्भ में, शिक्षा उन्हें सशक्त बनाने, आत्मनिर्भर बनने और नेतृत्व की भूमिका निभाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है, जिससे वे अपनी आवाज बुलंद कर सकती हैं और समाज में सक्रिय भागीदारी कर सकती हैं। यह उन्हें निर्णय लेने की क्षमता, आत्मविश्वास और ज्ञान प्रदान करती है, जो प्रभावी नेतृत्व के लिए आवश्यक हैं। महिला नेतृत्व का मतलब केवल राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी नहीं है, बल्कि यह विभिन्न क्षेत्रों में उनकी नेतृत्व क्षमताओं को प्रदर्शित करता है, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, और सामाजिक कार्य। शिक्षा और महिला नेतृत्व का संबंध कई वर्षों से अनुसंधान का विषय रहा है। शिक्षा महिलाओं को न केवल सशक्त बनाती है, बल्कि उन्हें नेतृत्व की भूमिका निभाने में भी सक्षम बनाती है। इस शोधपत्र का उद्देश्य पंचायतों में महिला जनप्रतिनिधियों के शैक्षिक स्तर और उनके नेतृत्व की प्रभावशीलता के बीच संबंधों की जांच करना है। त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में ग्रामीण ग्रामीण नेतृत्व में महिला जनप्रतिनिधियों का शैक्षिक स्तर अच्छा है।

मुख्य शब्द- शिक्षा, नेतृत्व, विकास, सामाजिक परिवर्तन

भारत ग्रामों का देश है। यहाँ की जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत भाग ग्रामों में रहता है। महात्मा गांधी का विचार था कि असली भारत या भारत की आत्मा गाँवों में रहती है। महात्मा गांधी के समूचे चिंतन एवं दर्शन का केन्द्र गाँव ही रहे हैं। आज भी भारतीय गाँव एक ओर अशिक्षा, बेरोजगारी, भुखमरी रूढ़िवादिता से ग्रस्त हैं तो दूसरी ओर इन गाँवों में मूलभूत आवश्यक सुविधाएँ तथा चिकित्सा, संचार, विद्युत, पेयजल एवं शिक्षा का अभाव है। आज भी महती आवश्यकता है, कि विकास की समूची संरचना गाँव को केन्द्र मानकर की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में विकास की समस्त योजनाएँ ग्रामों से केन्द्र की

• रीवा (म.प्र.)

ओर बनना अति आवश्यक है। पंचायत राज प्रजातंत्र और विकास में गॉवों की सहभागिता और सक्रियता को सर्वाधिक ताकतवर माना गया है। एकदम गांव से जुड़े जनप्रतिनिधि जब अपने क्षेत्र की विकास योजनाओं और कार्यक्रमों में प्रभावशाली भूमिका निभा सकेंगें।

पंचायत राज व्यवस्था के सशक्तिकरण में महिला प्रतिनिधिगण वर्ग के रूप में संगठित होकर विभिन्न स्तरों पर बहुत सारे प्रयास कर स्थिति बदल सकती है, जैसे- स्वयं सहायता समूहों को ग्राम सभा की बैठक में अधिक से अधिक संख्या में भाग लेने को प्रेरित एवं उत्साहित कर सकती है। ग्राम सभा द्वारा गठित निगरानी समितियों में महिलाओं को भागीदारी बढ़ाई जा सकती है। ग्राम सभा में कुछ मूलभूत प्रश्न उठाकर, जैसे, गरीबी रेखा से नीचे रह रहे व्यक्तियों का क्रमवार चयन, सड़क निर्माण योजना में स्थान का निर्धारण रोजगार योजना से जोड़कर स्थानीय स्तर पर निर्माण कार्य की परियोजना आदि में महिलाओं को प्राथमिकता दिलवा सकती हैं। ग्राम पंचायत में महिलाओं के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सम्बन्धी पहल आदि पर चर्चा चला सकती हैं और निर्णायक भूमिका अदा कर सकती हैं।

स्थानीय विकास की कार्य योजनाओं का निर्माण करने तथा उनमें महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के उपाय कर सकती है। महिला शौचालय के निर्माण एवं सामान्य स्वच्छता सम्बन्धी प्रयासों में तेजी लाई जा सकती है। सभी बच्चों को स्कूल भेजने का प्रयास फलीभूत हो सकता है। सामाजिक-सामुदायिक कार्यों में स्त्री-पुरुष समानता के मूल्यों को स्थापित करने में मदद मिल सकती है।

शोध क्षेत्र का परिचय- मध्यप्रदेश के रीवा संभाग के चार जिलों मे से एक सीधी जिला सोन नदी के उत्तर दक्षिण में फैला हुआ है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण म.प्र. में सीधी जिला, रीवा संभाग के उत्तरी पूर्वी छोर पर स्थित है, जो रीवा-सिंगरौली मार्ग पर संभागीय मुख्यालय रीवा से 80 कि.मी. दूर है। इसका विस्तार 24012' से 33047' उत्तरी अक्षांश तथा 81018' से 82049' पूर्वी देशान्तर के बीच है। जिले की समुन्द्र तल से निम्नतम् ऊँचाई 243.68 मीटर तथा अधिकतम ऊँचाई 609.60 मीटर है। सीधी जिले का भौगोलिक क्षेत्रफल 10526 वर्ग कि.मी. है। जिले के पूर्व में सिंगरौली जिला दक्षिण में शहडोल जिला, पश्चिम में सतना जिला तथा उत्तर में रीवा जिला स्थित है।

शोध पत्र के उद्देश्य- इस शोध अध्ययन के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था में ग्रामीण नेतृत्व में महिला जनप्रतिनिधियों में शैक्षिक स्तर की वास्तविक जानकारी प्राप्त करना है।

शोध परिकल्पना- इस अध्ययन का मूल उद्देश्य त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था में ग्रामीण ग्रामीण नेतृत्व में महिला जनप्रतिनिधियों में शैक्षिक स्तर का अन्वेषण करना है। ग्रामीण ग्रामीण नेतृत्व में महिला जनप्रतिनिधियों में शैक्षिक स्तर सामान्य है।

शोध विधियॉ एवं शोध उपकरण- मैंने अपने अनुसंधान कार्य में अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक प्ररचना का प्रयोग किया है। अन्वेषणात्मक प्ररचना, वह प्ररचना है, जिसका उद्देश्य अज्ञात तथ्यों की खोज करना है। सीधी जिले में महिला जनप्रतिनिधियों की प्रस्थिति कैसी है और सामाजिक कल्याण में उनकी क्या भूमिका है। नागरिकों का इस

संबंध में क्या दृष्टिकोण है, इसका वास्तविक मूल्यांकन अवलोकन के द्वारा ही संभव हो पाया है। अनुसंधानकर्ता अपने शोधकार्य के सम्पादन हेतु जिन-जिन उपकरणों का प्रयोग करता है। उनमें साक्षात्कार अनुसूची का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है। अध्ययन की चयनित इकाइयों का विवरण निम्नवत है-

तालिका क्र. 01
अध्ययन की चयनित इकाइयाँ (महिला जनप्रतिनिधि)

पद	चयनित इकाईयाँ (निदर्श)
महिला पंच	250
महिला सरपंच	100
महिला जनपद सदस्य	40
महिला जिला पंचायत सदस्य	10
योग	400

निदर्शों के चयन के पश्चात साक्षात्कार के लिये अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इन प्राथमिक स्रोतों के साथ ही साथ अध्ययन में द्वैतीयक स्रोतों - पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, रिपोर्ट्स एवं प्रकाशित आंकड़ों का भी प्रयोग किया गया है। तत्पश्चात् तथ्यों का सारणीयन, विश्लेषण करते हुये प्रतिवेदन लेखन का कार्य किया गया है।

तथ्यों का एकत्रीकरण एवं विश्लेषण- किसी भी अनुसंधान या अध्ययन के लिए सटीक और प्रासंगिक तथ्यों का एकत्रीकरण और विश्लेषण अत्यंत महत्वपूर्ण है। तथ्यों का सही तरीके से संग्रहण और उनका गहन विश्लेषण ही हमें विश्वसनीय और अर्थपूर्ण निष्कर्ष तक पहुंचने में सहायता करता है। प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका क्रमांक - 02
पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधियों की साक्षरता संबंधी जानकारी का अध्ययन (आधार महिला पंचों की साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित महिला पंचों की संख्या	पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि					
			साक्षर हैं		साक्षर नहीं है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	कुसमी	50	16	32.00	32	64.00	02	04.00
2.	मझौली	50	18	36.00	30	60.00	02	04.00
3.	रामपुर नैकिन	50	24	28.00	25	50.00	01	02.00
4.	सीधी	50	25	50.00	24	48.00	01	02.00
5.	सिहावल	50	20	40.00	28	56.00	02	04.00
	योग	250	103	41.20	139	55.60	08	03.20

उपरोक्त तालिका क्रमांक 02 में शोध क्षेत्र सीधी जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित महिला पंचों से साक्षात्कार के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधियों की साक्षरता से संबंधित जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक- 02 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 50-50 महिला पंचों कुल मिलाकर 250 महिला पंचों में से 41.20 प्रतिशत महिला पंचों के अनुसार पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि साक्षर हैं। तथा 55.60 प्रतिशत महिला पंचों का

कहना है कि पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि साक्षर नहीं हैं, जबकि शोध क्षेत्र की 03.20 प्रतिशत महिला पंचों का मानना है, कि पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि साक्षर है, कि नहीं उन्हें इस संदर्भ में नहीं पता है।

तालिका क्रमांक - 03
पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधियों की साक्षरता संबंधी जानकारी का अध्ययन
(आधार महिला सरपंचों की साक्षात्कार अनुसूची)

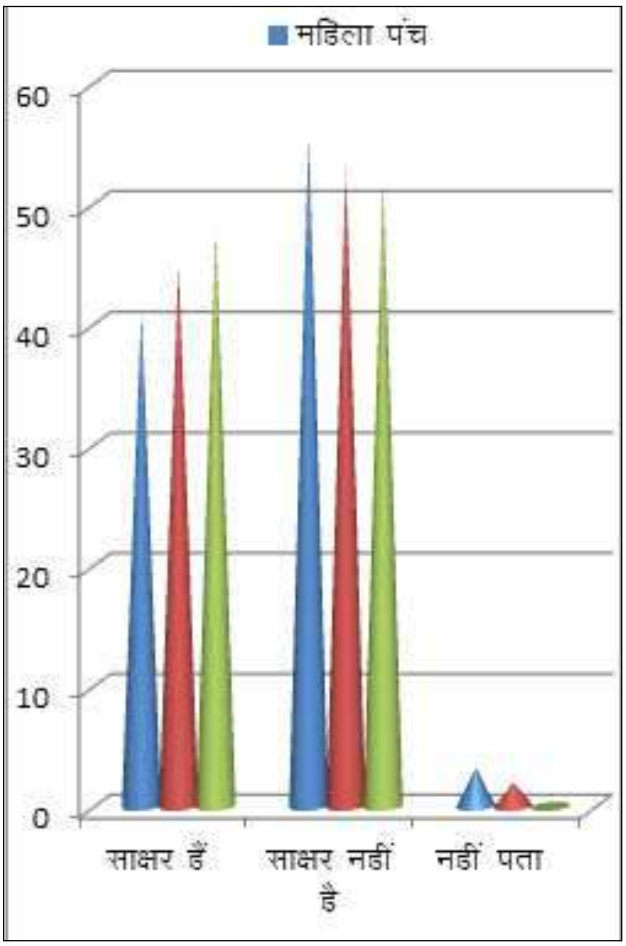
क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित महिला सरपंचों की संख्या	पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि					
			साक्षर हैं		साक्षर नहीं है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	कुसमी	20	06	30.00	13	65.00	01	05.00
2.	मझौली	20	08	40.00	11	55.00	01	05.00
3.	रामपुर नैकिन	20	10	50.00	10	50.00	00	00.00
4.	सीधी	20	11	55.00	09	45.00	00	00.00
5.	सिहावल	20	10	50.00	10	50.00	00	00.00
	योग	100	45	45.00	53	53.00	02	02.00

उपरोक्त तालिका क्रमांक 03 में शोध क्षेत्र सीधी जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित महिला सरपंचों से साक्षात्कार के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधियों की साक्षरता से संबंधित जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक 03 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 20-20 महिला सरपंचों कुल मिलाकर 100 महिला सरपंचों में से 45.00 प्रतिशत महिला सरपंचों के अनुसार पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि साक्षर हैं। तथा 53.00 प्रतिशत महिला सरपंचों का कहना है कि पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि साक्षर नहीं हैं, जबकि शोध क्षेत्र की 02.00 प्रतिशत महिला सरपंचों ने का मानना है, कि पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि साक्षर है, कि नहीं उन्हें इस संदर्भ में नहीं पता है।

तालिका क्रमांक - 04
पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधियों की साक्षरता संबंधी जानकारी का अध्ययन
(आधार महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों की साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित महिला जिला/ जनपद सदस्यों की संख्या	पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि					
			साक्षर हैं		साक्षर नहीं है		नहीं पता	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	कुसमी	10	04	40.00	06	60.00	00	00.00
2.	मझौली	10	04	40.00	06	60.00	00	00.00
3.	रामपुर नैकिन	10	05	50.00	05	50.00	00	00.00
4.	सीधी	10	06	60.00	04	40.00	00	00.00
5.	सिहावल	10	05	50.00	05	50.00	00	00.00
	योग	50	24	48.00	26	52.00	00	00.00

उपरोक्त तालिका क्रमांक 04 में शोध क्षेत्र सीधी जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधियों की साक्षरता से संबंधित जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक 04 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 10-10 महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों कुल मिलाकर 50 महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों में से 48.00 प्रतिशत महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों के अनुसार पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि साक्षर हैं। तथा 52.00 प्रतिशत महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों का कहना है कि पंचायतों के अंतर्गत चयनित महिला जनप्रतिनिधि साक्षर नहीं हैं।



तालिका क्रमांक - 05
पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाओं के क्षैक्षिक स्तर का अध्ययन
(आधार महिला पंचों की साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित महिला पंचों की संख्या	महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति							
			प्राथमिक शिक्षा		इण्टर तक		स्नातक एवं इससे ऊपर		अशिक्षित	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	कुसमी	50	23	46.00	07	14.00	01	02.00	19	38.00
2.	मझौली	50	23	46.00	08	16.00	01	02.00	18	36.00
3.	रामपुर नैकिन	50	24	48.00	12	24.00	02	04.00	12	24.00
4.	सीधी	50	24	48.00	13	26.00	03	06.00	10	20.00
5.	सिहावल	50	22	44.00	11	22.00	01	02.00	16	32.00
	योग	250	116	46.40	51	20.40	08	03.20	75	30.00

उपरोक्त तालिका क्रमांक 05 में शोध क्षेत्र सीधी जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित महिला पंचों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाओं के शैक्षिक स्तर की जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है। उपरोक्त तालिका क्रमांक 05 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 50–50 महिला पंचों कुल मिलाकर 250 महिला पंचों में से 46.40 प्रतिशत महिला पंचों के अनुसार महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति प्राथमिक शिक्षा तक है। तथा 20.40 प्रतिशत महिला पंचों का कहना था कि महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति इण्टर तक है, जबकि 03.00 प्रतिशत महिला पंचों ने कहा कि महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति स्नातक एवं इससे ऊपर तक है एवं 30.00 प्रतिशत महिला पंचों का कहना था, कि शोध क्षेत्र में पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाएं अशिक्षित है।

तालिका क्रमांक - 06
पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाओं के क्षैक्षिक स्तर का अध्ययन
(आधार महिला सरपंचों की साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित महिला सरपंचों की संख्या	महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति							
			प्राथमिक शिक्षा		इण्टर तक		स्नातक एवं इससे ऊपर		अशिक्षित	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	कुसमी	20	12	60.00	03	15.00	01	05.00	04	20.00
2.	मझौली	20	11	55.00	04	20.00	01	05.00	04	20.00
3.	रामपुर नैकिन	20	10	50.00	06	30.00	01	05.00	03	15.00
4.	सीधी	20	07	35.00	09	45.00	02	10.00	02	10.00
5.	सिहावल	20	11	55.00	05	25.00	01	05.00	03	15.00
	योग	100	51	51.00	27	27.00	06	06.00	16	16.00

उपरोक्त तालिका क्रमांक 06 में शोध क्षेत्र सीधी जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित महिला सरपंचों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाओं के शैक्षिक स्तर की जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है। तालिका क्रमांक– 06 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के

प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 20–20 महिला सरपंचों कुल मिलाकर 100 महिला सरपंचों में से 51.00 प्रतिशत महिला सरपंचों के अनुसार महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति प्राथमिक शिक्षा तक है। तथा 27.00 प्रतिशत महिला सरपंचों का कहना था कि महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति इण्टर तक है, जबकि 06.00 प्रतिशत महिला सरपंचों ने कहा कि महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति स्नातक एवं इससे ऊपर तक है एवं 16.00 प्रतिशत महिला सरपंचों का कहना था, कि शोध क्षेत्र में पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाएं अशिक्षित है।

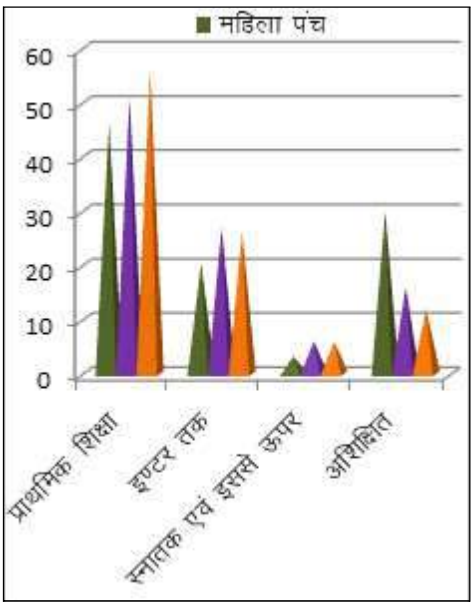
तालिका क्रमांक - 07

पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाओं के क्षैक्षिक स्तर का अध्ययन

(आधार महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों की साक्षात्कार अनुसूची)

क्र.	विकासखण्डों के नाम	न्यादर्श में चयनित महिला जिला/ जनपद पंचायत सदस्यों की संख्या	महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति							
			प्राथमिक शिक्षा		इण्टर तक		स्नातक एवं इससे ऊपर		अशिक्षित	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	कुसमी	10	06	60.00	02	20.00	00	00.00	02	20.00
2.	मझौली	10	07	70.00	01	10.00	00	00.00	02	20.00
3.	रामपुर नैकिन	10	05	50.00	03	30.00	01	10.00	01	10.00
4.	सीधी	10	05	50.00	04	40.00	01	10.00	00	00.00
5.	सिहावल	10	05	50.00	03	30.00	01	10.00	01	10.00
	योग	50	28	56.00	13	26.00	03	06.00	06	12.00

उपरोक्त तालिका में शोध क्षेत्र सीधी जिले के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से शोध क्षेत्र में पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाओं के शैक्षिक स्तर की जानकारी हेतु प्रदत्तों का संकलन किया गया है। तालिका क्रमांक 07 के ऑकड़े यह दर्शाते हैं कि शोध क्षेत्र के प्रत्येक विकासखण्ड से न्यादर्श में चयनित 10–10 महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों कुल मिलाकर 50 महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों में से 56.00 प्रतिशत महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों के अनुसार महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति प्राथमिक शिक्षा तक है। तथा 26.00 प्रतिशत महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों का कहना था कि महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति इण्टर तक है, जबकि 06.00 प्रतिशत महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों ने कहा कि महिला जनप्रतिनिधियों की शैक्षिक स्थिति स्नातक एवं इससे ऊपर तक है एवं 12.00 प्रतिशत महिला जिला/जनपद पंचायत सदस्यों का कहना था, कि शोध क्षेत्र में पंचायतों का नेतृत्व करने वाली महिलाएं अशिक्षित है।



यह शोध पत्र पंचायतों में महिला जनप्रतिनिधियों के शैक्षिक स्तर और उनके नेतृत्व के विभिन्न आयामों को गहराई से समझने में मदद करेगा, जो नीति निर्माताओं और सामुदायिक नेताओं के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. अग्रवाल सत्यशील (2018), भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति
2. मजूमदार ए.के. एवं सिंह भैंवर (1997), हिस्टोरिकल एण्ड कासटेट्यूसनल डेवलपमेंट ऑफ पंचायतराज, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. दत्त, विजय रंजन (1997), पंचायती राज संकल्पना और वर्तमान स्वरूप, सर्व संघ प्रकाशन, वाराणसी
4. द्विवेदी, राधेश्याम (1999), मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम – 1994, सुविधा लॉ हाऊस
5. द्विवेदी, योगेश, एवं लेखपाल, भीमसेन (2000), मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम, रेयर बुक सेण्टर, इंदौर
6. राव, ए. एन. (2000), प्राचीन राजस्व प्रशासन, किताब महल, इलाहाबाद
7. जिला सांख्यिकी पुस्तिका सीधी
8. Gazetteers of India: MP District Sidhi by Dr. Rajendra Verma, Year 1994 (Page No 300 to last)

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

आभासी पुस्तकालय और पुस्तकालयाध्यक्षों की बदलती भूमिका

• अनिल कुमार धीमान
•• अंजना रानी शर्मा

सारांश- कंप्यूटर का विकास पिछली सदी की सबसे बड़ी वैज्ञानिक उपलब्धियों में से एक है। परंतु जब कंप्यूटर प्रौद्योगिकी अपनी शैशवावस्था में थी तब टेलीग्राम, पोस्ट और बाद में टेलीफोन आदि प्रणालियों पर कार्य किया जाता था। ये ही संचार प्रणाली के ये संपर्क के लिए माध्यम थे। यद्यपि ये सभी प्रकार अपने आप में प्रभावशाली थे लेकिन कई बार जैसे पोस्ट व टेलीग्रगाम आदि से सूचनाएं प्राप्त करने में देरी लगती थी लेकिन नेटवर्क की शुरूआत से, आज कंप्यूटर, पफोन एवं मोबाइल जुड़े और आज हम इंटरनेट के माध्यम से ई-मेल से संदेश भेजने और प्राप्त करने में सक्षम हैं। अब सूचना भेजने और प्राप्त करने के ये सबसे सस्ते, आसान और तेज तरीके हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रौद्योगिकी से वीडियो कॉल और वीडियो कांफ्रेसिंग की सुविधा भी कंप्यूटर व मोबाइल फोन पर प्रदान की जाती है। इस प्रकार कंप्यूटर ने वास्तव में लोगों के कार्य करने के तरीकों को बदल दिया है। कंप्यूटर से हम व्यवसाय, शिक्षा, विनिर्माण, परिवहन और अन्य क्षेत्रों के विविध कार्यों को कर सकते हैं। कंप्यूटर ने सूचना प्रक्रिया व नई सूचनाओं के उत्पादन में शीघ्रता व सटीकता प्रदान की है जिससे संसार के लोगों के दृष्टिकोण बदल गए हैं। आज के पुस्तकालय भी कंप्यूटर व सूचना प्रौद्योगिकी से अछूते नही हैं। ये भी कंप्यूटर व सूचना प्रौद्योगिकी का खुलकर प्रयोग कर रहे हैं। आभासी पुस्तकालय आज के पुस्तकालयों में अमुद्रित रूप में पुस्तकों, पत्रिकाओं और समाचारपत्रों के भण्डार से अधिक के सूचना स्रोत हैं जिनका उपयोग आज भर-पूर मात्रा में हो रहा है। यह लेख आभासी पुस्तकालयों की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये आभासी पुस्तकालय पाठकों को सूचना प्रदान करने में कैसे प्रभावी है, के साथ-साथ आभासी पुस्तकालयों की चुनौतियों व पुस्तकालयाध्यक्ष की बदलती भूमिका पर चर्चा करता है।

मुख्य शब्द- ई-संसाधन, डिजिटल संसाधन, डिजिटल पुस्तकालय, आभासी पुस्तकालय, वर्चुअल पुस्तकालय

• सूचना वैज्ञानिक, गुरूकुल कांगडी (सम-विश्वविद्यालय), हरिद्वार - 249 408 (उत्तराखंड)
•• शोध-छात्रा (पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान), साबरमती विश्वविद्यालय, ओग्नज, अहमदाबाद-382 481(गुजरात)

1. आभासी पुस्तकालय क्या है- पारंम्परिक पुस्तकालयों से आशय आज के पुस्तकालयों में मुद्रित रूप में पुस्तकों, पत्रिकाओं और समाचारपत्रों के भण्डार से है। लेकिन वर्तमान पुस्तकालयों में मुद्रित संसाधनों के अतिरिक्त, ई-संसाधनों, श्रव्य/दृश्य सामग्री, मल्टीमीडिया सामग्री और अन्य संसाधनों का अधिग्रहण उपयोक्ताओं की माँग के अनुसार होता है, यही आभासी या वर्चुअल पुस्तकालय हैं। आभासी या वर्चुअल पुस्तकालय का अर्थ है कि जिसमें संसाधन भौतिक रूप में नहीं होते हैं वरन यह वितरित संसाधनों का समूह है जो अपनी वेबसाईट से उनका लिंक प्रदान करता है।

गैपेन (1993), के अनुसार आभासी पुस्तकालय, "पुस्तकालयों की सामग्री और सेवाओं तक दूरस्थ पहुंच की अवधारणा है जो अन्य सूचना संसाधन, प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दोनों में वर्तमान और अत्यधिक उपयोग की जाने वाली सामग्रियों के ऑन-साइट संग्रह का संयोजन प्रपत्र, व एक इलेक्ट्रॉनिक नेटवर्क के साथ बाहरी विश्वव्यापी पुस्तकालय और वाणिज्यिक तक पहुंच और वितरण प्रदान करता है।"

जबकि ग्राहम (1995), की राय यह है कि 'आभासी पुस्तकालय' 'डिजिटल पुस्तकालय' का एक साथी शब्द है और 1995 तक ये दोनों एक ही शब्द थे। यह 'किसी निश्चित समय में उपयोग के लिए उपलब्ध डेटाबेस की मात्रा को परिभाषित करने के लिए संकीर्ण रूप से उपयोग किया जाता है।' ग्राहम का विचार है कि आभासी और डिजिटल पुस्तकालय समानार्थी हैं यह दिलचस्प है, लेकिन जैसा कि वह स्वयं स्वीकार करते हैं, उन्होंने जो परिभाषा दी है वह बहुत संकीर्ण है।

विकिपीडिया (2024) के अनुसार, एक "आभासी पुस्तकालय" को डिजिटल वस्तुओं के एक केंद्रित संग्रह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें (प्रिंट, माइक्रो फॉर्म या अन्य मीडिया के विपरीत) पुस्तकालय संग्रह में मौजूद फाइलों और मीडिया को व्यवस्थित करने, संग्रहीत करने और पुनर्प्राप्त करने के साधनों के साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया प्रारूपों के रूप में संग्रहीत पाठ, दृश्य सामग्री, ऑडियो सामग्री, वीडियो सामग्री शामिल हो सकती है। आभासी पुस्तकालय आकार और दायरे में बहुत भिन्न हो सकते हैं, और इसे व्यक्तियों, संगठनों द्वारा बनाए रखा जा सकता है, या स्थापित भौतिक पुस्तकालय भवनों या संस्थानों, या शैक्षणिक संस्थानों से संबद्ध किया जा सकता है। इलेक्ट्रॉनिक सामग्री को स्थानीय रूप से संग्रहीत किया जा सकता है, या कंप्यूटर नेटवर्क के माध्यम से दूरस्थ रूप से अभिगम किया जा सकता है।

2. आभासी पुस्तकालय की प्रमुख विशेषताएं- आभासी पुस्तकालय की प्रमुख विशेषताएं हैं (अनाम, कोई तिथि नही)

- इसमें कोई भी संकलन भौतिक रूप में संग्रहीत नहीं होता है।
- सभी प्रलेख इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में उपलब्ध होते हैं।
- प्रलेख पुस्तकालय में किसी स्थान पर संग्रहित नहीं होते हैं वरन आभासी रूप में किसी दूरस्थ कप्यूटर में संग्रहीत रहते हैं।
- पुस्तकालय संसाधनों का वर्गीकरण करके उनसे सिर्फ सूचनायें ही प्रदान की जा सकती है।
- प्रलेखों तक किसी भी कप्यूटर के वर्कस्टेशन से पहुंचा जा सकता है।

- जब भी आवश्यकता हो तब प्रलेखों की प्राप्ति व पुन: प्राप्ति की जा सकती है।

आभासी पुस्तकालय की वेबसाइट पर प्रभावी खोज और ब्राउज सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। आभासी पुस्तकालय अक्सर भौतिक संग्रह की तुलना में अधिक नवीन जानकारी देते हैं। उनके स्रोतों को भौतिक पुस्तकालयों के स्रोतों की तुलना में अधिक दक्षता पूर्वक खोज सकते हैं और निहित सूचना को और जल्दी–जल्दी अद्यतन बनाया जा सकता है । न्वोरी व उनेगबू (एन.डी.) के आधार पर तालिका : 1 में विभिन्न प्रकार के पुस्तकालयों की तुलना की गयी है।

तालिका 01

विभिन्न प्रकार के पुस्तकालयों की तुलना

परंपरागत पुस्तकालय	आटोमैटिड पुस्तकालय	इलैक्ट्रानिक पुस्तकालय	डिजिटल पुस्तकालय	हाईब्रिड पुस्तकालय	आभासी पुस्तकालय
पारंपरिक पुस्तकालयों का संग्रह ज्यादातर प्रिंट मीडिया, पांडुलिपियाँ आदि हैं और अच्छी तरह से व्यवस्थित है। दस्तावेज तीव्र गति से खराब हो सकते हैं, संग्रहित जानकारी का पता लगाना आसान नहीं है। इसलिए उपयोगकर्ता तक आसानी से नहीं पहुंचती है। साथ ही पारंपरिक पुस्तकालय एक भौतिक सीमा के भीतर ही सीमित है।	मशीन–पठनीय प्रसूची, कम्प्यूटरीकृत अधिग्रहण, संचलन और ऑनलाइन पब्लिक एक्सेस कैटलॉग (ओपीएसी) वाले पुस्तकालयों को स्वचालित पुस्तकालय कहा जाता है। इस प्रकार के पुस्तकालयों की पकड़ पारंपरिक पुस्तकालयों के समान ही होती है।	जब एक स्वचालित पुस्तकालय में लोकल एरिया नेटवर्किंग और सीडी–रोम नेटवर्किंग की जाती है और इनमें ई–जर्नल्स, ई–बुक्स और अन्य समान प्रकार के प्रकाशन का क्रय शुरू होता है, तो इसे इलेक्ट्रॉनिक पुस्तकालय के रूप में जाना जाता है। इलेक्ट्रॉनिक पुस्तकालयों के संसाधनों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया शामिल है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का उपयोग सूचना के भंडारण, पुनर्प्राप्ति और वितरण के लिए किया जाता है।	यह इलेक्ट्रॉनिक पुस्तकालय के बाद का चरण है। डिजिटल पुस्तकालय में हाई स्पीड ऑप्टिकल फाइबर का उपयोग लोकल एरिया नेटवर्क के लिए किया जाता है और इसकी पहुंच वाइड एरिया नेटवर्क तक होती है। यह इंटरनेट आधारित सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला यानी ऑडियो और वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग और अन्य सुविधा प्रदान करता है। डिजिटल पुस्तकालय की अधिकांश हिस्सेदारी कंप्यूटर पठनीय रूप में होती है और यह अन्य ऑनलाइन स्रोतों तक पहुंच के बिंदु के रूप में भी कार्य करता है।	हाइब्रिड पुस्तकालयों में इलेक्ट्रॉनिक या डिजिटल और प्रिंट दोनों वातावरण होते हैं। दरअसल यह प्रिंट और डिजिटल वातावरण के बीच एक संक्रमणकालीन स्थिति है। हांलाकि भविष्य के पुस्तकालय मिश्रित प्रकृति के होंगे, इस दृष्टिकोण के पक्ष में कुछ बहुत ही मजबूत बिंदु कागज की सदियों पुरानी पढ़ने की आदत, डिजिटल प्रलेखों के बाद कागजी प्रलेखों को संभालने और पढ़ने की सुविधा (डिजिटल के मामले में, कुछ उपकरण प्रलेखों को पढ़ने के लिए आवश्यक आवश्यकं) है। इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद का असंगत मानक, डिजिटल उत्पाद का भिन्न प्रदर्शन मानक और उससे जुड़ी समस्या आदि है।	इलेक्ट्रॉनिक मीडिया प्रारूपों के रूप में संग्रहीत पाठ, –श्य सामग्री, ऑडियो सामग्री, वीडियो सामग्री शामिल हो सकती है। यह सामग्री आभासी रूप में दूरस्थ रूप में सर्वर कंप्यूटर पर संग्रहीत रहती है।

3. डिजिटल पुस्तकालय और आभासी पुस्तकालय- हांलाकि डिजिटल पुस्तकालय और आभासी पुस्तकालय शब्दों का प्रयोग एक–दूसरे के लिए होता है लेकिन यह उचित नहीं है। क्योंकि इन दोनों की विशेषताएं अलग–अलग हैं जो इन्हें एक–दूसरे से अलग करती हैं।

डिजिटल पुस्तकालय की अनेक परिभाषाएँ है, सरल शब्दों में डिजिटल पुस्तकालय ऐसा पुस्तकालय है जिसमें संग्रहों का भंडारण डिजिटल या इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में होता है और इन तक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों व कंप्यूटर के माध्यम से पहुँचा जा सकता है। डिजिटल पुस्तकालय, पारंपरिक पुस्तकालयों की तरह ही, संग्रह का चयन व अधिग्रहण करते हैं और उन्हे पाठकों को उसकी आवयकतानुसार उपलब्ध कराते हैं और संग्रह का संरक्षण करते हैं। इनमें प्रमुख अन्तर यह है कि डिजिटल पुस्तकालयों में संसाधन केवल मशीन पठनीय रूप में उपलब्ध होते हैं। इसका अभिप्राय है कि परंपरागत संग्रहण की अवधारणा को संशोधित किया जाए ताकि उसमें इलेक्ट्रॉनिक रूप से प्राप्त सामग्री भी शामिल करके उन्हें उपलब्ध करना आवश्यक होता है। डिजिटल पुस्तकालय में लोगों के विभिन्न प्रकार की सामाजिक व संगठनात्मक उपयोगी सूचना व ज्ञान से संबंधित आंकड़ों को मल्टीमीडिया डेटा में सूचना प्रबंधन के तरीकों का उपयोग करके रखा जाता है। जबकि आभासी पुस्तकालय बिना दीवारों के पुस्तकालय हैं।

आभासी पुस्तकालय या वर्चुअल लाइब्रेरी आमतौर पर उपयोगकर्ताओं को विशिष्ट सामग्रियों को जल्दी और आसानी से खोजने और अधिक सक्षम बनाने के लिए व्यवस्थित की जाती हैं। उनके पास एक सरल खोज इंटरफेस हो सकता है जो उपयोगकर्ताओं को कीवर्ड या खोज शब्द दर्ज करने की अनुमति देता है। वे अधिक उन्नत खोज तकनीकों का भी उपयोग कर सकते हैं जो उपयोगकर्ताओं को लेखक, प्रकाशन तिथि या विषय वस्तु जैसे विशिष्ट मानदंडों के आधार पर परिणामों को फिल्टर करने में सक्षम बनाती हैं। आभासी पुस्तकालय अक्सर किसी विशेष विषय क्षेत्र, जैसे विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, गणित (STEM), सामाजिक विज्ञान, कला और मानविकी के आसपास व्यवस्थित की जाती हैं। आभासी पुस्तकालय भी किसी विशेष दर्शक वर्ग, जैसे छात्र, शोधकर्ता या आम जनता पर ध्यान केंद्रित करती हैं।

आभासी पुस्तकालय को उपयोगकर्ताओं को संसाधनों और सूचनाओं की एक विस्तृत श्रृंखला प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है, और उनमें अक्सर ऐसे उपकरण और सेवाएँ शामिल होती हैं जो शोध और सीखने का समर्थन करती हैं। इनमें उद्धरण प्रबंधन उपकरण, संदर्भ प्रबंधन सॉफ्टवेयर, सहयोग उपकरण और ऑनलाइन फोरम शामिल हो सकते हैं जहाँ उपयोगकर्ता जानकारी साझा कर सकते हैं और अपनी रुचि के विषयों पर चर्चा कर सकते हैं।

4. आभासी पुस्तकालय की आवश्यकता एवं महत्व- डिजिटल तकनीक के उद्भव ने आभासी पुस्तकालय के विकास को बढ़ावा दिया है, जो सीखने और शोध के लिए एक आवश्यक संसाधन बन गए हैं। आभासी पुस्तकालय क्यों आवश्यक और महत्वपूर्ण हैं, इसके कुछ कारण इस प्रकार है (आशिकुज्जमां, 2023)

बहुत अधिक जानकारी तक पहुँच- आभासी पुस्तकालय बहुत अधिक जानकारी और संसाधनों तक पहुँच प्रदान करता है, जिसमें इलेक्ट्रॉनिक पुस्तकें, पत्रिकाएँ, डेटाबेस और अन्य डिजिटल मीडिया शामिल हैं। जानकारी का यह खजाना शोध और सीखने के लिए महत्वपूर्ण है, और आभासी पुस्तकालय इसे कहीं भी और कभी भी सुलभ बनाता है।

सुविधा- आभासी पुस्तकालय के साथ, उपयोगकर्ता दूर से ही जानकारी प्राप्त कर

सकते हैं, जिससे उन्हें भौतिक पुस्तकालय में जाये बिना शोध, अध्ययन या सीखना सुविधाजनक हो जाता है। यह उन व्यक्तियों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जिनके पास भौतिक पुस्तकालय तक पहुंच नहीं है, और वो दूरदराज के क्षेत्रों में रहते हैं, या जिन्हें यात्रा संबंधी समस्याएं हैं।

सहयोग- आभासी पुस्तकालय शोधकर्ताओं, छात्रों और विद्वानों के बीच सहयोग की सुविधा प्रदान करता है। उपयोगकर्ता संसाधनों को साझा कर सकते हैं, संयुक्त शोध कर सकते हैं और दूर से परियोजनाओं पर सहयोग कर सकते हैं। इससे शोध अधिक कुशल और प्रभावी हो जाता है।

लचीलापन- आभासी पुस्तकालय 24X7 सुलभ हैं, जिससे उपयोगकर्ता संसाधनों तक सुविधाजनक तरीके से पहुँच सकते हैं। यह लचीलापन उन छात्रों के लिए महत्वपूर्ण है जिनके पास काम या परिवार जैसी अन्य जिम्मेदारियाँ हैं, क्योंकि यह उन्हें अपने समयानुसार खाली समय में अपनी सुविधानुसार अध्ययन और शोध करने की सुविधा प्रदान करता है।

प्रभावी लागत- आभासी पुस्तकालय पारंपरिक भौतिक पुस्तकालयों की तुलना में अधिक लागत प्रभावी हैं। भौतिक संसाधनों को प्रिंट करने और शिपिंग करने से जुड़ी कोई लागत इसमें लगती नहीं है। चूकिं डिजिटल संसाधन एक साथ कई उपयोगकर्ताओं के लिए सुलभ हैं, जिससे यह लंबे समय में अधिक लागत प्रभावी हो जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि आभासी पुस्तकालय शिक्षा और शोध के लिए जरूरी हैं। वे विशाल जानकारी तक पहुँच प्रदान करते हैं, सुविधाजनक हैं, सहयोग की सुविधा देते हैं, लचीलापन प्रदान करते हैं, और लागत प्रभावी हैं। ये लाभ आभासी पुस्तकालय को आधुनिक समय की शिक्षा और शोध के लिए एक आव'यक संसाधन बनाते हैं।

5. आभासी पुस्तकालय की चुनौतियाँ- इस प्रकार देखते हैं कि आभासी पुस्तकालय से कई लाभ मिलते हैं। लेकिन कई चुनौतियों का समाधान भी करना होगा। आभासी पुस्तकालय की कुछ चुनौतियाँ इस प्रकार हैं (आशिकुज्जमां, 2023)

डिजिटल डिवाइस- आभासी पुस्तकालय की प्राथमिक चुनौतियों में से एक डिजिटल डिवाइस है। हर किसी के पास इंटरनेट या डिजिटल डिवाइस तक पहुंच नहीं है, जिससे आभासी पुस्तकालय तक पहुंच मुश्किल हो जाती है। इससे सूचना और ज्ञान तक पहुंच में असमानताएं पैदा हो सकती हैं।

सूचना का अतिभार- आभासी पुस्तकालय बहुत अधिक मात्रा में सूचना तक पहुँच प्रदान करती है, जो कुछ उपयोगकर्ताओं को परेशान कर सकती है कि कौन सा संसाधन सही व उपयोगी है। उपयोगकर्ताओं को अपनी आवश्यकता की जानकारी ढूँढ़ने में संघर्ष करना पड़ सकता है। इस तरह वे इस बारे में अनिश्चित हो सकते हैं कि जानकारी की गुणवत्ता और प्रासंगिकता का मूल्यांकन कैसे करें।

कॉपीराइट और लाइसेंसिंग मुद्दे- इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों तक पहुँचने के दौरान आभासी पुस्तकालय को जटिल कॉपीराइट और लाइसेंसिंग मुद्दों से निपटना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप कुछ सामग्रियों तक पहुँच पर प्रतिबंध लग सकता है, जिससे

आभासी पुस्तकालय की उपयोगिता सीमित हो जाती है।

प्रौद्योगिकी अप्रचलन- प्रौद्योगिकी तेजी से बदलती है, और आभासी पुस्तकालयों को इन परिवर्तनों के साथ तालमेल बनाए रखना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि उनके संसाधन और सेवाएँ सुलभ और उपयोगी बनी रहें। यह एक चुनौती हो सकती है, विशेषकर सीमित संसाधनों वाले संस्थानों के लिए।

डेटा सुरक्षा और गोपनीयता- आभासी पुस्तकालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उपयोगकर्ताओं का डेटा सुरक्षित रहे और उनकी गोपनीयता सुरक्षित रहे। यह चुनौतीपूर्ण हो सकता है, विशेषकर तब जब साइबर खतरे अधिक परिष्कृत हो जाते हैं।

उपयोगकर्ता प्रशिक्षण और सहायता: उपयोगकर्ताओं को आभासी पुस्तकालयों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है, तथा उन्हें उपलब्ध संसाधनों और सेवाओं का उपयोग करने के लिए निरंतर सहायता की आवश्यकता होती है।

6. पुस्तकालयाध्यक्ष की बदलती भूमिका- पारंपरिक पुस्तकालयाध्यक्ष को पुस्तकालयों का संरक्षक माना जाता था जो भौतिक सामग्रियों के चयन और देखभाल के लिए जिम्मेदार था, लेकिन आज का पुस्तकालयाध्यक्ष एक डिजिटल संरक्षक के रूप में काम करता है, जो इलेक्ट्रॉनिक के साथ-साथ भौतिक सामग्रियों तक पहुंच प्रदान करता है (धीमान, 2024)। वह डिजिटल डेटाबेस का विशेष ज्ञान बनाए रखता है और इलेक्ट्रॉनिक सामग्रियों का मूल्यांकन करता है और लाइसेंस प्राप्त करता है। कंप्यूटर पर अत्यधिक निर्भरता ने पुस्तकालयाध्यक्ष की भूमिका को और अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण बना दिया है। आभासी (वर्चुअल) पुस्तकालय ने वेब-आधारित सामग्री निर्माण और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की बढ़ती लोकप्रियता ने 21वीं सदी में जिज्ञासु समुदायों द्वारा पुस्तकालयों के उपयोग के तरीके को बदल दिया है। कुछ बदली भूमिकायें निम्नवत हो सकती हैं (https://www.librarianshipstudies. com/2016/03/librarian.html):

आभासी पुस्तकालय का पुस्तकालयाध्यक्ष लाइसेंस प्राप्त इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों तक पहुँच प्रदान करना और उनका रखरखाव करना। इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों और डेटाबेस की ऑनलाइन पहुँच और रखरखाव के लिए संग्रहों का डिजिटलीकरण करना।

डिजिटल संग्रहों को व्यवस्थित और प्रस्तुत करने के लिए सिस्टम विकसित करना। जन्मजात डिजिटल जानकारी की खोज और संग्रह करने के लिए सिस्टम विकसित करना भी इसी दायरे में आता है। आज आभासी पुस्तकालय का पुस्तकालयाध्यक्ष पाठकों को पढ़ने के सुझाव और सिफारिशें प्रदान करता है। उपयोगकर्ताओं द्वारा व्यक्तिगत रूप से, फोन पर, ई-मेल, ऑनलाइन चैट, टेक्स्ट मैसेज और सोशल मीडिया जैसे कि फेसबुक पेज के जरिए पूछे गए सवालों का जवाब देता है।

वह बहुत सारे संसाधनों को देखकर उनमें से सबसे मूल्यवान संसाधनों को चुन कर पाठकों को प्रदान करता है। यह उसके उन कौशलों में से एक है जिसे पाठक पुस्तकालयाध्यक्ष की सहायता से सीख सकते हैं। पुस्तकालयाध्यक्ष पाठकों को साइट

पर और विशेष इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों में पुस्तकालय सामग्री की खोज और खोज में सहायता करते हैं।

आज का पुस्तकालयाध्यक्ष एक डिजिटल पब्लिक रिलेशन अधिकारी है के रूप में कार्य करता है, जो डेटाबेस प्रबंधकों, इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशकों आदि के साथ संबंध विकसित करता है। साथ ही सामुदायिक कार्यक्रमों की मेजबानी करता है, और सामग्री तक पहुँच बढ़ाने के लिए अन्य पुस्तकालयों के साथ साझेदारी करता है।

साथ ही सूचना की प्रभावी खोज और उपयोग में निर्देश और शिक्षा प्रदान करता है। आज के छात्र तकनीक-प्रेमी हैं, लेकिन वे नहीं जानते कि आवश्यक जानकारी कैसे प्राप्त करें और उन्हें निर्देश और मार्गदर्शन की आवश्यकता है। पुस्तकालय सामग्री के प्रभावी उपयोग के लिए गाइड, ट्यूटोरियल, हैंडआउट भी बनाता है।

अत: पारंपरिक पुस्तकालयाध्यक्ष एक मार्गदर्शक था, जो उपयोगकर्ताओं को प्रासंगिक सामग्री खोजने में सहायता करता था। आज का पुस्तकालयाध्यक्ष एक डिजिटल मार्गदर्शक है, जो डिजिटल पुस्तकालय सेवाओं और सामान्यीकृत डिजिटल साक्षरता के उपयोग के बारे में पाठकों को शिक्षित करता है, और अक्सर पुस्तकालय वेबसाइटों के माध्यम से उपयोगकर्ताओं को आभासी सेवा प्रदान करता है।

7. भारत वर्ष में आभासी पुस्तकालय- भारतीय राष्ट्रीय आभासी (वर्चुअल) पुस्तकालय को भारत की मूर्त और अमूर्त सांस्कृतिक विरासत के सभी रूपों को प्रदर्शित करने के लिए 10.12.2019 को भारतीय संस्कृति पोर्टल (आईसीपी) के रूप में विकसित और लॉन्च किया गया है। नेशनल वर्चुअल लाइब्रेरी ऑफ इंडिया नामक इस प्लेटफॉर्म का उद्देश्य सार्वजनिक पुस्तकालयों, संग्रहालयों, केंद्र और राज्य सरकारों, निजी संग्रहों आदि के पास मौजूद कई अभिलेखीय और अन्य इलेक्ट्रॉनिक संसाधनों को एक ही नॉलेज हब इंटरफेस पर लाना है।



चित्र: भारतीय राष्ट्रीय आभासी पुस्तकालय का स्नैपचैॉट (स्रोत: https://indianculture.gov.in/) इसका यूआरएल https://indianculture.gov.in/ है, जो पब्लिक डोमेन पर उपलब्ध है। इस पोर्टल की वर्तमान स्थिति निम्नलिखित है (सिंह, 2022):

इसमें मेटाडेटा के साथ कुल 3.04 लाख डिजिटल कलाकृतियां हैं। इसमें 34.91 लाख से अधिक ग्रंथ सूची प्रविष्टियां भी हैं।

इसकी सामग्री को 18 क्यूरेटेड श्रेणियों में प्रस्तुत किया गया है। इनमें दुर्लभ पुस्तकें, ई-पुस्तकें, अभिलेखागार, राजपत्र व गजेटियर, पांडुलिपियां, संग्रहालय संग्रह, पेंटिंग, ओडियो, अमूर्त सांस्कृतिक विरासत, फोटो अभिलेखागार, चित्र, वीडियो, यूनेस्को की सामग्री, शोध पत्र, भारतीय राष्ट्रीय पुस्तक सूची, रिपोर्ट व कार्यवाही, संघीय सूची और अन्य सूचियां शामिल हैं।

इसमें निर्मित विषय सामग्री की 12 श्रेणियां भी हैं। इनमें कहानियां, स्निपेट्स, फोटो निबंध, भारत के किले, भारत के वस्त्र व कपड़े, भारत के ऐतिहासिक शहर, भारत के संगीत वाद्ययंत्र, खान- पान व संस्कृति, वर्चुअल वॉक (पूर्वाभ्यास), स्वतंत्रता अभिलेखागार, विस्मृत नायक, अजंता गुफाएं और उत्तर-पूर्व पुरालेख हैं।

8. उपसंहार- इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हांलाकि आभासी पुस्तकालयों के अनेक लाभ हैं जिसके कारण ये आजकल अति लोकप्रिय हो रहे हैं। लेकिन आभासी पुस्तकालयों में लिए कई चुनौतियां निहितार्थ हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए डिजिटल डिवाइड को संबोधित करना महत्वपूर्ण है कि आभासी पुस्तकालय सभी उपयोगकर्ताओं के लिए सुलभ हों। आभासी पुस्तकालयों को उपयोगकर्ताओं को उपलब्ध जानकारी को नेविगेट करने में मदद करने के लिए प्रभावी खोज और पुनर्प्राप्ति उपकरण प्रदान करने चाहिए। क, पीराइट और लाइसेंसिंग मुद्दों को सामग्री प्रदाताओं के साथ साझेदारी और ओपन-एक्सेस संसाधनों के विकास के माध्यम से संबोधित किया जाना चाहिए। आभासी पुस्तकालयों को तकनीकी परिवर्तनों के साथ तालमेल रखने और उपयोगकर्ताओं के डेटा की सुरक्षा के लिए डेटा सुरक्षा और गोपनीयता में निवेश करने के लिए चुस्त और अनुकूलनीय होना चाहिए। अंत में, उपयोगकर्ता प्रशिक्षण और समर्थन यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि उपयोगकर्ता आभासी पुस्तकालयों और उनके संसाधनों और सेवाओं का पूरी तरह से उपयोग कर सकें। तभी आभासी पुस्तकालयों की उपयोगिता सार्थक सिद्ध होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. आशिकुज्जमां, एम. डी. (2023), वर्चुअल लाइब्रेरी, LIS Education Network- https%//indiatyping-com/indeÛ- php/font&converter/unicode&to&krutidev& font&converter.
2. अनाम (कोई तिथि नही) आधुनिक ग्रंथालय: स्वचालित, डिजिटल और वर्चुअल, https://www.nios.ac.in/media/documents/SrSecLibrary/LCh-003.pdf.
3. सिंह, देवेन्द्र (2022), भारतीय राष्ट्रीय आभासी पुस्तकालय (एनवीएलआई) में कुल 3. 04 लाख डिजिटल कलाकृतियां और 34.91 लाख से अधिक ग्रंथ सूची प्रविष्टियां हैं: श्री जी. किशन रेड्डी. साहस समाचार, 5 अगस्त 2022. https://www.saahassamachar.in/2022/08/05/the-national-virtual-library-of-india-nvli-has-a-total-of-3-04-lakh-digital-artifacts-and-over-34-91-lakh-bibliographic-entries-shri-g-kishan-reddy/.
4. धीमान, अनिल कुमार (2024), पुस्तकालय प्रबंधन, कंरट पब्लिकेशन, आगरा।
5. Gapen, K. G. (1993). The Virtual Library: Knowledge, Society, and the Librarian. In: L.M. Saunders (Ed.): The Virtual Library: Visions and

Realities (pp.1-14). Westport: Meckler.

6. Graham, P. (1995). Requirements for the Digital Research Library. College & Research Libraries, 56: 331-339.
7. Nworie, J.C. and Unegbu, M. (n.d.). Virtual and E-Library. https://www.researchgate.net/publication/ 327187544_VIRTUAL_AND_ ELECTRONIC_LIBRARIES.
8. Wikipedia (2024). https://en.wikipedia.org/wiki/Digital_library.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

संस्कृत साहित्य के संवर्धन में शैक्षणिक संस्थानों की भूमिका

• मधु

सारांश- संस्कृत इस देश की आत्मा है। यह देश विश्व गुरू रहा है, विश्व गुरू होने के पीछे जो महत्वपूर्ण विद्या रही है, दर्शन रहा है, विचार रहा है, तो वह है संस्कृत। जिसको सबसे प्रचीनतम भाषा बोला और माना जाता है। इस देश को जानना हो, इस देश के ज्ञान और विज्ञान को समझना हो और इसकी शिखरता को पहचानना हो तो बहुत जरूरी है कि हम संस्कृत को पहचाने और जाने। प्राचीनकाल में इस देश के अंदर तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला जैसे बहुत महत्वपूर्ण संस्थान थे, जहां पूरी दुनिया के लोग शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे ज्ञान विज्ञान और अनुसंधान के क्षेत्र में यह देश पूरे विश्व में शिखर पर था। पूर्व की भांति आज भी कई शिक्षण संस्थान हैं जो हमारी विरासत को सहेज कर रखे हैं और दिन प्रतिदिन उसके संरक्षण तथा विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं जिनमे से प्रस्तुत तीन संस्थान, जो लम्बे समय से काम कर रहे हैं, अनुसंधान के क्षेत्र में ये तीनों संस्थान अलग-अलग करके काम कर रहे हैं। प्राचीन शास्त्र के संबंधों में आधारित शोध का कार्य कर रहे हैं पहला है राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दूसरा वेद, वेदांग, ज्योतिष और वास्तुशास्त्र के रूप में लाल बहादुर शास्त्री विद्यापीठ डीम्ड यूनिवर्सिटी काम कर रही है, तीसरा संस्थान, भारतीय शास्त्रों एवं संगठन यंत्र आधारित शोध और विभिन्न प्राचीन दर्शन की पारम्परिक शास्त्रों के साथ काम कर रहे हैं। इसलिए ये तीनों संस्थान बहुत शीर्ष का काम कर रहे हैं। विज्ञान के साथ जब संस्कृत का ज्ञान जुड़ेगा तो एक बार यह देश विश्व में गुरू कहलाएगा।

मुख्य शब्द- साहित्य, शिक्षा, शिक्षण संस्थान,ज्ञान, विज्ञान, भाषा

संस्कृत इस देश की आत्मा है। यह देश विश्व गुरू रहा है, विश्व गुरू होने के पीछे जो महत्वपूर्ण विद्या रही है, दर्शन रहा है, विचार रहा है, तो वह है संस्कृत। जिसको सबसे प्रचीनतम भाषा बोला और माना जाता है । वेदों को सबसे प्राचीनतम ग्रंथ माना गया है । जो संस्कृत भाषा में है।

संस्कृत में एक उक्ति रही है:

एतद् देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

• सह आचार्य, विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, श्री रामेश्वरदास अग्रवाल कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय हाथरस

स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षरेनः पृथ्वियां सर्व मानवाः ।।

भावार्थ- जो लोग भारत में पैदा हुए तथा यहाँ के ब्राहमणों ने अपने-अपने चरित्र से पृथ्वी के समस्त मानव-प्राणी को शिक्षा दी।

अयं बन्धुरयंनेति गणना लघुचेतसाम।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम।।

भावार्थ-यह अपना बन्धु है और यह अपना बन्धु नहीं है, इस तरह की गणना छोटे चित्त वाले लोग करते हैं। उदार हृदय वाले लोगों की तो (सम्पूर्ण) धरती ही परिवार है। पूरी दुनिया को हमने अपना परिवार माना है, यह हमारा विचार है, यह हमारे संस्कार ही हैं।हमने पूरी दुनिया को अपने परिवार के रूप में माना है । वसुधैव कुटुम्बकम की बात कही है। कहा भी गया है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत।

भावार्थ- सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े।

इस देश को जानना हो, इस देश के ज्ञान और विज्ञान को समझना हो और इसकी शिखरता को पहचानना हो तो बहुत जरूरी है कि हम संस्कृत को पहचाने और जाने। प्राचीनकाल में इस देश के अंदर तक्षशिला, नालंदा और विक्रमशिला जैसे बहुत महत्वपूर्ण संस्थान थे, जहां पूरी दुनिया के लोग शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे ज्ञान विज्ञान और अनुसंधान के क्षेत्र में यह देश पूरे विश्व में शिखर पर था । पूर्व की भांति आज भी कई शिक्षण संस्थान हैं जो हमारी विरासत को सहेज कर रखे हैं और दिन प्रतिदिन उसके संरक्षण तथा विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। वर्तमान में संस्कृत के तीन मानद विश्वविद्यालय हैं: (i) केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,नई दिल्ली, (ii) श्री लाल बहादुर शास्त्री केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, और (iii) राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति।

केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली- केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली में स्थित एक शैक्षणिक संस्थान है। यह भारत सरकार द्वारा पूर्णतः वित्तपोषित है। भारत सरकार ने प्रथम संस्कृत आयोग (1956-1957) की अनुशंसा के आधार पर संस्कृत के विकास तथा प्रचार-प्रसार हेतु संस्कृत सम्बद्ध केन्द्र सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के उद्देश्य से 15 अक्टूबर 1970 को एक स्वायत्त संगठन के रूप में इसकी स्थापना की। 7 मई 2002 को मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार ने इसे बहुपरिसरीय मानित विश्वविद्यालय के रूप में घोषित किया। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान अब केंद्रीय विश्वविद्यालय है।

श्री लालबहादुर शास्त्री केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली- अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन ने 8 अक्टूबर 1962 को विजयादशमी के दिन दिल्ली में संस्कृत विद्यापीठ की स्थापना की, जिसमें डॉ. मंडन मिश्र को विद्यापीठ का विशेष कार्य अधिकारी व निदेशक नियुक्त किया गया। सम्मेलन में लिये गए निर्णय के अनुसार अखिल भारतीय संस्कृत विद्यापीठ नाम से एक पृथक् संस्था स्थापित की गई। इसके

संस्थापक अध्यक्ष स्वर्गीय प्रधनमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी थे। विद्यापीठ के विकास में स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री जी की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रधनमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी ने इस विद्यापीठ को अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाने की घोषणा की।

शास्त्री जी की मृत्यु के पश्चात् भूतपूर्व प्रधनमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने विद्यापीठ की अध्यक्षता स्वीकार की। उन्होंने घोषणा की कि 2 अक्टूबर 1966 से विद्यापीठ को श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के नाम से जाना जाएगा। 1 अप्रैल 1967 को विद्यापीठ का अधिग्रहण भारत सरकार ने किया और 21 दिसम्बर 1970 को यह राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान एक पंजीकृत स्वायत्त संस्था का अंग बन गया तथा श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ नाम से कार्य करने लगा।

विद्यापीठ के कार्य तथा इसके बहुमुखी विकास से प्रभावित होकर मार्च, 1983 में भारत सरकार ने इसको मानित विश्वविद्यालय का स्तर देने का प्रस्ताव रखा। अंततः आवश्यक परीक्षण एवं अन्य औपचारिकताओं के पश्चात् भारत सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सिपफारिश पर नवम्बर, 1987 में विद्यापीठ को मानित विश्वविद्यालय का स्तर प्रदान किया। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सिफारिश पर राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान से पृथक् एक संस्था श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के नाम से भूतपूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री श्री पी. वी. नरसिंह राव की अध्यक्षता में 20 जनवरी 1987 को पंजीकृत की गयी। 1989 में डॉ. मण्डन मिश्र विद्यापीठ के प्रथम कुलपति नियुक्त हुए। 1 नवम्बर 1991 से मानित विश्वविद्यालय के रूप में इस विद्यापीठ ने कार्य करना प्रारम्भ किया।

राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति- राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, यूजीसी अधिनियम, 1956 की धारा 3 के तहत स्थापित एक विश्वविद्यालय है जो संस्कृत अध्ययन, पारंपरिक शास्त्रों और शिक्षाशास्त्र में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक प्रमुख संस्थान है। इसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के माध्यम से वित्त पोषित किया जाता है। विद्यापीठ का संस्कृत शिक्षा की सेवा में एक लंबा इतिहास रहा है।

संस्कृत आयोग (1957) की सिफारिशों पर भारत सरकार द्वारा 1961 में तिरुपति (आंध्र प्रदेश) में केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ तिरुपति सोसाइटी के नाम से एक स्वायत्त निकाय के रूप में विद्यापीठ की स्थापना की गई थी। भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. एस. राधाकृष्णन ने 4 जनवरी 1962 को विद्यापीठ की आधारशिला रखी थी। विद्यापीठ की स्थापना का मूल उद्देश्य संस्कृत शिक्षा प्रदान करना और उसमें सुधार करना, उच्च संस्कृत शिक्षा की गति को तेज करना और पारंपरिक संस्कृत शिक्षा को आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ जोड़ना है। बाद में, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, तिरुपति अप्रैल 1971 में शिक्षा मंत्रालय के तहत एक स्वायत्त निकाय के रूप में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के प्रशासनिक नियंत्रण में आ गया। वर्ष 1987 में विद्यापीठ को भारत सरकार द्वारा एक डीम्ड विश्वविद्यालय घोषित किया गया था, जो पिछले 25 वर्षों में संस्कृत शिक्षा के लिए इसकी सेवा, अनुसंधान और प्रकाशन में उपलब्धियों और सामान्य

प्रगति को देखते हुए किया गया था। इसका औपचारिक उद्घाटन भारत के राष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरमन ने 26 अगस्त, 1989 को किया था। पारंपरिक शास्त्रों में अनुसंधान के लिए इसकी उपलब्धियों और क्षमता को देखते हुए, विश्वविद्यालय को दसवीं योजना अवधि के दौरान पारंपरिक शास्त्रों में उत्कृष्टता केंद्र का दर्जा दिया गया था। ये तीनों संस्थान बहुत शीर्ष का काम कर रहे हैं। इन संस्थानों के अतिरिक्त तालिका में और भी संस्कृत संस्थान हैं जो संस्कृत के प्रचार–प्रसार तथा उसके संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

वर्ष अनुमानित	नाम, स्थान	ज़िला	राज्य	संस्थान
1791	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (पूर्व राजकीय संस्कृत महाविद्यालय)	वाराणसी	उत्तर प्रदेश	विश्वविद्यालय
1821	पूना संस्कृत कॉलेज (डेक्कन कॉलेज)	पुणे	महाराष्ट्र	डीम्ड विश्वविद्यालय
1824	संस्कृत महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय	कोलकाता	पश्चिम बंगाल	विश्वविद्यालय
1961	कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय	दरभंगा	बिहार	विश्वविद्यालय
1962	राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय	तिरुपति	आंध्र प्रदेश	केंद्रीय विश्वविद्यालय
1962	श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय	नई दिल्ली	दिल्ली	केंद्रीय विश्वविद्यालय
1970	केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय	नई दिल्ली	दिल्ली	केंद्रीय विश्वविद्यालय
1981	श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय	पुरी	ओडिशा	विश्वविद्यालय
1993	श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय	कालडी एर्नाकुलम	केरल	विश्वविद्यालय
1997	कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय	रामटेक, नागपुर	महाराष्ट्र	विश्वविद्यालय
2001	जगद्गुरु रामानंदाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय	जयपुर जींद	राजस्थान	विश्वविद्यालय
2005	उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय	हरिद्वार	उत्तराखंड	विश्वविद्यालय
2005	श्री सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय	वेरावल	गुजरात	विश्वविद्यालय
2006	श्री वेंकटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय	तिरुमाला, तिरुपति	आंध्र प्रदेश	विश्वविद्यालय
2008	महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय	उज्जैन	मध्य प्रदेश	विश्वविद्यालय
2011	कर्नाटक संस्कृत विश्वविद्यालय	बेंगलुरु	कर्नाटक	विश्वविद्यालय
2011	कुमार भास्कर वर्मा संस्कृत एवं प्राचीन अ ध्ययन विश्वविद्यालय	नलबाड़ी	असम	विश्वविद्यालय
2016	चिन्मय विश्वविद्यापीठ	कोच्चि	केरल	डीम्ड विश्वविद्यालय
2018	महर्षि वाल्मीकि संस्कृत विश्वविद्यालय	कैथल	हरियाणा	विश्वविद्यालय
2018	संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय	वाराणसी		विश्वविद्यालय

विज्ञान के साथ जब संस्कृत का ज्ञान जुड़ेगा तो एक बार यह देश विश्व में गुरू कहलाएगा। संस्कृत दुनिया की सर्वाधिक सक्षम भाषा है। अभी इसको वैज्ञानिकों ने भी माना है कि जो भाषा बोली जाती है, वही उच्चारित होती है,जो उच्चारित होती है, वही लिखी जाती है। यदि दुनिया में कोई ऐसी भाषा है, जो वैज्ञानिक भाषा है, तो वह संस्कृत भाषा है । इस बात को सारी दुनिया के वैज्ञानिकों ने सुनिश्चित किया है। हम साथ–साथ चलेंगे, साथ–साथ रहेंगे, साथ–साथ बोलेंगे और मिलकर के हर काम, हर पुरुषार्थ को हम साथ– साथ मिलकर के करेंगे, यह जो विचार है, यह जो दर्शन है, इसका उद्भव संस्कृत से होता है । इसलिए यह जो विचार है, जिसने पूरी दुनिया में भारत को शिखर पर पहुंचाया है, मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि आज दुनिया के लगभग सौ देशों के ढाई

सौ विश्वविद्यालयों में संस्कृत पढ़ाई जाती है । पूरी दुनिया में संस्कृत सदियों से पढ़ाई जाती है और मैं कहना चाहती हूं कि उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, यूरोप, ब्रिटेन, डेनमार्क, फिनलैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, नीदरलैंड, स्वीडन, स्विट्जरलैंड, जापान और थाईलैंड का यदि मैं जिक्र करूं तो मैं गर्व से कह सकती हूं कि दो–तीन सौ साल से तमाम दुनिया के देश संस्कृत को पढ़ा रहे हैं और बड़े गौरव के साथ पढ़ा रहे हैं। जर्मनी में अकेले 1400 विद्यालय हैं, जो संस्कृत को पढ़ा रहे हैं और उसमें जो वेद, पुराण और उपनिषद् हैं, जो यहां के ग्रंथ है, आयुष वेद, आयुर्वेद, ये सब हमारे तन और मन के ग्रंथ हैं, जो संस्कृत में ही वर्णित ग्रंथ हैं। पतंजलि का योग भी संस्कृत में ही है, सारी दुनिया आज जिसके पीछे खड़ी है और आयुष वेद, आयुर्वेद, जो आयु का विज्ञान है, उस आयुर्वेद के सभी ग्रंथ भी संस्कृत में हैं। इसलिए इस देश को जानना हो, इस देश के ज्ञान और विज्ञान को समझना हो और इसकी शिखरता को पहचानना हो तो बहुत जरूरी है कि हम संस्कृत को पहचाने और जाने।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मनुस्मृति 2.20
2. महोपनिषद, अध्याय 6 श्लोक 71
3. बृहदारण्यकोपनिषद 1.4.14
4. गरुण पुराण, 2.35.51
5. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का इतिहास 29 अप्रैल 2012
6. कुमार भास्कर वर्मा संस्कृत और प्राचीन अध्ययन विश्वविद्यालय, नलबाड़ी, असम 28 सितंबर 2013 को लिया गया. punjabcolleges-com-
7. Telegraphindia-com- 2 अक्टूबर 2013 को मूल से संग्रहीत। 28 सितंबर 2013 को लिया गया।
8. कैथल में महर्षि वाल्मीकि संस्कृत विश्वविद्यालय बिजनेस स्टैंडर्ड, 15 मार्च 2018।
9. www-sanskrit-nic-in
10. slbsrsv-ac-in
11. rsvidyapeetha-ac-in
12. sanskrit-in
13. https:@@hi-prisindia-org
14. Koops-com
15. ccrtindia-gov-in

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

प्राचीन भारत में धार्मिक सहिष्णुता: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

• माया सिंह

सारांश- धर्मनिरपेक्षता का विचार आधुनिक अवधारणा के रूप में उत्पन्न हुआ है, लेकिन प्राचीन भारत के संदर्भ में भी इसकी कुछ झलक मिलती है। प्राचीन भारत में विभिन्न धर्मो और संप्रदायों के बीच सह-अस्तित्व और सहिष्णुता के उदाहरण मौजूद हैं।प्राचीन भारत के संदर्भ में यदि ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाएतो हमें बहुत सारे उदाहरण देखने को मिलते हैं इनमें प्रमुख हैं, मौर्य सम्राट अशोक (273-232 ईसा पूर्व) ने बौद्ध धर्म को अपनाया था, लेकिन उन्होंने सभी धर्मो के प्रति समान सम्मान का संदेश दिया। उनके शिलालेखों में सभी धर्मो के प्रति सहिष्णुता और समानता का संदेश मिलता है। गुप्त साम्राज्य (चौथी से छठी शताब्दी) में हिंदू धर्म प्रमुख था, लेकिन बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी प्रमुखता से विद्यमान थे। विभिन्न धर्मो के लोग एक साथ मिलजुल कर रहते थे। चोल, पल्लव और चेर शासकों के काल में हिंदू, बौद्ध और जैन धर्म के अनुयायी एक साथ रहते थे। नालंदा और तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों में विभिन्न धर्मो और संप्रदायों के विद्वान अध्ययन और शिक्षा के लिए आते थे, जो धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक है। प्राचीन भारतीय साहित्य में विभिन्न धार्मिक विचारधाराओं के प्रति सम्मान और सहिष्णुता की बातें की गई हैं। जैसे कि महाभारत और रामायण में विभिन्न धर्मो और समाजों के लोगों का उल्लेख मिलता है।

मुख्य शब्द- धार्मिक सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता, सह-अस्तित्व, समानता

प्राचीन भारत में धार्मिक सहिष्णुता का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य है। यह अन्य लोगों को अन्य धर्मों और मान्यताओं के बारे में समझने में मदद करता है। राजकीय धर्म वाले देशों में, सहिष्णुता का अर्थ है कि सरकार अन्य धर्मों के लोगों को वहां रहने की अनुमति देती है। इतिहास में कई देश लोगों को अन्य धर्मों का पालन की अनुमति तो देते थे, लेकिन केवल तब तक जब तक वे ऐसा निजी रूप से करें। आजकल, कई देश सार्वजनिक रूप से धर्म का अनुसरण करने की अनुमति देते हैं, लेकिन अन्य तरीकों से धार्मिक भेदभाव करते हैं।

भारत की प्राचीन संस्कृति एवं उसका इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत द्वारा विभिन्न भाषाओं एवं धर्मों को मानने वालों को पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और सौहार्द के साथ

• अतिथि विद्वान, इतिहास विभाग, शासकीय महाविद्यालय रामपुर नैकिन, जिला सीधी मध्य प्रदेश

गले लगाया गया तथा उन्हें अपने रीति-रिवाज, आचार-विचार एवं धर्म के अनुपालन में पूरी स्वतंत्रता प्राप्त रही है। धर्मनिरपेक्षता के बिना प्रजातंत्र जीवित नहीं रह सकता। भारतीय संस्कृति का पांच हजार से भी अधिक वर्षों का इतिहास रहा है। आर्य जो कि विदेशी थे और भारत के मूल निवासी द्रविणों के बीच एक लम्बा संघर्ष आरंभ हुआ। दोनों के दृष्टिकोणों एंव संस्कृतियों और सभ्यताओं में संघर्ष रहा तथा कुछ समय पश्चात् आर्यों ने पूरे देश पर विजय प्राप्त कर ली।। आर्यों ने पराजित प्रतिद्वन्द्वियों के धर्मों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखा। प्राकृतिक शक्तियों तथा परिवर्तनशील प्राकृतिक दृश्यों के रूप में प्रचलित अनेक देवी-देवताओं तथा भूतप्रेतों को आर्यों ने अपनाकर अपने देवी-देवताओं के साथ बैठाया। धीरे-धीरे निगम आगम धर्मों के समन्वित रूप में हिन्दू धर्म ने प्रगति की। भारत में सांस्कृति विविधता सदियों से विद्यमान रही है जिसके कारण भारत को विश्व में एक विशिष्ट पहचान मिली है।

अतएव इन परिप्रेक्ष्यों को देखते हुए हम यह पाते हैं कि धर्मनिरपेक्षता के ऐतिहासिक अध्ययन को आधारशिला बनाया गया है। इसलिए कि विषय की प्राचीनता को देखते हुए यह अध्ययन अत्यन्त समीचीन प्रीतत होता है। भारतीय समाज में धर्मनिरपेक्षता के क्रियाकलाप में कुछ ऐसे दोष हे जिनसे यहां साम्प्रदायिकता तनाव को प्रोत्साहन आम भिन्न है। वर्तमान स्थिति यह है कि भारत में हिन्दुओं, मुसलमानों तााि ईसाईयों के लिए सामाजिक कानून पृथक-पृथक है। इसके फलस्वरूप विभिनन धार्मिक समूहों में ना केवल सामाजिक दूरी बनी रहती है बल्कि सभी धार्मिक समूहों का यह पर्यत्न रहता है कि वे धर्म के आधार पर अधिक से अधिक संगठित होकर अपने लिए एक पृथक सामाजिक व्यवस्था की मांग कर सके। इसके फलस्वरूप हमारा राष्ट्र मूल रूप से ही अनेक आत्मकेन्द्रित टुकड़ों में विभाजित हो जाता है।

प्राचीन भारत में धर्मनिरपेक्षता के स्वरूप को प्रकट करने के लिए धर्म शब्द के वास्तविक अर्थ को समझना आवश्यक है। प्राचीन काल में भारत के ऋषियों-मुनियों और सन्त महात्माओं ने मानव जीवन के सूक्ष्मतम पहलुओं का अध्ययन किया और उसके बारे में एक आदर्श दृष्टिकोण का निर्माण किया। इस दृष्टिकोण को उन्होंने धर्म की संज्ञा दी। धर्म शब्द अंग्रेजी में प्रयोग होनेवाले 'रिलिजन' या 'फारसी' के 'मजहब' शब्द का पर्याय नहीं है। धर्म शब्द एक ऐसा भाव है जिसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति, जाति या समाज विशेष से नहीं, बल्कि मानव मात्र की जीवन व्यवस्था से है। धर्म 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ धारण करना, बनाये रखना, पुष्ट करना। जो धारण करता है वही धर्म है। इसमें इन गुणों अथवा लक्षणों को बोध होता है, जो किसी वस्तु के स्वरूप को धारण करता है। शांतिपर्व में धर्म व्याख्या करते हुए बताया गया है कि "जो अपने मन, वचन और कर्म से निरन्तर दूसरों के कल्याण में लगा रहता है और जो सदा दूसरों का मित्र रहता है वह धर्म को सही ढंग से समझता है। महाभारत के उद्योग पर्व में उस कर्म-नियम और आचार को धर्म माना गया है, जिससे लोक का समन्वय बना रहे और व्यक्ति तथा समाज एक दूसरे के पूरक बनकर उन्नति की ओर बढ़ते रहे। आध्यात्म विद्या के अर्थ में धर्म का अभिप्राय किसी वस्तु की मूल प्रकृति से है।

धर्मनिरपेक्षता, एक ऐसी अवधारणा है जिसने समय के साथ सामाजिक और

राजनीतिक सोच में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसका अध्ययन विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों में अत्यंत महत्वपूर्ण है, विशेषकर जब हम प्राचीन भारत की ओर देखते हैं। प्राचीन भारत में धार्मिक सहिष्णुता और विविधता के अद्भुत उदाहरण मिलते हैं, जो धर्मनिरपेक्षता की नींव को समझने में मदद करते हैं। धर्मनिरपेक्षता का मतलब है सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और किसी भी धर्म के प्रति पक्षपात न करना। यह एक ऐसी नीति है जो किसी भी धार्मिक विचारधारा को राज्य की नीति से दूर रखती है और सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करती है। आधुनिक भारत में, धर्मनिरपेक्षता का संविधान में महत्वपूर्ण स्थान है, लेकिन इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए हमें प्राचीन भारत की धार्मिक सहिष्णुता का अध्ययन करना होगा।

सम्राट अशोक का काल- सम्राट अशोक (273–232 ईसा पूर्व) ने बौद्ध धर्म अपनाने के बाद भी सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का संदेश दिया। उनके शिलालेखों में सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और सहिष्णुता की बातें की गई हैं। अशोक ने धार्मिक युद्धों की निंदा की और धर्म प्रचार में अहिंसा और दया का महत्व बताया। सम्राट अशोक का शासनकाल मौर्य साम्राज्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण समय था, जिसमें धार्मिक सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अशोक का शासनकाल प्राचीन भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनाने के बावजूद सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और सम्मान का संदेश दिया। अशोक ने अपने शासनकाल के दौरान कई सुधार और नीतियाँ लागू कीं जो धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक सहिष्णुता की नींव को दर्शाती हैं।

अशोक के शिलालेख और धार्मिक सहिष्णुता- अशोक के शिलालेख उनके धार्मिक सहिष्णुता और नैतिकता के संदेश को स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं। ये शिलालेख विभिन्न भाषाओं और लिपियों में भारत के विभिन्न हिस्सों में पाए जाते हैं। इन शिलालेखों में अशोक ने धार्मिक सहिष्णुता, अहिंसा, दया और सत्य के महत्व पर जोर दिया।

धम्म (धर्म) शिलालेख- अशोक ने अपने शिलालेखों में 'धम्म' का उल्लेख किया है, जो नैतिकता, नैतिक आचरण और धार्मिक सहिष्णुता को दर्शाता है। उन्होंने सभी धर्मों के प्रति सम्मान और सहिष्णुता की शिक्षा दी। एक शिलालेख में अशोक ने कहा 'सभी धर्मों के प्रति सम्मान का भाव रखना चाहिए, और दूसरों के धर्मों की आलोचना नहीं करनी चाहिए।'

अहिंसा और दया- अशोक ने अहिंसा (अहिंसा) को अपने शासन का प्रमुख सिद्धांत बनाया और जीव हत्या को प्रतिबंधित किया। उन्होंने चिकित्सा और पशु चिकित्सा सेवाओं को बढ़ावा दिया और यात्रियों के लिए सड़कों के किनारे पेड़ लगाने और कुओं की खुदाई का आदेश दिया।

धार्मिक संस्थाओं का संरक्षण- अशोक ने बौद्ध मठों और संघों को संरक्षण दिया, लेकिन उन्होंने अन्य धार्मिक संस्थाओं को भी सम्मान और समर्थन प्रदान किया। उन्होंने विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच संवाद और विचार-विमर्श को प्रोत्साहित किया।

अशोक की धार्मिक नीति- अशोक की धार्मिक नीति ने धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक सहिष्णुता को एक नई दिशा दी। उनकी नीति के कुछ प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं। अशोक

ने धर्म प्रचार में अहिंसा और नैतिकता पर जोर दिया। उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा और विवादों की निंदा की। उन्होंने अपने अधिकारियों को धर्म प्रचार और नैतिकता की शिक्षा देने का आदेश दिया। अशोक ने सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान का संदेश दिया और धार्मिक विविधता को प्रोत्साहित किया। उन्होंने अपने शिलालेखों में सभी धर्मों के अनुयायियों को नैतिकता और सहिष्णुता का पालन करने का निर्देश दिया।

सम्राट अशोक का शासनकाल प्राचीन भारत में धार्मिक सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। उनके शिलालेख और नीतियाँ धार्मिक सहिष्णुता, अहिंसा, नैतिकता और सभी धर्मों के प्रति सम्मान को प्रकट करती हैं। अशोक ने एक ऐसा समाज बनाने का प्रयास किया जहाँ सभी धर्मों के लोग एक साथ मिलजुल कर रह सकें और एक-दूसरे के प्रति सम्मान और सहिष्णुता का भाव रखें। उनके द्वारा स्थापित यह धरोहर आज भी भारतीय समाज और संस्कृति में धार्मिक सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता के आदर्श को जीवित रखती है।

गुप्त काल- गुप्त काल (चौथी से छठी शताब्दी) में हिंदू धर्म प्रमुख था, लेकिन इस काल में बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी फले-फूले। गुप्त शासकों ने विभिन्न धर्मों के अनुयायियों को समान सम्मान दिया और धार्मिक संस्थाओं को संरक्षण प्रदान किया। इस काल में धार्मिक सहिष्णुता और सांस्कृतिक समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलता है। गुप्त काल भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम युग माना जाता है। इस काल में कला, साहित्य, विज्ञान और धर्म का अद्वितीय विकास हुआ। गुप्त राजवंश के शासकों ने धार्मिक सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता की नीतियों को अपनाया, जिसने विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के बीच सामंजस्य और शांति को प्रोत्साहित किया। गुप्त काल में हिंदू धर्म प्रमुख था, लेकिन इस काल में बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी महत्वपूर्ण थे। गुप्त शासकों ने सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और सहिष्णुता की नीति अपनाई। उन्होंने विभिन्न धार्मिक संस्थानों को संरक्षण दिया और धार्मिक विचारों के प्रसार को प्रोत्साहित किया।

दक्षिण भारतीय राजवंश- दक्षिण भारत के चोल, पल्लव और चेर राजवंशों के काल में धार्मिक सहिष्णुता का वातावरण था। इन राजवंशों ने विभिन्न धर्मों के अनुयायियों को प्रोत्साहित किया और उनके धार्मिक संस्थानों को संरक्षण दिया। बौद्ध, जैन और हिंदू धर्म के अनुयायी एक साथ मिलजुल कर रहते थे। दक्षिण भारतीय राजवंशों ने अपने शासन काल में धर्मनिरपेक्षता को महत्व दिया और उसे अपने प्रशासन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया। यहाँ कुछ प्रमुख दक्षिण भारतीय राजवंश और उनके धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का वर्णन किया गया है। चोल राजवंश (9वीं से 13वीं शताब्दी) ने विभिन्न धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखाई। उन्होंने हिंदू धर्म को प्रोत्साहित किया और कई भव्य मंदिरों का निर्माण किया, जैसे कि बृहदेश्वर मंदिर। लेकिन साथ ही, उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म को भी संरक्षण दिया। चोल शासकों ने विभिन्न धर्मों के त्योहारों और अनुष्ठानों को राज्य प्रायोजित किया और सभी धर्मों के अनुयायियों के प्रति समानता का व्यवहार किया। पल्लव राजवंश (4वीं से 9वीं शताब्दी) ने भी विभिन्न धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखाई। उन्होंने हिंदू धर्म को बढ़ावा दिया और महाबलीपुरम में कई हिंदू मंदिरों का निर्माण किया। पल्लवों ने बौद्ध धर्म और जैन धर्म को भी संरक्षण दिया और उनके शासनकाल में कई

बौद्ध स्तूप और जैन मंदिर बने। होयसल राजवंश (10वीं से 14वीं शताब्दी) ने भी धार्मिक सहिष्णुता का पालन किया। उन्होंने बेलूर और हलेबिडु में भव्य हिंदू मंदिरों का निर्माण किया। होयसल शासकों ने जैन धर्म को भी संरक्षण दिया और श्रवणबेलगोला में कई जैन मंदिरों का निर्माण किया। काकतीय राजवंश (12वीं से 14वीं शताब्दी) ने भी धर्मनिरपेक्षता का पालन किया। उन्होंने हिंदू धर्म के साथ-साथ जैन और बौद्ध धर्मों को भी समर्थन दिया। उनके शासनकाल में विभिन्न धर्मों के लोग शांतिपूर्वक सह-अस्तित्व में रहते थे। विजयनगर साम्राज्य (14वीं से 17वीं शताब्दी) ने भी विभिन्न धर्मों के प्रति सहिष्णुता दिखाई। उनके शासनकाल में हिंदू धर्म को प्रोत्साहित किया गया, लेकिन मुस्लिम और जैन धर्म के अनुयायियों को भी संरक्षण दिया गया।

विजयनगर के शासकों ने विभिन्न धर्मों के त्योहारों और अनुष्ठानों में भाग लिया और धार्मिक संरचनाओं के निर्माण में योगदान दिया। इन दक्षिण भारतीय राजवंशों ने अपने शासनकाल में धर्मनिरपेक्षता का पालन किया और विभिन्न धर्मों के प्रति समानता और सहिष्णुता का व्यवहार किया। उनके शासनकाल में धार्मिक सहिष्णुता और विविधता को महत्व दिया गया, जिससे एक समृद्ध और सांस्कृतिक रूप से विविध समाज का निर्माण हुआ।

शैक्षिक संस्थान- नालंदा और तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों में विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के विद्वान अध्ययन और शिक्षा के लिए आते थे। यह संस्थान धार्मिक सहिष्णुता और विचारों की स्वतंत्रता के प्रतीक थे। यहां पर विभिन्न धर्मों के विद्वानों के बीच विचार-विमर्श और संवाद होता था, जो धर्मनिरपेक्षता की भावना को प्रकट करता है। नालंदा और तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों में धर्मनिरपेक्षता का महत्व था, और इस संबंध में कई प्रमाण उपलब्ध हैं। नालंदा विश्वविद्यालय, जिसे 5वीं शताब्दी में स्थापित किया गया था, में विभिन्न धर्मों के विद्वान और छात्र अध्ययन करते थे। यहाँ बौद्ध धर्म के साथ-साथ हिंदू धर्म और जैन धर्म के अनुयायी भी शिक्षा प्राप्त करते थे।

बौद्ध, हिंदू, और जैन विद्वानों के बीच ज्ञान का आदान-प्रदान होता था, जिससे एक व्यापक और समावेशी शैक्षिक वातावरण का निर्माण हुआ। नालंदा में विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी, जिसमें धर्म, दर्शन, व्याकरण, तर्कशास्त्र, खगोलशास्त्र, गणित, और चिकित्सा शामिल थे। यह दर्शाता है कि विश्वविद्यालय का उद्देश्य व्यापक ज्ञान का प्रसार करना था, न कि केवल एक धर्म विशेष का प्रचार। नालंदा में न केवल भारत से बल्कि तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान, मंगोलिया, तुर्को, श्रीलंका, और अन्य देशों से भी छात्र आते थे। यह दर्शाता है कि विश्वविद्यालय ने विभिन्न सांस्कृतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि के छात्रों का स्वागत किया।

तक्षशिला, जिसे 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व में स्थापित किया गया था, में विभिन्न धर्मों के विद्वान और छात्र अध्ययन करते थे। यहाँ बौद्ध धर्म के साथ-साथ वैदिक धर्म, जैन धर्म, और अन्य धार्मिक परंपराओं के अनुयायी भी शिक्षा प्राप्त करते थे। तक्षशिला में विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक विचारधाराओं का अध्ययन और चर्चा होती थी, जिससे एक समावेशी और सहिष्णु शैक्षिक वातावरण का निर्माण हुआ। तक्षशिला में चिकित्सा, आयुर्वेद, राजनीति, युद्धकला, खगोलशास्त्र, गणित, और भाषा विज्ञान जैसे विषयों की

शिक्षा दी जाती थी। यह दर्शाता है कि विश्वविद्यालय का उद्देश्य केवल धार्मिक शिक्षा नहीं था, बल्कि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का समग्र विकास करना था। तक्षशिला में भी विभिन्न देशों से छात्र आते थे, जो विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से होते थे। यह दर्शाता है कि विश्वविद्यालय ने धर्मनिरपेक्षता और सांस्कृतिक विविधता को महत्व दिया।

नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालयों में धर्मनिरपेक्षता का पालन किया जाता था। इन विश्वविद्यालयों ने विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के छात्रों और विद्वानों को शिक्षा और ज्ञान के आदान-प्रदान का अवसर प्रदान किया। धार्मिक सहिष्णुता, विविधता, और समावेशिता इन प्राचीन विश्वविद्यालयों की विशेषताएँ थीं, जिससे एक समृद्ध और व्यापक शैक्षिक वातावरण का निर्माण हुआ।

साहित्यिक प्रमाण- उपनिषद, वेद, महाभारत, रामायण और अन्य प्राचीन ग्रंथों में धार्मिक सहिष्णुता और विविधता के उदाहरण मिलते हैं। इनमें विभिन्न धर्मों और समाजों के लोगों का उल्लेख मिलता है, जो सहिष्णुता और समानता के आदर्श को प्रकट करता है। महाभारत, रामायण और अन्य प्राचीन भारतीय ग्रंथों में धार्मिक सहिष्णुता के कई उदाहरण मिलते हैं। ये ग्रंथ भारतीय संस्कृति और समाज में सहिष्णुता, समावेशिता और विविधता को प्रोत्साहित करते हैं। यहाँ कुछ प्रमुख उदाहरण दिए गए हैं।

उपनिषद और वेद- उपनिषद और वेदों में भी धार्मिक सहिष्णुता का संदेश मिलता है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र 'एकं सत विप्रा बहुधा वदन्ति' (सत्य एक है, ज्ञानी इसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं) धार्मिक सहिष्णुता और विविधता का स्पष्ट उदाहरण है। उपनिषदों में विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों का आदान-प्रदान और चर्चा होती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय के समाज में विभिन्न मतों के प्रति सहिष्णुता और सम्मान था।

महाभारत- महाभारत में विभिन्न धर्मों और मतों के प्रति सहिष्णुता का संदेश दिया गया है। भीष्म, युधिष्ठिर और कृष्ण द्वारा धर्म और सत्य के पालन का महत्व बताया गया है, जिसमें सभी प्राणियों के प्रति समानता और सहिष्णुता का दृष्टिकोण शामिल है। युधिष्ठिर के शासनकाल में उनके राज्य में सभी धर्मों और समुदायों के लोग शांति और समृद्धि से रहते थे, जो धार्मिक सहिष्णुता का उदाहरण है। महाभारत में विभिन्न ऋषि, मुनि, और विद्वानों के बीच संवाद और चर्चा होती है, जिसमें विभिन्न दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोणों का आदान-प्रदान होता है। यह दर्शाता है कि उस समय के समाज में विभिन्न मतों और विचारों का सम्मान किया जाता था।

रामायण- रामायण में भगवान राम का वनवास काल कई प्रकार की धार्मिक और सांस्कृतिक विविधताओं के साथ सहअस्तित्व का उदाहरण है। राम, लक्ष्मण और सीता ने वनवास के दौरान विभिन्न ऋषियों, मुनियों और आदिवासी समुदायों के साथ संवाद और सहयोग किया। शबरी, जो कि एक आदिवासी महिला थीं, के प्रति राम का सम्मान और उनकी भक्ति स्वीकार करना धार्मिक और सामाजिक सहिष्णुता का उदाहरण है। रामायण में रावण की मृत्यु के बाद भगवान राम ने विभीषण को लंका का राजा बनाया और सभी लंकावासियों के प्रति दया और सहिष्णुता का व्यवहार किया। उन्होंने विभीषण से कहा कि वह लंका के सभी लोगों का ध्यान रखें, चाहे वे किसी भी धर्म या समुदाय के हों।

जैन और बौद्ध ग्रंथ- जैन और बौद्ध धर्म के ग्रंथों में भी धार्मिक सहिष्णुता का उल्लेख

मिलता है। महावीर और बुद्ध ने अहिंसा, करुणा और सहिष्णुता का प्रचार किया, जिसमें सभी प्राणियों के प्रति समानता और सम्मान का महत्व था। इन धर्मों ने अपने अनुयायियों को विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति सहिष्णुता और सम्मान का व्यवहार करने का निर्देश दिया।

उपनिषद, वेद, महाभारत, रामायण और अन्य प्राचीन भारतीय ग्रंथों में धार्मिक सहिष्णुता के कई उदाहरण मिलते हैं। ये ग्रंथ धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता को प्रोत्साहित करते हैं और समाज में समावेशिता और समानता का संदेश देते हैं। इन ग्रंथों में धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धांत भारतीय संस्कृति और समाज के महत्वपूर्ण हिस्से हैं, जो आज भी प्रासंगिक हैं। प्राचीन भारतीय समाज में धार्मिक सहिष्णुता की झलक मिलती है। विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के लोग एक साथ रहते थे और उन्होंने मिलकर एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का निर्माण किया। धार्मिक मेलों, त्योहारों और उत्सवों में विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ भाग लेते थे, जो सामूहिकता और सहिष्णुता का प्रतीक है। प्राचीन भारत में धार्मिक सहिष्णुता और विविधता का इतिहास धर्मनिरपेक्षता की नींव को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से हमें यह समझने में मदद मिलती है कि किस प्रकार से विभिन्न धर्मों और संप्रदायों के बीच सह-अस्तित्व और सहिष्णुता का वातावरण विकसित हुआ। आज के समय में, जब हम धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को अपनाने और समझने की कोशिश करते हैं, तो प्राचीन भारत की धार्मिक सहिष्णुता के ये उदाहरण हमें मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. न्यू लाईट आन दि मोस्ट ऐनशेंट ईस्ट, 1934, पृ. 220
2. डॉ. एम.पी.दूबे, धर्मनिरपेक्षता और भारतीय प्रजातंत्र, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 27
3. गोपी नाथ कालभोर, धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, पृ. 15
4. भार्गव आर. एवं आचार्य ए.(2011) राजनीतिक सिद्धान्त एक परिचय, पीयरसन पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. 285
5. भार्गव आर. (1997) सेकुलरिज्म एंड इट्स क्रिटीक, ऑक्सफोर्ड यूनिवसिर्टी प्रेस दिल्ली।
6. दुर्खीम ई. (1912) द एलीमेन्ट्री फार्म आफ रिलीजियस लाईफ, लन्दन : जार्ज ऐलेन एवं अनविन लिमिटेड।
7. https://hi.wikipedia.org/wiki
8. Romila Thapar , Ashoka and the Decline of the Mauryas, Oxford India Perennials, 2012
9. Vincent Smith ,"Asoka: The Buddhist Emperor of India", L.G. Publishers Distributors, 2021
10. Patrick Olivelle , "Ashoka: In History and Historical Memory"
11. Nayanjot Lahiri, AshokA in Ancient India, harvard university press Cambridge, Massachusetts London, England 2015
12. Radhakumud Mookerji , "The Gupta Empire"

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

भारतीय ज्ञान परंपरा का उत्थान और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020:नई नीतियों के संदर्भ में विश्लेषण

• मुक्ता दुबे

सारांश- भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 दोनों ही भारतीय समाज और संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलुओं को संवारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह विषय भारतीय समाज के साथ ही उसकी विरासत के एक महत्वपूर्ण हिस्से को भी साझा करता है। भारतीय ज्ञान परंपरा विविधता और धार्मिकता के संयोजन का परिणाम है, जिसमें वेद, उपनिषद, पुराण, ग्रंथ, और ग्रंथाओं का विशाल भंडार है। इस परंपरा ने भारतीय समाज को आध्यात्मिकता, नैतिकता, और वैज्ञानिक ज्ञान की शिक्षा प्रदान की है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का लक्ष्य भारतीय समाज को आधुनिक और वैज्ञानिक ज्ञान के साथ-साथ उसकी विरासत को भी समेटना है। यह नीति शिक्षा के क्षेत्र में इस समय की आवश्यकताओं और अनुभवों के आधार पर बनाई गई है। इसका मुख्य उद्देश्य है उत्कृष्टता, अध्ययन, और अनुसंधान में समर्थ नागरिकों का निर्माण करना। भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, अध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था। छात्रों को मानव प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। शिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद के सिद्धांतों का अनुपालन जिसमें व्यक्ति स्वयं,परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा कर सके, इस प्रकार जीवन के सभी पक्ष इस प्रणाली में सम्मिलित थे।

मुख्य शब्द- ज्ञान परंपरा, उत्कृष्टता, अध्ययन, अनुसंधान

भारतीय ज्ञान परंपरा- भारतीय ज्ञान परंपरा जो वैदिक एवं उपनिषद काल में थी, वह बौद्ध और जैन काल में भी रही विभिन्न विश्वविद्यालयों की स्थापना और शिक्षा व्यवस्था से स्पष्ट परिलक्षित होता है। लेकिन इसका लोप विगत 200 से 300 वर्षों में हुआ है। इस राष्ट्रीय रूपरेखा में इसे भी उचित रूप में प्रतिबिंबित करने की आवश्यकता है । भारतीय

• अतिथि विद्वान, राजनीति विज्ञान, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुरा जिला नीमच मध्यप्रदेश

ज्ञान परंपरा वह ज्ञान है जो भारतीय सभ्यता, विचारधारा, और विरासत को दर्शाता है। यह ज्ञान वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, और अन्य पुराणों से प्राप्त होता है। यह भारत भूमि महान है। इस भूमि की ज्ञान की अविरल धारा ने संपूर्ण जगत को सींचा है। भारतीय ज्ञान परम्परा पुरातन युग से बहुत समृद्ध रहीं है। आधुनिक युग में प्रचलित भारतीय ज्ञान और विदेशों से आ रहीं तथा कथित नवीन खोज जो हमारे ग्रंथों में पूर्व से ही उल्लिखित है, भारतीय ज्ञान परम्परा के समृद्धशाली होने का प्रमाण है। भारत ने विश्व को ज्ञान प्रणाली दी, विज्ञान के अनेक आयाम दिए। यह भारतीय ज्ञान प्रणाली के बारे में चिंता और चिंतन करने का समय है। इसकी उपादेयता को जनमानस तक पहुँचने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है, क्योंकि यह बात केवल कुछ पुरातन ज्ञान के बारे में नहीं है, यह बुद्धि, आर्थिक सुरक्षा और राष्ट्रीय गौरव के बारे में है, साथ ही यह बात भी विस्मृत ना हो कि भारतीय ज्ञान परंपरा सत्य का अनुमोदन करती है। भारत ने विश्व को संस्कृति दी जब 5000 साल पहले कई सभ्यताएं केवल खानाबदोश वनवासी थीं, तब भारतवर्ष में सिंधु घाटी सभ्यता में हड़प्पा संस्कृति का जन्म हुआ। विश्व का पहला विश्वविद्यालय तक्षशिला में 700 ईसा पूर्व में स्थापित किया, जिसमें दुनिया भर के 10,500 से अधिक छात्रों ने 60 से अधिक विषयों का अध्ययन किया। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में निर्मित नालंदा विश्वविद्यालय शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन भारत की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक था। भारतवर्ष की भूमि ने हीं विश्व को देव भाषा संस्कृत दी जो कि विश्व की सबसे शुद्धतम एवं उपयुक्त भाषा है। संस्कृत सभी यूरोपीय भाषाओं की जननी है। कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के लिए संस्कृत सबसे उपयुक्त भाषा है। अब समय है भारत के द्वारा विश्व को दिए गए ज्ञान को संजो कर इसका संवर्धन किया जाए और भारतवर्ष के जनता को संस्कृति, पहचान और प्राप्त ज्ञान से जोड़ा जाए। तब ही इसकी उपादेयता सिध्द होगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सनातन ज्ञान परंपरा की उपयोगिता- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत के शिक्षा क्षेत्र के विकास को संबोधित करती है। इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय युवाओं को व्यापक और उच्चतम शैक्षिक मानकों तक पहुंचने में सहायता करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का लक्ष्य भारतीय जनता के शिक्षा के प्रति उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाना, उनके सामाजिक और आर्थिक विकास को समर्थ बनाना और राष्ट्रीय विकास में योगदान करने के लिए एक उत्तम विद्यालयी वातावरण प्रदान करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षा क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों की दिशा में कदम बढ़ाया है। इसमें शिक्षा के क्षेत्र में समानता, गुणवत्ता और पहुंच को बढ़ावा देने के लिए कई नई पहल किये गए हैं। इसमें शिक्षा के क्षेत्र में डिजिटलीकरण, तकनीकी शिक्षा, अधिगम की स्थिरता, और शिक्षकों की प्रशिक्षण में सुधारों को ध्यान में रखा गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने हमें एक विकसित, समर्पित, और न्यायपूर्ण समाज की दिशा में अग्रसर करने का मार्ग प्रदान किया है। यह दोनों ही अहम तत्व हैं जो हमें समृद्ध और विकसित भविष्य की ओर अग्रसर करते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का इतिहास विवेचन करते समय हमें भारतीय सभ्यता की विविधता और संस्कृति का महत्वपूर्ण ध्यान देना चाहिए। भारतीय ज्ञान परंपरा एक विशाल ज्ञान का भंडार है जो शास्त्र, कला, साहित्य, धर्म,

विज्ञान, तकनीकी ज्ञान और आध्यात्मिकता के क्षेत्रों में समृद्ध है। यह ज्ञान विभिन्न युगों में आया और विकसित हुआ और इसने भारतीय समाज को संघर्षो, संघर्षो और समृद्धि के संग्रहणों के माध्यम से आगे बढ़ाया है। प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परंपरा के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तैयार की गई है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परंपरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च लक्ष्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं बल्कि पूर्ण आत्म ज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था। भारत द्वारा 2015 में अपनाए गए सतत् विकास एजेंडा 2030 के लक्ष्य चार में परिलक्षित वैश्विक शिक्षा विकास योजना के अनुसार विश्व में 2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने और जीवन पर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा दिए जाने का लक्ष्य है। इस हेतु संपूर्ण शिक्षा प्रणाली को समर्थन और अधिगम को बढ़ावा देने के लिए पुनर्गठित करने की आवश्यकता होगी ताकि सतत् विकास के लिए 2030 एजेंडा के सभी महत्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार 2040 तक भारत के लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य होगा जो कि किसी से पीछे नहीं है। ऐसी शिक्षा व्यवस्था जहां किसी भी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से संबिंधत शिक्षार्थियों को समान रूप से सर्वोच्च गुणवत्ता की शिक्षा उपलब्ध हो सकेगी। यह 21वीं सदी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है तथा भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए, 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करना है।

बीती कुछ शताब्दियों से इस भूमि को इस प्रकार महसूस करवाया जाता रहा है कि यहां कभी ज्ञान अंकुरित ही नहीं हुआ। सहस्त्र वर्ष की दासता में हमारी सहस्त्रों पीढ़ियों ने पीड़ा को झेलते हुए इस ज्ञान को संजोए रखा। परंतु समय के साथ इसकी उपादेयता क्षीण होती रहीं। इसीलिए समय है भारत के ज्ञान वृक्ष की छाया में पोषित हो रहे इस विश्व को बताने का कि भारत का गुरुत्व अभी भी कायम है। भारत का ज्ञान गंगा जल के समान है, जो निर्मल और अविराम है। भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति दोनों ही सोच और समाज को परिपूर्ण बनाने का प्रयास कर रहे हैं। यह ना केवल भारतीय समाज को आधुनिक तकनीकी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ निरंतर बढ़ावा देने में मदद करता है, बल्कि उसे उसकी प्राचीन धार्मिकता और आध्यात्मिकता को भी महसूस कराता है। इस प्रकार, भारतीय समाज अपने ऐतिहासिक और आधुनिक दोनों पहलुओं का समाहित रूप से विकसित कर रहा है।

भारतीय सभ्यता और ज्ञान की परंपरा अत्यंत विशाल और प्राचीन है। इस परंपरा ने हमें विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान की अमूल्य धारा प्रदान की है, जो आज भी हमारे समाज की आधारशिला है। इस परंपरा में वैज्ञानिक ज्ञान, धार्मिक तत्त्व, साहित्य, कला, और शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा गुरु-शिष्य परंपरा है, जिसमें गुरु अपने शिष्य को ज्ञान और नैतिकता की प्राप्ति के लिए दिशा देते हैं। यह परंपरा अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे न केवल ज्ञान का विरासत मिलता है,

बल्कि यह एक सामाजिक और नैतिक नेतृत्व की शिक्षा भी प्रदान करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का विकास- भारतीय समाज के विकास के साथ साथ ही विभिन्न काल में होता रहा है। विभिन्न सामाजिक और आर्थिक परिवेशों में बदलाव आते रहे और उनके संबंध में शिक्षा की नीतियों में भी परिवर्तन होता रहा है। ब्रिटिश शासन के दौरान, भारतीय शिक्षा प्रणाली को ब्रिटिश शैक्षिक आदर्शों के अनुसार संघटित किया गया था, जिससे भारतीय जनता को अपनी संस्कृति और भाषा के प्रति अपनी अद्भुत विशेषता को बूझने का अवसर नहीं मिला। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान ने शिक्षा को एक महत्वपूर्ण संसाधन और समाज के विकास के लिए एक माध्यम के रूप में देखा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और 1992 में संशोधित हुई, जिससे उच्च शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा, और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को मजबूत किया गया। आज, भारतीय शिक्षा नीति 2020 ने एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन का संदेश दिया है, जो डिजिटलीकरण, और विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अभिवृद्धि, और गैर-संदर्भीय ज्ञान को बढ़ावा देने के लिए उत्तेजित है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विकासात्मक उपकरण- भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विकास में कई उपकरण शामिल हैं। प्राचीन काल से ही गुरुकुल पद्धति भारतीय ज्ञान का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है, जिसमें शिक्षार्थी गुरु के आदर्शों का पालन करते थे। वर्तमान में भी, इस परंपरा को संजीवनी देने के लिए नए प्रौद्योगिकी उपकरणों का उपयोग किया जा रहा है। डिजिटल शिक्षा प्लेटफार्म्स, ऑनलाइन कक्षाओं का प्रसार और शैक्षिक सामग्री के विकास में तकनीकी उपकरणों का महत्वपूर्ण योगदान है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भी भारतीय ज्ञान परंपरा को बढ़ावा देने के लिए कई उपकरण प्रदान करती है। नई शिक्षा नीति 2020 में और अधिक व्यापक और समर्थनीय पाठ्यक्रम, शैक्षिक संस्थानों के ताकतवर नेटवर्क, और नवाचारिक शिक्षकों को बढ़ावा देने का उद्देश्य है। इसके अलावा, समाज में शिक्षा की पहुँच को बढ़ाने के लिए उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के लिए विभिन्न योजनाएं और योजनाओं की शुरुआत की गई है। इन उपकरणों का सही उपयोग करके, भारतीय ज्ञान परंपरा को सुरक्षित रखा जा सकता है और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को सफल बनाया जा सकता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की चुनौतियाँ-

समृद्ध एवं विविधता- भारतीय ज्ञान परंपरा में बहुत सारे शैली, परंपराएँ और विचार हैं। इसे समेकित करके एक समृद्ध और विविध शिक्षा प्रणाली का निर्माण करना चुनौतीपूर्ण है।

भाषा की विविधता- भारतीय ज्ञान परंपरा में अनेक भाषाएँ और लिपियाँ हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में इस विविधता को समेकित करना और समान अवसर प्रदान करना महत्वपूर्ण है।

तकनीकी उन्नति- डिजिटल युग में, शिक्षा प्रणाली में तकनीकी उन्नति को समेत करना एक और महत्वपूर्ण चुनौती है। इसे सामूहिक रूप से प्रभावी बनाना होगा।

सामाजिक और आर्थिक समानता- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को सामाजिक और आर्थिक समानता के साथ लागू करना चुनौतीपूर्ण है, ताकि हर व्यक्ति को उचित शिक्षा का

लाभ मिल सके।

क्षमता निर्माण– शिक्षा प्रणाली को विशेष रूप से क्षमता निर्माण पर ध्यान केंद्रित करना चुनौतीपूर्ण है, ताकि छात्रों में नैतिक, सामाजिक और तकनीकी क्षमताएँ विकसित हो सकें।

भारतीय परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के महत्व और उद्देश्य कई हैं। यह नीति भारतीय समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यहाँ कुछ मुख्य उद्देश्य हैं–

समावेशी शिक्षा- नीति का उद्देश्य है सभी वर्गों, जातियों, और क्षेत्रों के लोगों को समान अवसर प्रदान करना और सभी को एक समान आधार पर शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराना।

गुणवत्ता की सुनिश्चितता- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य है शिक्षा प्रणाली में गुणवत्ता को सुनिश्चित करना और शिक्षार्थियों के विकास को प्रोत्साहित करना।

नैतिकता और सामाजिक मूल्यों का विकास- शिक्षा के माध्यम से नैतिकता, आदर्श और सामाजिक मूल्यों को बढ़ावा देना ताकि छात्र न केवल शिक्षा केंद्रित बल्कि उनकी सामाजिक और नैतिक स्थिति भी मजबूत हो।

नौकरी के लिए तैयारी– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का एक उद्देश्य है युवा जनसंख्या को रोजगार के लिए तैयार करना, ताकि वे समृद्धि के क्षेत्रों में सक्षम बन सकें।

नई तकनीकी उन्नति- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के तहत नई तकनीकों और शिक्षा के तरीकों का उपयोग करके शिक्षा प्रणाली को मोड़ना और तकनीकी उन्नति को प्रोत्साहित करना।

इन उद्देश्यों के माध्यम से, भारतीय परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्व राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में- भारतीय ज्ञान परंपरा ने हमारे राष्ट्र को शिक्षा की दिशा में निरंतर एक महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। इसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (National Education Policy NEP) के माध्यम से बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव होना चाहिए। भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्व शिक्षा नीति में व्यक्त करने के लिए कुछ प्रमुख तत्व हैं। पहले तो, भारतीय ज्ञान परंपरा विविधता और समृद्धि का प्रतीक है। यह शिक्षा नीति में भारतीय संस्कृति, इतिहास, और परंपराओं को समर्पित करने के लिए एक माध्यम के रूप में सेवा कर सकती है। यह छात्रों को उनके सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत को समझने और महत्वपूर्ण मान्यताओं को समाहित करने में मदद कर सकती है। दूसरे, भारतीय ज्ञान परंपरा ने समृद्ध और प्राचीन ज्ञान का बहुमूल्य भंडार है, जो विज्ञान, गणित, प्रौद्योगिकी, और अन्य क्षेत्रों में आधुनिक शिक्षा में भी महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है। इसलिए, नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा को समर्थन देने का प्रस्ताव उचित होगा।

तीसरे, भारतीय ज्ञान परंपरा ने समाज में समाज को आदर्श, नैतिकता, और सहिष्णुता की महत्वपूर्ण भूमिका दी है। इसलिए, नई शिक्षा नीति में यह सामाजिक मूल्यों को समाहित करने के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

चौथा, भारतीय ज्ञान परंपरा ने समाज को न्याय, समानता, और अधिकार के महत्व को समझाया है। शिक्षा नीति में इसे शामिल करने से समाज में अधिक समानता और न्याय की भावना को बढ़ावा मिल सकता है।

आखिरकार, भारतीय ज्ञान परंपरा ने विज्ञान और तकनीकी विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान किया है। इसलिए, नई शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को स्थान देने से विज्ञान और तकनीकी विकास को बढ़ावा मिल सकता है। समर्थन या संवाद के लिए, नई शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा को महत्वपूर्ण स्थान देने का प्रस्ताव एक सार्थक कदम हो सकता है। समृद्धि के आधार भारतीय ज्ञान परंपरा भारतीय सभ्यता का मौलिक अंग है जो सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, और सामाजिक समृद्धि का आधार बनाता है। इसके बिना, हमारी समाज की समृद्धि अधूरी होती।

समाज में समर्थन- भारतीय ज्ञान परंपरा का ध्यान रखना अपने समाज के सदस्यों को उनके ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत के प्रति संवेदनशीलता में वृद्धि करता है।

शिक्षा में समावेश- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा का महत्व अच्छे शिक्षा प्रणालियों में समाहित करने का प्रयास किया गया है। यह विद्यार्थियों को उनकी संस्कृति और विरासत के प्रति जागरूक करता है। **भारतीय भौतिकी गणित, विज्ञान, और प्रौद्योगिकी में लागू करना-** भारतीय ज्ञान परंपरा को गणित, विज्ञान, और प्रौद्योगिकी के शिक्षण में समाहित किया गया है। इससे विद्यार्थी अपनी पारंपरिक ज्ञान को आधुनिकता के साथ जोड़ सकते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के भौतिक और गणित ज्ञान को स्कूल और कॉलेजों में अध्ययन कराने का प्रयास किया गया है। इससे विद्यार्थो अपनी रूचि के अनुसार इसे अध्ययन कर सकते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा के भौतिक और गणित ज्ञान को स्कूल और कॉलेजों में अध्ययन कराने का प्रयास किया गया है। इससे विद्यार्थी अपनी रूचि के अनुसार इसे अध्ययन कर सकते हैं।

आत्मनिर्भर भारत की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान- भारतीय ज्ञान परंपरा ने आत्मनिर्भर भारत की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

विद्यार्थियों की जटिलताएँ- बदलते समय के साथ, विद्यार्थियों की जटिलताएँ बढ़ रही हैं। यह चुनौती परंपरागत शिक्षा को अद्यतन करने की आवश्यकता उत्पन्न करती है।

टेक्नोलॉजी का उपयोग- वर्तमान युग में, शिक्षा में तकनीकी उपकरणों का उपयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह चुनौती भारतीय ज्ञान परंपरा को तकनीकी दृष्टिकोण से अद्यतन करने का संदेश देती है।

संस्कृति और भाषा के संरक्षण- विदेशी शैक्षणिक प्रणालियों का प्रभाव बढ़ रहा है, जिससे भारतीय संस्कृति और भाषा का संरक्षण चुनौतीपूर्ण है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में भारतीय तत्वों का समावेश- राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा को शामिल करने का प्रयास किया जा रहा है, लेकिन इसे आधुनिक शिक्षा प्रणाली में समाहित करना चुनौतीपूर्ण है।

विभिन्न सामाजिक और आर्थिक विभाजन- विभिन्न समाजिक और आर्थिक विभाजनों के कारण, भारतीय ज्ञान परंपरा को समाहित करना और संरक्षित करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में असमान शिक्षा स्तर- भारत में विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में शिक्षा स्तर में असमानता है, जिससे भारतीय ज्ञान परंपरा को समाहित करना और बढ़ावा देना चुनौतीपूर्ण है।

विदेशीकरण का प्रभाव- विदेशीकरण के प्रभाव से, भारतीय ज्ञान परंपरा को बचाने और संरक्षित करने की आवश्यकता है। इसके लिए भारतीय शिक्षा नीति में संबंधित परिवर्तन की आवश्यकता है।

अनुसंधान और विकास- भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध बनाए रखने के लिए विद्यालयों और शोध संस्थानों में अधिक अनुसंधान और विकास का काम किया जाना चाहिए। भारतीय ज्ञान परंपरा से उभरती भारतीय शिक्षा नीति का अर्थ है कि शिक्षा को भारतीय सभ्यता, संस्कृति, और विरासत के साथ संगठित किया जाए। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि शिक्षा को केवल विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के लिए ही नहीं बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों और धारणाओं के साथ जोड़ा जाए। इस प्रकार, शिक्षा नीति भारतीय सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत को बचाव करने और बढ़ावा देने का काम करती है।

सांस्कृतिक संवेदनशीलता- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय सांस्कृतिक संवेदनशीलता को बढ़ावा देने के लिए उत्साहित करती है और विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति के प्रति समझाती है।

समृद्ध भारतीय भौतिकी- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध बनाने के लिए भारतीय भौतिकी को महत्व दिया गया है। इसका उद्देश्य है विज्ञान और प्रौद्योगिकी को भारतीय संस्कृति और विरासत से जोड़ना।

आध्यात्मिक शिक्षा- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 आध्यात्मिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उत्साहित करती है, जो विद्यार्थियों को अपने मानवीय और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को समझने में मदद करती है।

समाजिक समावेश- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विभिन्न समाज के लोगों को समाजिक समावेश के माध्यम से भारतीय समाज में समर्थ नागरिक बनाने के लिए प्रोत्साहित करती है।

परंपरागत शिक्षा प्रणाली का समर्थन- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विद्यार्थियों को परंपरागत शिक्षा प्रणाली के महत्व को समझाने के लिए उत्साहित करती है और इसे समाधान के रूप में समाहित करने के लिए प्रयास करती है।इन लक्षणों के साथ, भारतीय ज्ञान परंपरा से उभरती भारतीय शिक्षा नीति विद्यार्थियों को एक समृद्ध और समर्थ नागरिक के रूप में परिपूर्ण करने के लिए कदम उठाती है।

विचार विमर्श- अनुसंधान एवं ज्ञान के परिदृश्य में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। मानविकी और कला की मांग बढ़ेगी क्योंकि भारत एक विकसित देश बनने के साथ-साथ दुनिया की तीन सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनने के साथ-साथ आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है। वर्तमान में सीखने के परिणामों और जो आवश्यक है उनके मध्य की खाई को, प्रारंभिक बाल्यावस्था से देखभाल और उच्चतर शिक्षा के माध्यम से शिक्षा में उच्चतम गुणवत्ता, इक्विटी और सिस्टम में अखंडता लाने वाले प्रमुख

सुधारों के जरिए पूर्ण किया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति का लक्ष्य प्रत्येक विद्यार्थी को ज्ञान केन्द्रित भारतीय मूल्यों से विकसित गुणवत्तापूर्ण उच्चतर शिक्षा उपलब्ध कराना है। यह भारत को वैश्विक ज्ञान की महाशक्ति बनाकर एक जीवंत और न्याय संगत समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से सहयोग करेगी। इस नीति में परिकल्पित है कि हमारे संस्थानों की पाठ्यचर्या और शिक्षा विधि छात्रों में अपने मौलिक दायित्व और संवैधानिक मूल्यों को देश के साथ जुड़ाव और बदलते विश्व में नागरिक की भूमिका और उत्तरदायित्व की जागरूकता उत्पन्न करेगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय ज्ञान परम्पराओं का सम्पोषित विकास कर सम्बल प्रदान करते हुए भारत केन्द्रित तथा समाज पोषित होकर भारत को परम वैभव राष्ट्र तथा जगतगुरु बनाने में महती भूमिका का निर्वहन करेगी। भारतीय ज्ञान प्रणाली आज के परिदृश्य में भी लागू है, जो तनाव प्रबंधन, स्थिरता आदि जैसे मुद्दों से निपटने के लिए व्यावहारिक सुझाव देती है। यह ज्ञान का एक विशाल भंडार प्रदान करती है जिसका उपयोग लोगों, समुदायों और मानवता को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. केवला चौधरी, भारतीय ज्ञान परंपरा: एक अध्ययन
2. डॉ.जे.सी.आर.लायंस, भारतीय शिक्षा की स्थापना और विकास
3. डॉ. आर.के.मिश्रा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: एक विश्लेषण
4. डॉ.विनोद कुमार शर्मा, भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक शिक्षा
5. डॉ.अजय दुबे, भारतीय संस्कृति और शिक्षा: एक समीक्षा
6. डॉ. संजय शर्मा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: भारतीय समाज और संस्कृति के साथ आधुनिक शिक्षा की दिशा
7. डॉ.एस.एन. मुकर्जी, भारतीय शिक्षा प्रणाली का इतिहास
8. आर.एस.शर्मा, भारतीय शिक्षा विज्ञान और संदेश
9. डॉ.आर.आर.परिजातन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: विश्लेषण और मूल्यांकन
10. जे.एन.श्रीनिवासान, भारतीय शिक्षा की यात्रा
11. अनुराधा मुखर्जी, शिक्षा में भारतीयता: चुनौतियाँ और समाधान
12. एस.वी.निगम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में परिवर्तन
13. जे.एन.श्रीनिवासान, भारतीय शिक्षा के प्रश्न
14. सुनील मैथु, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: दर्शन और कार्य

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

सामाजिक न्याय और राजनीतिः भारतीय संदर्भ में अध्ययन

• सुनीता शुक्ला

सारांश- सामाजिक न्याय एक ऐसा सिद्धांत है जो समाज में समानता, स्वतंत्रता, और भेदभाव रहित वातावरण को सुनिश्चित करता है। इसकी महत्वता इस बात में निहित है कि यह समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और संसाधन प्रदान कर, समाज को अधिक न्यायसंगत और समावेशी बनाता है। इससे न केवल व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास होता है, बल्कि समाज और राष्ट्र की समग्र प्रगति और स्थिरता भी सुनिश्चित होती है।

मुख्य शब्द- सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता, अवसर, संसाधन

प्रस्तावना- सामाजिक न्याय (Social Justice) की अवधारणा का मूल उद्देश्य समाज में सभी व्यक्तियों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करना है, ताकि किसी भी प्रकार का भेदभाव या असमानता न हो। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति के बावजूद समान अवसर और संसाधन मिलें। सामाजिक न्याय का विचार मुख्य रूप से निम्नलिखित पहलुओं पर केंद्रित होता है–

- हर व्यक्ति को समान अवसर और संसाधन उपलब्ध कराना।
- व्यक्तियों की स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा करना।
- जाति, धर्म, लिंग, वर्ग आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न करना।
- कमजोर और वंचित वर्गों को सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करना।
- सभी को शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य सेवाओं में समान अवसर प्रदान करना।

सामाजिक न्याय का महत्व- सामाजिक न्याय समाज के समग्र विकास और स्थिरता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामाजिक न्याय के महत्व को हम निम्नलिखित बिंदुओं में स्पष्ट कर सकते हैं–

- सामाजिक न्याय समाज में समानता और समावेशन को बढ़ावा देता है, जिससे सभी वर्गों के लोगों को समाज की मुख्य धारा में शामिल किया जा सके।
- यह जाति, धर्म, लिंग, आर्थिक स्थिति आदि के आधार पर होने वाले भेदभाव और शोषण को समाप्त करने में मदद करता है।

• अतिथि विद्वान, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय महाविद्यालय रामपुर नैकिन, जिला सीधी मध्य प्रदेश

- समाज में न्याय और समानता होने से सामाजिक स्थिरता बनी रहती है और किसी भी प्रकार के सामाजिक अशांति या संघर्ष की संभावना कम हो जाती है।
- सामाजिक न्याय मानवाधिकारों की सुरक्षा करता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को उनके मौलिक अधिकारों का पूर्ण लाभ मिल सके।
- समान अवसर और संसाधनों की उपलब्धता से समाज के सभी वर्गों का आर्थिक विकास संभव हो पाता है, जिससे देश की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।
- सामाजिक न्याय लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करता है, जिससे समाज में सभी व्यक्तियों के विचारों और अधिकारों का सम्मान किया जाता है।
- यह शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार लाकर समाज के सभी वर्गों को उच्च गुणवत्ता की सेवाएँ प्रदान करता है।
- सामाजिक न्याय आपसी सम्मान और सहयोग को बढ़ावा देता है, जिससे समाज में सामूहिकता और सामंजस्य का विकास होता है।

अध्ययन का उद्देश्य- भारतीय संदर्भ में सामाजिक न्याय और राजनीति के बीच संबंधों का विश्लेषण करना।

साहित्य समीक्षा- भारतीय संदर्भ में सामाजिक न्याय और राजनीति के संबंध में पूर्व साहित्य की समीक्षा विभिन्न दृष्टिकोणों और संदर्भों को समाहित करती है। सामाजिक न्याय की अवधारणा भारतीय संविधान और इसकी राजनीतिक संरचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस संबंध में कई विद्वानों, विचारकों और शोधकर्ताओं ने गहन अध्ययन किया है। डॉ. बी.आर. आंबेडकर भारतीय संविधान के प्रमुख वास्तुकार, जिन्होंने सामाजिक न्याय की अवधारणा को संविधान में शामिल किया। गेल ओमवेट 'Dalits and the Democratic Revolution: Dr Ambedkar and the Dalit Movement in Colonial India' में दलित आंदोलनों और सामाजिक न्याय पर व्यापक अध्ययन किया है। मार्क गालांटे 'The Constitution of India: A ConteÛtual Analysis' में भारतीय संविधान और सामाजिक न्याय के प्रावधानों का विश्लेषण किया है। कई विद्वानों और समाजशास्त्रियों ने भारतीय संदर्भ में सामाजिक न्याय और राजनीति के संबंध में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अमर्त्य सेन 'The Idea of Justice' में न्याय की व्यापक अवधारणा और इसकी प्रासंगिकता पर चर्चा की है। अरुंधति रॉय 'The Doctor and the Saint' में आंबेडकर और गांधी के विचारों के माध्यम से सामाजिक न्याय की समस्याओं को उजागर किया है। आशुतोष वरश्नी 'Ethnic Conflict and Civic Life: Hindus and Muslims in India' में सांप्रदायिक संघर्षों और सामाजिक न्याय के मुद्दों का विश्लेषण किया है। भारतीय संदर्भ में सामाजिक न्याय और राजनीति के संबंध में पूर्व साहित्य की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक न्याय भारतीय समाज और राजनीति का एक अभिन्न हिस्सा है। संविधान, न्यायपालिका, सामाजिक आंदोलन, और सरकारी नीतियाँ इस दिशा में निरंतर प्रयासरत हैं। विद्वानों और शोधकर्ताओं के अध्ययन और विश्लेषण ने इस क्षेत्र में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान की है, जिससे सामाजिक न्याय को और अधिक प्रभावी ढंग से समझा और लागू किया जा सकता है।

अनुसंधान पद्धति- इस शोध पत्र में मैंने ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति को अपनाया है यह एक महत्वपूर्ण अनुसंधान पद्धति है जो अतीत की घटनाओं, विचारों, और प्रक्रियाओं का अध्ययन करती है। ऐतिहासिक अध्ययन पद्धति का उपयोग करके, हम यह समझ सकते हैं कि अतीत में सामाजिक न्याय के मुद्दों को कैसे समझा गया और संभाला गया, और इससे हम वर्तमान और भविष्य के लिए महत्वपूर्ण सबक सीख सकते हैं।

सामाजिक न्याय के पहलू- आर्थिक न्याय एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जो समाज में सभी व्यक्तियों के लिए समान आर्थिक अवसरों और संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने पर केंद्रित है। यह कई मुद्दों से संबंधित है, जैसे कि गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता। गरीबी एक ऐसी स्थिति है जहां व्यक्ति या परिवार अपने बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होते हैं, जैसे कि भोजन, वस्त्र, आवास और स्वास्थ्य सेवाएं। बेरोजगारी एक आर्थिक स्थिति है जिसमें सक्षम और इच्छुक व्यक्ति को काम नहीं मिलता है। यह एक महत्वपूर्ण समस्या है क्योंकि यह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए नकारात्मक प्रभाव डालती है। बेरोजगारी के कारण हो सकते हैं– शिक्षा और कौशल की कमी, आर्थिक मंदी, उद्योगों का स्थानांतरण, तकनीकी बदलाव।

आर्थिक असमानता का मतलब है कि समाज में धन और संसाधनों का वितरण असमान है। यह विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच धन, आय और अवसरों की असमानता को दर्शाता है। आर्थिक असमानता के कारण हो सकते हैंरू सामाजिक और आर्थिक नीतियाँ, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की असमानता, अवसरों की कमी, भेदभाव और सामाजिक पूर्वाग्रह।

शैक्षिक न्याय (Educational Equity) का मतलब है कि सभी व्यक्तियों को उनकी सामाजिक, आर्थिक, जातीय, और भौगोलिक पृष्ठभूमि के बावजूद समान अवसर और संसाधनों के साथ उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए। इसमें दो मुख्य पहलू शामिल हैं: शिक्षा की उपलब्धता और शिक्षा की गुणवत्ता। सभी बच्चों को उनके निवास स्थान के पास स्कूलों तक पहुंच होनी चाहिए, चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र हो या शहरी क्षेत्र। शिक्षा की लागत को इस प्रकार से संरचित किया जाना चाहिए कि गरीब से गरीब परिवार भी अपने बच्चों को स्कूल भेज सकें। सभी जातियों, धर्मों, और लिंग के बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर मिलें। छात्रों को उच्च गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकें, लाइब्रेरी, और अन्य शैक्षिक सामग्री प्राप्त होनी चाहिए। सभी स्कूलों में अच्छी तरह से प्रशिक्षित और समर्पित शिक्षक होने चाहिए। स्कूलों में उचित अवसंरचना, जैसे कि पर्याप्त क्लासरूम, प्रयोगशालाएं, खेल के मैदान, और शौचालय सुविधाएं होनी चाहिए। सभी छात्रों को बिना किसी भेदभाव के समान शैक्षिक अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

कई परिवार अपनी आर्थिक स्थिति के कारण अपने बच्चों को उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करने में असमर्थ होते हैं। कुछ क्षेत्रों में जातीय और सामाजिक भेदभाव के कारण बच्चों को समान शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती। ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाओं की कमी होती है जबकि शहरी क्षेत्रों में ये अधिक उपलब्ध होती हैं। कुछ समाजों में लड़कियों की शिक्षा को लड़कों की शिक्षा की तुलना में कम महत्व दिया जाता है। सरकार

को ऐसी नीतियों और योजनाओं का निर्माण करना चाहिए जो शिक्षा की समानता को प्रोत्साहित करें। गरीब और कमजोर वर्गों को वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे शिक्षा प्राप्त कर सकें। शिक्षकों को नियमित रूप से प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे अपनी शिक्षण क्षमताओं को सुधार सकें। समाज में शिक्षा की महत्वपूर्णता के बारे में जागरूकता बढ़ाना चाहिए ताकि सभी लोग अपने बच्चों की शिक्षा को प्राथमिकता दें।

शैक्षिक न्याय एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है जो समाज की समग्र उन्नति के लिए आवश्यक है। शिक्षा की उपलब्धता और गुणवत्ता दोनों ही इसके अनिवार्य तत्व हैं, और दोनों में सुधार के लिए लगातार प्रयास किए जाने चाहिए।शैक्षिक न्याय का मतलब है कि सभी व्यक्तियों को उनकी सामाजिक, आर्थिक, जातीय, और भौगोलिक पृष्ठभूमि के बावजूद समान अवसर और संसाधनों के साथ उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए। इसमें दो मुख्य पहलू शामिल हैंरू शिक्षा की उपलब्धता और शिक्षा की गुणवत्ता। सरकार को ऐसी नीतियों और योजनाओं का निर्माण करना चाहिए जो शिक्षा की समानता को प्रोत्साहित करें। गरीब और कमजोर वर्गों को वित्तीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे शिक्षा प्राप्त कर सकें। शिक्षकों को नियमित रूप से प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे अपनी शिक्षण क्षमताओं को सुधार सकें। समाज में शिक्षा की महत्वपूर्णता के बारे में जागरूकता बढ़ाना चाहिए ताकि सभी लोग अपने बच्चों की शिक्षा को प्राथमिकता दें।शैक्षिक न्याय एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है जो समाज की समग्र उन्नति के लिए आवश्यक है। शिक्षा की उपलब्धता और गुणवत्ता दोनों ही इसके अनिवार्य तत्व हैं, और दोनों में सुधार के लिए लगातार प्रयास किए जाने चाहिए।

लैंगिक न्याय (Gender Justice) का मतलब है कि समाज में सभी लिंगों के लोगों को समान अधिकार, अवसर, और सम्मान मिले। इसमें महिलाओं, पुरुषों, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों और अन्य गैर-बाइनरी लिंग पहचान वाले लोगों के अधिकार शामिल हैं। लैंगिक न्याय के उद्देश्य से लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त करना और सभी लिंगों के लिए समान अवसरों को सुनिश्चित करना है।

जातिगत न्याय (Caste Justice) का मतलब है कि समाज में सभी जातियों के लोगों को समान अधिकार, अवसर और सम्मान मिले और जातिगत भेदभाव को समाप्त किया जाए। यह उन सामाजिक और कानूनी प्रयासों का हिस्सा है जो जातिगत भेदभाव को मिटाने और सभी जातियों के लोगों के लिए समानता सुनिश्चित करने की दिशा में काम करते हैं।

स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं का उद्देश्य समाज के सभी सदस्यों को उचित स्वास्थ्य सेवाएं और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है। स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता और गुणवत्ता में सुधार करके एक स्वस्थ और समृद्ध समाज का निर्माण किया जा सकता है।

भारतीय राजनीति और सामाजिक न्याय- भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिसमें सभी नागरिकों के लिए समानता, अवसर, और अधिकार सुनिश्चित करने के प्रयास शामिल हैं। यह विशेष रूप से समाज के कमजोर और हाशिए पर रहने वाले समूहों के लिए महत्वपूर्ण है, जैसे कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित

जनजातियों, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिलाएं, और अल्पसंख्यक।

शिक्षा, रोजगार, और राजनीति में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण प्रणाली लागू है। इसका उद्देश्य ऐतिहासिक और सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों को समान अवसर प्रदान करना है।

महिलाओं के अधिकारों और समानता को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कानूनी और सामाजिक सुधार किए गए हैं। महिलाओं को पंचायतों और स्थानीय निकायों में 33 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए विशेष कानून और नीतियां बनाई गई हैं।

विकलांग व्यक्तियों के लिए अधिकारों और सेवाओं को सुनिश्चित करने के लिए विशेष कानून, जैसे कि 'विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम', लागू किए गए हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15, 16, 17, 38, और 46 सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रावधान करते हैं। यह जाति, धर्म, लिंग, और जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करते हैं। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय ने सामाजिक न्याय के मुद्दों पर कई महत्वपूर्ण निर्णय दिए हैं, जो समाज में समानता और न्याय की भावना को मजबूत करते हैं। भारतीय राजनीति में कई सामाजिक सुधार आंदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जैसे कि दलित आंदोलन, महिला आंदोलन, और आदिवासी आंदोलन। सरकार ने विभिन्न कल्याणकारी योजनाएं शुरू की हैं, जैसे कि श्महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, प्रधानमंत्री जन धन योजना और प्रधानमंत्री आवास योजना, जो समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए हैं।

चुनौतियाँ-

- जातिगत भेदभाव और अत्याचार अभी भी समाज में व्यापक रूप से मौजूद हैं, जो सामाजिक न्याय के प्रयासों में बाधा बनते हैं।
- महिलाओं को समान अवसर और अधिकार प्राप्त करने में अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।
- आर्थिक असमानता के कारण समाज के गरीब वर्गों को समान अवसर प्राप्त नहीं हो पाते।
- कल्याणकारी योजनाओं और आरक्षण प्रणाली में भ्रष्टाचार और कुप्रबंधन के कारण लाभार्थियों को पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता।

समाधान-

- सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए मौजूदा कानूनों का प्रभावी क्रियान्वयन और नए कानूनों का निर्माण आवश्यक है।
- लोगों में सामाजिक न्याय के महत्व के बारे में शिक्षा और जागरूकता बढ़ाने के प्रयास किए जाने चाहिए।
- सरकार और संगठनों को समावेशी नीतियों और प्रक्रियाओं को अपनाना चाहिए, जो सभी वर्गों के लोगों के अधिकारों की रक्षा करें।
- जातिगत भेदभाव और लिंग भेद को समाप्त करने के लिए सामाजिक सुधार आंदोलनों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय का महत्व अत्यधिक है, क्योंकि यह समाज की समग्र उन्नति और समानता के लिए आवश्यक है। सरकार, न्यायपालिका, और समाज को मिलकर सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास करने चाहिए।

समकालीन चुनौतियाँ- सामाजिक न्याय प्राप्त करने में कई चुनौतियाँ और बाधाएँ हैं, जो समाज के विभिन्न वर्गों को समान अवसर और अधिकार प्राप्त करने में कठिनाई पैदा करती हैं। निम्नलिखित वर्तमान चुनौतियाँ सामाजिक न्याय की राह में प्रमुख बाधाएँ हैं–

- जातिगत भेदभाव और ऊँच–नीच का भेदभाव अभी भी समाज में व्यापक रूप से मौजूद है, जिससे निम्न जातियों के लोगों को शिक्षा, रोजगार, और सामाजिक प्रतिष्ठा में बाधाओं का सामना करना पड़ता है।
- जातिगत अत्याचार और हिंसा की घटनाएँ अभी भी कई क्षेत्रों में होती हैं, जो सामाजिक न्याय के प्रयासों में बाधा बनती हैं।
- महिलाओं को अभी भी कई क्षेत्रों में लिंग आधारित भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जैसे कि कार्यस्थल पर, शिक्षा में, और घरेलू जीवन में।
- घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न की घटनाएँ महिलाओं के लिए सुरक्षा और स्वतंत्रता में बाधा डालती हैं।
- समाज में व्यापक गरीबी और आर्थिक असमानता के कारण कई लोग सामाजिक न्याय के लाभों से वंचित रह जाते हैं।
- विभिन्न वर्गों और जातियों के बीच वेतन असमानता एक बड़ी चुनौती है, जिससे आर्थिक विकास की गति धीमी होती है।
- ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता और पहुंच का अभाव है, जिससे बच्चों को समान शैक्षिक अवसर प्राप्त नहीं हो पाते।
- स्वास्थ्य सेवाओं की असमान उपलब्धता और गुणवत्ता गरीब और हाशिए पर रहने वाले वर्गों के लिए एक बड़ी चुनौती है।
- सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए बने कानूनों का प्रभावी प्रवर्तन नहीं हो पाता, जिससे कमजोर वर्गों के अधिकारों की रक्षा नहीं हो पाती।
- सरकारी और निजी संस्थानों में भेदभाव और कुप्रबंधन के कारण कमजोर वर्गों को न्याय प्राप्त करने में कठिनाई होती है।
- सरकारी योजनाओं और नीतियों में भ्रष्टाचार के कारण लाभार्थियों को पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता, जिससे सामाजिक न्याय के प्रयास विफल हो जाते हैं।
- योजनाओं और नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन में कुप्रबंधन और प्रशासनिक खामियाँ भी एक बड़ी बाधा हैं।
- समाज में प्रचलित रूढ़िवादी और पारंपरिक सोच के कारण परिवर्तन और सुधार की गति धीमी होती है।
- सामाजिक न्याय के महत्व और अधिकारों के प्रति लोगों में जागरूकता की कमी है, जिससे भेदभावपूर्ण व्यवहार जारी रहता है।

समाधान-

- प्रभावी कानूनों का निर्माण और उनके कड़े प्रवर्तन की आवश्यकता है ताकि भेदभाव और अत्याचार पर अंकुश लगाया जा सके।
- लोगों में सामाजिक न्याय के महत्व और अधिकारों के प्रति शिक्षा और जागरूकता बढ़ाने के प्रयास किए जाने चाहिए।
- गरीब और कमजोर वर्गों के आर्थिक सशक्तिकरण के लिए विशेष योजनाएं और कार्यक्रम लागू किए जाने चाहिए।
- सभी वर्गों के लोगों के लिए समावेशी नीतियों और प्रक्रियाओं को अपनाना चाहिए, जो उनके अधिकारों की रक्षा करें।
- भेदभाव और असमानता के खिलाफ सामाजिक सुधार आंदोलनों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकार, समाज और संस्थाएँ मिलकर काम करें और इन चुनौतियों को दूर करने के लिए निरंतर प्रयास करें।

निष्कर्ष- भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, जिसमें सभी नागरिकों के लिए समानता, अवसर, और अधिकार सुनिश्चित करने के प्रयास शामिल हैं। यह विशेष रूप से समाज के कमजोर और हाशिए पर रहने वाले समूहों के लिए महत्वपूर्ण है, जैसे कि अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिलाएं, और अल्पसंख्यक।भारतीय राजनीति और सामाजिक न्याय के संदर्भ में अध्ययन के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि सामाजिक न्याय के प्रयासों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, लेकिन अभी भी कई चुनौतियाँ मौजूद हैं। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए सरकार, समाज, और संस्थानों को मिलकर काम करने की आवश्यकता है। प्रभावी नीतियाँ, कानूनी सुधार, शिक्षा और जागरूकता अभियान, और समावेशी विकास की दिशा में निरंतर प्रयास किए जाने चाहिये।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. B.R. Ambedkar, "Annihilation of Caste", Navayana, 2015
2. Anupama Rao, "The Caste Question: Dalits and the Politics of Modern India", University of California Press, 2009
3. Nivedita Menon, "Gender and Politics in India", OUP India, 1999
4. Rob Jenkins, "Democratic Politics and Economic Reform in India", Cambridge University Press, 2009
5. Partha Chatterjee, "The Politics of the Governed: Reflections on Popular Politics in Most of the World", Columbia University Press, 2009
6. Angus Deaton and Jean Druze , "Poverty and Inequality in India: A Reexaminations"
7. Surinder S. Jodhka, "Caste in Contemporary India", Routledge India, 20214
8. K.S. Chalam, "Reservations and Affirmative Action: Models of Social Integration in India and the United States"

9. Udayon Misra, "Contesting Marginality: Ethnicity] Insurgency and Subnationalism in North&East India"
10. K. Ramaswamy, "Social Justice and the Constitution of India: With Reference to SCs, STs and Backward Classes"
11. European Yearbook of Minority Issues, Vol. 8 (2009) 413-453India and the Paradox of Caste Discrimination (pre-publication text); published at European Yearbook of Minority Issues Vol 8 (2009), 413-452
12. डॉ. भीमराव अंबेडकरए जाति का उच्छेद
13. सुरेश सिंह, दलित आंदोलन और भारतीय राजनीति
14. डॉ. नरेंद्र सिंह, भारतीय समाज में जाति और वर्ग
15. डॉ. चंद्रमोहन पांडेय, आरक्षण: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण
16. डॉ. ममता शर्मा, महिला सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय
17. डॉ.एस.के. तिवारी, भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय
18. डॉ. रामेश्वर प्रसाद, आर्थिक असमानता और सामाजिक न्याय
19. डॉ. मोहम्मद शफी, अल्पसंख्यक अधिकार और भारतीय राजनीति
20. डॉ. राजेश, जातिगत भेदभाव और सामाजिक न्याय

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

अध्यात्म : भारतीय ज्ञान के रूप में

• अमृता कुमारी

सारांश- आज भारतीय समाज जिस हीनावस्था में दिखाई दे रहा है उसके कारण को जानने समझने का प्रयास करते है तो पाते हैं कि उसने आध्यात्मिक आदर्शों को एक प्रकार से बहिष्कार कर दिया है। कोरे भौतिक आदर्श को अपनाकर उसका चरित्र और आचरण निम्न कोटि का हुआ है। जीवन के हर क्षेत्र में उसकी गतिविधि दूषित हुई हैं। अतएव मानवीय मूल्यों, आदर्शो एवं सम्यता संस्कृति की रक्षा हेतु अध्यात्म की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता। यह भारतीय ज्ञान की अमूल्य निधि है। इसको जानना, समझना एवं जीवन में प्रयोग के साथ-साथ विश्व को इससे परिचित कराना ताकि सम्पूर्ण मानव का कल्याण संभव हो सके आवश्यक है।

मुख्य शब्द- अध्यात्म, सद्गुण, पवित्रता, चेतना, अस्तित्व, अनुशासन, योग

भूमिका- अध्यात्म बड़ा ही रोचक एवं गहरी शब्द है। यह शब्द अधि + आत्म से मिलकर बना है, अधि का अर्थ है–विस्तार और आत्मा का अर्थ है– चेतना अर्थात चेतना का विस्तार। वस्तुत: जो अपनी चेतना का जितना अधिक विकास करता है वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक होता है। आत्मा परमात्मा का अंश होने के कारण पवित्र एवं सदगुण स्वरूप होता है। अत: सदगुणों का विकास ही 'आत्मा' का विकास है। मानव अपने अंदर निरंतर श्रेष्ठाताओं व सदगुणों का संवर्द्धन करे, वस्तुत: यही 'अध्यात्म' है। अध्यात्म से तात्पर्य है 'आत्मा का चिंतन' तथा इस दृष्टि से आध्यात्मिकता का मुख्य उद्देश्य आत्मिक उत्कर्ष करना है। वैदिक युग से लेकर आज तक आध्यात्मिकता का तत्व भारतीय दर्शन की अपनी विशिष्टता रही है। चूँकि दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते मुझमें भी इसे जानने समझने की जिज्ञासा प्रारंभ से रही है।

अध्यात्म की अवधारणा को लेकर कुछ प्रचलित भ्रांतियाँ भी है इनसे अवगत होना आवश्यक है। साधारण जनमानस की धारणा है कि ईश्वर विषयक चर्चा करने वाले व पूजा पाठ करने वाले आध्यात्मिक है। एक विशेष प्रकार की वेशभूषा से आवेष्टित, चमत्कारों को दिखाने वाला अथवा भविष्यवाणियाँ करने वाला आध्यात्मिक व्यक्ति की पहचान मान ली जाती है। किन्तु उक्त सभी विवेचना भ्रामक दृष्टि एवं त्रुटिपूर्ण विचार पर आधारित है। आचार्य आर. डी. रानाडे के अनुसार,[1] अध्यात्मिक्ता का विकास इस ज्ञान और अनुभव के साथ होता है कि जगत् के आभासों के पीछे गहरायी में एक सता है, सता

• सहायक प्राध्यापिका, दर्शनशास्त्र विभाग, वाई. एन. कॉलेज, दिघवारा

(अस्तित्व) का एक गहरा सत्य है, हमारे जीवन में एक उच्चतर उद्दे'य है, हम किसी एक निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं, चाहे हम उसे अनुभव करें या न करे और यह मनुष्य का कर्तव्य है कि वह जाने कि वास्तव में वह कौन है? वह प्रत्येक क्षण और अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी आन्तरिक दिव्यता को उपलब्ध और अभिव्यक्त करें। आध्यात्म सम्पूर्ण जीवन का आलिंगन करता है जिसमें हमें अपनी सत्ता के आन्तरिक और उच्चतर सत्य को अनुभव तथा अभिव्यक्त करना है। वह जीवन की बाहरी पहलू जैसे- वैवाहिक व्यवस्थाएँ, बाहय परिस्थितियाँ, धन-सम्पति और सामाजिक पद-प्रतिष्ठा इत्यादि को भी अस्वीकार नहीं करता। मैं क्या खाता हूँ, कैसे सोता हूँ, क्या करता हूँ और कैसे करता हूँ- ये सब आध्यात्मिक जीवन का हिस्सा है। मनुष्य जीवन का प्रत्येक पहलू घनिष्ठ रूप से अध्यात्म से संबंधित है। प्रो. रामलाल सिंह ने कहाँ 'अहं की समस्या के प्रबंधन, स्वनियोजन तथा नियंत्रण द्वारा स्थायी शान्ति की प्राप्ति का एक उपाय अथवा साधन है। यह स्वयं साध्य नहीं है। इनके अनुसार भ्रमवश लक्ष्य नहीं समझना चाहिए। क्योंकि जब यह तथ्य विस्मृत हो जाता है तभी संकीर्णता', कट्टरपन तथा अंधविश्वास उभरकर ऊपर आते हैं। यह नितान्त सुस्पष्ट होना आवश्यक है कि अध्यात्म जीवन का मात्र एक प्रकार (way of life) विधि अथवा साधन है। यह केवल एक अनुशासन है।'[2] अध्यात्म का सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से है।

आध्यात्मिक साधनाएँ इतनी सामर्थ्यवान हैं कि उनके द्वारा भौतिक विज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण सफलताएँ उपलब्ध की जा सकती हैं। हमारे देश में अनेक ऋषियों, महर्षियों, सन्त महात्माओं, योगियों का जीवन इसका प्रमाण है। बिना साधनों के उन्होंने आज से हजारों वर्ष पूर्व अन्तरिक्ष, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा आदि के संबंध में अनेकों महत्वपूर्ण तथ्य खोज निकाले थे। अनेको विधाएँ, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान में उनकी गति असाधारण थी।

भारतीय ज्ञान के रूप में कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ है जिनसे अवगत होना आवश्यक है, वे निम्न है-

भारतीय शिक्षा प्रणाली में मस्तिस्क के वाम (Left Brain) और दक्षिण भाग (Right Brain) दोनों का विकास शामिल था।

Right Brain	Left Brain Logic
Free spirit	Realistic
Feelings	in Control
Senses	Linear
Arts	Analytical
Creativity	Scientific
Poetry	Accurate
Yearning	Practical
Sensuality	Mathematics
Passion	Categorize
Imagination Vivid	Strategic

मन की पाँच अवस्थाएँ महर्षि पतंजलि ने बताया है जिनमे-

मूढ़ - आलस्ययुक्त, मूर्ख, मंदबुद्धि, मूढ़ अवस्था में तमोगुण की प्रधानता है।

क्षिप्त - बेचैन, चंचल, एकाग्रहीन इस अवस्था में चित्त रजोगुण के प्रभाव में रहता है।

विक्षिप्त - मन की अस्थिरता, कमी एकाग्र होना और कभी भटकना इसमें चित्त चंचल रहता है।[3]

एकाग्र - एक ही वस्तु पर ध्यान का केन्द्रित।

निरूद्ध - पूर्ण और सत्त एकाग्रता की स्थिति।

आज की शिक्षा पद्धति मूढ़, क्षिप्त एवं विक्षिप्त तक ही सीमित होकर रूक गई। पाश्चात्य ज्ञान पद्धति भी इसी के इर्द-गिर्द है। भारतीय प्राचीन ज्ञान शिक्षा पद्धति की विशेषता रही है जिसमें शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों उक्त तीनों के साथ निरूद्ध और एकाग्र अवस्था को प्राप्त कर शिक्षा देते एवं ग्रहण करते थे।

- महर्षि पतंजलि 2100 वर्ष पूर्व ही विज्ञान को परिभाषित कर रखा था। प्रत्यक्ष अनुमान आगम इति प्रमाणा: अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम पर आधारित प्रमाणित ज्ञान ही विज्ञान है।
- गणित में भी भारत की कुछ उपलब्धियाँ है- दशमलव पद्धति, त्रिकोणमिति, अंकगणितीय, बीजगणितीय समीकरण, द्विआधारी संख्या पद्धति (Binary system) कलन शास्त्र (Calculus) इत्यादि।
- अध्यात्म को लेकर भी कुछ मार्ग बताये गए हैं एवं लक्ष्यों को भी निरूपित किया गया है।

मार्ग	लक्ष्य
राजयोग	परम ज्ञान व मोक्ष की प्राप्ति
भक्तियोग	कुछ अनुभूतियाँ हैं।
ज्ञानयोग	अहं ब्रहमास्मि
कर्मयोग	आत्मवत सर्वभूतेषु
हठयोग	सर्वं खल्वमिदं ब्रहमं
तंत्र साधना	तत् त्वम् असि

आध्यात्मिक लाभ के अतिरिक्त संसार की कोई भी उपलब्धियाँ मनुष्य को क्षुद्रता से विराट की ओर, तुच्छता से उच्चता की ओर नहीं ले जा सकती। केवल अध्यात्म में ही मनुष्य 'क्षुद्र से विराट' और' 'तुच्छ से उच्च' हो जाता है। आध्यात्मिक जीवन आध्यात्मिक सुख का निश्चित हेतु है। आध्यात्मिक वह दिव्य आधार है, जिस पर मनुष्य की आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की उन्नति, समृद्धियाँ अवलंबित है। सांसारिक उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए भी जिन परिश्रम, पुरूषार्थ, सहयोग, सहकारिता आदि गुणों की आवश्यकता होती है, वे सब आध्यात्मिक जीवन के ही अंश है। मनुष्य का आंतरिक विकास तो अध्यात्म के बिना हो ही नहीं सकता।

आध्यात्मिक जीवन का आधार- वर्तमान युग समाजवाद का युग है। इस युग में आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता केवल व्यक्तिगत मुक्ति के लिए ही नहीं, बल्कि समाज की भलाई के लिए भी है। आज के व्यक्ति ऐसे जीवन दर्शन को ऊँचा नहीं समझते जो मनुष्य को जंगल में अलग-थलग बैठ, आँखे मूँदकर साधना साधने की प्रेरणा दे,

बल्कि आज ऐसे योग की माँग है, ऐसी साधना की खोज है, ऐसे जीवन-दर्शन की आवश्यकता है, जो गृहस्थ को सुखी बनाएँ, कार्य -व्यवहार में पवित्रता लाएँ, व्यक्ति में खुशी व उल्लास भर दे तथा उसके जीवन से तनाव, मनमुटाव तथा दु:ख दूर कर दे। आज की समस्त समस्याओं का मूल कारण कोई-न-कोई मानसिक विकार ही है। उदाहरणत: तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक दरिद्रता, बेरोजगारी इत्यादि समस्याओं का मूल कारण उत्तेजित काम वासना ही है। दो देशों या दलों में लड़ाई अथवा मजदूरों अथवा युवकों के द्वारा तोड़-फोड़ का मूल कारण क्रोध ही है। आर्थिक शोषण अथवा उसको लेकर मिल मालिकों तथा मजदूरों में मनमुटाव, हड़ताल, बढ़ती महँगाई का मूल कारण अमीरों की लोभवृति तथा गरीबों की समाधान विधि में क्रोध एवं हिंसा है। इसके साथ ही जब लोग मिथ्या अहंकार करने लगते है, सत्य भी देखने के लिए आँखे अथवा कान बंद कर लेते है तो वह सत्य से वंचित हो जाते हैं। जब किसी देश, राज्य या समाज के व्यक्ति-स्फूर्ति, कार्य-क्षमता तथा कर्तव्य- परायणता को तिलांजलि देकर आलस्य में पड़ जाता है तो वहाँ दरिद्रता का साम्राज्य बढ़ जाता है। एकतरह से क्रोध, काम, लोभ, मोह एवं अहंकार रूपी रावण मानव की खुशी में ग्रहण लगा दिया है। हम सभी इससे अवगत हैं कि समाज की इकाई व्यक्ति है और जबतक व्यक्तिगत जीवन पवित्र न हो, तब तक उज्जवल एवं मंगलमय समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। अत: पवित्रता ही महानता है और सुख शान्ति की कुँजी है। यही आध्यात्मिक जीवन का आधार भी है।

आध्यात्मिक जीवन का दूसरा आधार है 'योगी बनो' अर्थात् मनुष्य को योगयुक्त होना होगा। इससे संबंधित विभिन्न प्रकार के योगों की चर्चा हमने पृष्ठ-04 में किया है। गीता में 'योग' शब्द का अर्थ 'जोड़ना' लिया गया है। उसमें कहा गया है कि आत्मा में स्थित होकर सहज ही परमात्मा से मन को जोड़ना अथवा परमात्मा से संस्पर्ष (Contact) करके आन्तरिक सुख में स्थित होना ही योग है। गीता में बताया गया है योगी अपने चित्त द्वारा आत्मा का संबंध 'परमात्मा' से जोड़ता है।

योग की परिभाषा करते हुए भगवान ने गीता में कहा है कि 'हे वत्स्! तू चित्त को निरन्तर मुझमे ही लगा, दूसरों को भी मेरी महिमा का परिचय कराओ, उनसे मेरी ही चर्चा करो और बुद्धि को मेरे में ही अर्पण करो। तू सदा सर्वदा मेरी ही स्मृति में स्थित हो।'[4] अत: ईश्वरीय स्मृति में स्थित होने का पुरूषार्थ करना ही योग युक्त होना है।[5] क्योंकि प्रेम-युक्त' (Meditation) ही मन को परमात्मा में स्थिरता (Concentration) प्रदान करके संपर्क (Link) जोड़ता है और उससे अनुभूति (Realization) होता है।

अध्यात्म का उद्देश्य- जीवन में पवित्रता आये। सदाचार बढ़े। मन में शान्ति बनी रहे। बुद्धि की रूचि अच्छाई की ओर बढ़ें। चित्त प्रसन्न रहें और आत्मा में आनंद की वृद्धि हो। आध्यात्मिकता अपनी जिम्मेदारियों को सन्तुलन बनाये रखने की कला है। ये जिम्मेदारियाँ हैं- स्वयं के प्रति, परिवार के प्रति, समाज के प्रति एवं सारे विश्व के प्रति।

निष्कर्ष- जीवन में खुशी के लिए मानवीय मूल्यों की धारणा आवश्यक है एवं उसका आधार आध्यात्मिक ज्ञान है। समाज के उत्थान के लिए व्यक्ति की सोच, विचार, चरित्र एवं जीवन प्रणाली को सकारात्मक एवं श्रेष्ठ बनाना आवश्यक है, जिसके लिए

आध्यात्मिक ज्ञान, मानवीय मूल्यों को जीवन में आत्मसात करना एवं राजयोग का अभ्यास नितान्त आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. रानाडे: रेलिवेन्स ऑफ स्पिृचुअलिटी इन मॉडर्न लाइफ (अंग्रेजीवार्ता, अक्टूबर 1966, श्री अरविन्द केन्द्र अधचीनी, नई दिल्ली)
2. प्रो. रामलाल सिंह, निबंध, 'अध्यात्म की अवधारणा तथा आचार्य रानाडे' स्मारिका अखिल भारतीय दर्शन परिषद, 52 वां अधिवेशन, पृष्ठ- 02
3. सिंह बी.एन., भारतीय दर्शन, 1983, स्टूडेण्ट्स फ्रेण्ड्स एण्ड कंपनी, वाराणसी, पृष्ठ 266
4. श्रीमद्भगवद् गीता - 10/ 9, 8 / 7, 8/ 27
5. श्रीमद्भगवद् गीता - 12 /2

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

जबलपुर-कटनी जिले में शैक्षिक सुविधाओं की स्थिति : एक अध्ययन

• शिव कुमार दुबे
•• नमिता गुप्ता

सारांश- किसी भी समाज के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा प्रथम आवश्यकता है। शिक्षा सामाजिक, संस्कृति एवं आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। शिक्षा व्यक्ति को समय एवं परिस्थितियों के अनुरूप निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है प्रख्यात् अर्थशपाास्त्री अमृर्त्य सेन ने भी समाज की गुणवत्ता के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है उनका मानना था कि संस्कृति एक जटिल विषय है लेकिन संस्कृति के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है शिक्षा के अनुभव यह बताते है कि शिक्षा के प्रत्यक्ष और तात्कालिक उद्देश्य लोगों को अधिक जानकार, कुशल, प्रबुद्ध एवं सक्षम बनाते है। भारत एक प्रजातांत्रिक देश है जिसमें अनेग विविधताएँ एवं मान्यताएँ है। भारत में विभिन्न जातियों के साथ-साथ पर्याप्त संख्या में अनुसूचित जाति भी निवास करती है। सन् 2011 के अनुसार देश की कुल जनसंख्या 121.06 करोड़ थी जिसमें से 16.63 प्रतिशत अनुसूचित जाति है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारत में शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी विशेष तोर पर अनुसूचित जाति वर्ग में केवल स्वयं सेवी संस्थाओं और मिशनरियों द्वारा ही अनुसूचित जाति की शिक्षा के लिए प्रयास किये गये। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के तीव्र विकास हेतु योजनाओं का निर्माण किया गया एवं शिक्षा के महत्व को समझाा गया एवं विद्यालय स्तर पर शिक्षा के लिए समय-समय पर प्रयास किये गये अंत: भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनुसूचित जाति की शैक्षणिक स्थिति में सुधार हुआ है।

मुख्य शब्द- समाज, सर्वांगीण विकास, शिक्षा, गुणवत्ता

"अपने अन्दर जाओं और उपनिषदों को अपने में से बाहर निकालों तुम सबसे महान् पुस्तक हो, जो कभी भी अथवा होगी । जब तक अन्तरात्मा नहीं खुलती, समस्त बाह्य शिक्षण कार्य व्यर्थ है।"

स्वामी विवेकानंद जी

प्रस्तावना- प्राचीनकाल में शिक्षा का स्वीकृत आधार जाति व्यवस्था से सम्बंधित था। प्राचीनकाल में ब्राम्हण शिक्षा के क्षेत्र में और क्षत्रिय युद्ध क्षेत्र में निपुण माने जाते थे। इसी

• प्राध्यापक भूगोल, ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय (स्वशासी), रीवा म.प्र.
•• शोधार्थी, भूगोल विभाग, पण्डित एस.एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

प्रकार वैश्यों एवं शुद्रों को प्रशिक्षण भी उनके कार्य क्षेत्र के अनुरूप अलग अलग थे। मध्यकाल में तथा अंग्रेजी शासनकाल में शिक्षा जनसाधारण के मध्य धार्मिक विचारों तथा धर्मप्रचार का माध्यम बनी। अंग्रेजी शासन में राजकीय कार्यो के लिए बाबू व ऑफीसर की आवश्यकता हेतु शिक्षा एक माध्यम बनी, जिससे शासन व्यवस्था मजबूत बनाई जा सके।

अति प्राचीनतम समय में (वैदिककाल) जब आर्य संस्कृति का उदय हुआ तब व्यक्तियों के वर्गीकरण मूल रूप से विभिन्न प्रतिभाओं के मनुष्यों को भिन्न -भिन्न श्रेणियों में उनकी प्रतिभाओं के अनुसार रखा जाता था। छात्रों की प्रतिभाओं को माता पिता अथवा अध्यापकगण पहचानते थे। आधुनिक समय में भी शिक्षा व्यवस्था का यही आधार हैं शिक्षा बालकेन्द्रित है। शिक्षा के मूलभूत आधार दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आधार में दृष्टिगोचर होते है। वैसे तो शिक्षा औपचारिक व अनौपाचारिक रूप मे जन्म से मृत्यु तक आजीवन चलती है। और हम हर पल, हर समय कुछ ना कुछ प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सीखतें रहते है। शिक्षा के दो पक्ष सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक है शिक्षा का सैद्धान्तिक पक्ष दर्शन पर आधारित है । जैसे आदर्शवाद शिक्षा के उद्देश्यों को, प्रकृतिवाद शिक्षण विधियों को और यथार्थवाद शिक्षा की उपयोगिता को आधार देती है। इसी प्रकार शिक्षा दर्शन को व्यवहारिक रूप में प्रदर्शित करती है। 19 वीं शताब्दी में मनोवैज्ञानिक विचारधारा ने शिक्षा को अधिक प्रभावित किया है। शिक्षा की व्यवस्था में शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा में बालक को केन्द्र बिन्दु मानते है। शिक्षा व्यवस्था बालकों की रूचियों क्षमताओं को आधार माना गया। शिक्षा मनोविज्ञान बालक के शारिरीक व मानसिक विकास के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था, शिक्षण विधियों का प्रयोग पर बल देते है। जिससे बालक के व्यक्तित्व का समन्वित विकास किया जा सकें। मनोविज्ञान शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष का विकास है। शिक्षा के तृतीय आधार सामाजिक आधार पर शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक को योग्य व कुशल नागरिक बनाना है जिससे वह समाज के मूल्यों की सुरक्षा करें, उचित परिवर्तन व नियंत्रण का साधन भी है। अत: समाजशास्त्र के आधार पर बालक का विकास समाज की उपयोगिता की दृष्टि से होना चाहिए। आधुनिक समय (वर्तमान समय) में मनोविज्ञान का उपयोग शिक्षा में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। मनोविज्ञान बालक के समन्वित विकास पर बल देता है। मनोविज्ञान बालक को केन्द्र बिन्दु मानती है।

बालक के शारीरिक, मानसिक,संवेगात्मक व सामाजिक, अनुवांशिक तथा वातावरण, बुद्धिलब्धि, सीखने के सिद्धान्त- राष्ट्रीय शिक्षा गति (1986) में शिक्षा के समानता के अवसर अर्थात् सभी को शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर प्रदान करने की संस्तुति की। इसके अलावा (1989) बहरूल इस्लाम कमेटी , भारतीय पुर्नवासन परिषद 1992 (Rehabiliatiohn council of India act 1992) भारत के संविधान 16 तथा 45 में विशिष्ट बालकों व सामान्य बालको को समन्वित शिक्षा देने पर बल दिया गया।

स्थिति एवं विस्तार- जबलपुर कटनी जिला मध्यप्रदेश राज्य के मध्य में बसा है जो अपनी ऐतिहासिक सांस्कृतिक सम्पदा का विशेष धनी है। जबलपुर-कटनी जिला कैमूर के पठार एवं सतपुड़ा के मध्य बसा है। जिसमें जबलपुर का अक्षांश देशान्तरीय विस्तार 23018' से 79057' उत्तर से पूर्व में फैला हुआ है। एवं कटनी जिले का उ त्तरी अक्षांश

230331 से 240801 तक तथा पूर्वी देशान्तर 790971 से 80058' के बीच स्थित है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 1019829 हेक्टेयर है। जबलपुर कटनी जिले की औसत वर्षा 2474 मिली मी. तक दर्ज की गई है। यहा का तापमान जनवरी माह में 400 सेन्टीग्रेड और मई माह का तापमान 470 सेन्टीग्रेड दर्ज किया गया है।(मानचित्र क्र.1)



विद्यालय शिक्षा- हमारे देश में स्कूली शिक्षा चार स्तरों पर होती है– प्रारंभिक, माध्यमिक, उच्च और उच्चतर। प्रारंभिक शिक्षा में दो चरण होते हैंय प्राथमिक विद्यालय शिक्षा और मध्यमिक विद्यालय शिक्षा। दूसरी ओर हाई स्कूल शिक्षा के दो चरण हैं I है हाई स्कूल और हायर सेकेंडरी शिक्षा। इसके अलावा, ग्रेड I से V को प्राथमिक चरण के अनुरूप, ग्रेड VI से VIII को मध्य चरण के अनुरूप और ग्रेड IX से X को हाई स्कूल और XI से XII को माध्यमिक चरण के अनुरूप माना जाता है।

डेटा और विधि- स्कूली शिक्षा के आंकड़े लोक शिक्षण संचालनालय, भोपाल से प्राप्त किये जाते हैं। सांख्यिकी निदेशालय, भोपाल और राजीव गांधी शिक्षा मिशन, भोपाल। इन आंकड़ों की गणना और अलग–अलग चर के लिए अलग–अलग श्रेणियों में तालिकाबद्ध किया गया है। कुछ मामलों को छोड़कर विभिन्न श्रेणियों के लिए आयु के अनुसार डेटा जिला स्तर पर उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा, सभी निजी स्कूलों के डेटा भी विभिन्न चर के लिए उपलब्ध नहीं हैं।

जबलपुर-कटनी जिले में शैक्षिक सुविधाओं की स्थिति- स्वतंत्रता के बाद मध्य

प्रदेश राज्य को दो महत्वपूर्ण शैक्षिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। (i) अतीत की विरासत के रूप में विरासत में मिली पांच अलग-अलग प्रणालियों के स्थान पर शिक्षा की एक सामान्य एकीकृत प्रणाली विकसित करना, और (ii) सभी क्षेत्रों में शिक्षा का बड़े पैमाने पर विस्तार और गुणात्मक सुधार लाना। बाद वाला कार्य तीन प्रमुख कारकों (जैन, 1994) के कारण और भी कठिन हो गया था। - (अ) बड़े वन क्षेत्रों और बिखरी हुई बस्तियों का अस्तित्व, (ब) राज्य का कम आर्थिक विकास, और (स) अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की बड़ी आबादी। उन प्रारंभिक बाधाओं के बावजूद, स्वतंत्रता के बाद की अवधि में शिक्षा के सभी स्तरों पर काफी विस्तार हुआ है।

मध्य प्रदेश में वर्ष 1956-57 में मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में 22,762 प्राथमिक विद्यालय, 1,604 माध्यमिक और 414 उच्च और उच्चतर माध्यमिक विद्यालय थे। विभिन्न योजनाओं की अवधि के दौरान, सरकार के निरंतर प्रयासों से, मध्य प्रदेश में 2011 में इन स्कूलों की संख्या बढ़कर 76296 प्राथमिक विद्यालय, 14160 माध्यमिक विद्यालय, 4325 हाई स्कूल और 4179 उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हो गई है। वर्तमान में इन स्कूलों में लगभग 10.5 मिलियन छात्र पढ़ रहे हैं, जिनमें लगभग 98.96 हजार स्कूलों में लगभग 529.6 हजार शिक्षक हैं।

राज्य में प्रत्येक 90 बच्चों पर एक प्राथमिक विद्यालय, 101 छात्रों पर एक माध्यमिक विद्यालय, प्रत्येक 329 छात्रों पर एक हाई स्कूल तथा 185 छात्रों पर एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय है। इसी तरह राज्य में प्रति एक लाख की आबादी पर 162 स्कूल हैं. इसके अलावा, प्रत्येक एक लाख की आबादी पर 126 प्राथमिक विद्यालय, 23 मध्य विद्यालय, 7 उच्च विद्यालय और 6.9 उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं। मध्य प्रदेश जैसे बड़े राज्य में यह संख्या बहुत कम है क्योंकि यहां प्रत्येक 4 किमी 2 के लिए एक प्राथमिक विद्यालय, 21.8 किमी 2 के लिए एक मध्य विद्यालय, 71.3 किमी 2 के लिए एक हाई स्कूल और 73.8 किमी 2 क्षेत्र के लिए एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय है (मेहता, 2005).

तालिका क्रमांक 01
जबलपुर-कटनी जिले में शैक्षिक सुविधाएँ 2011

क्र	शैक्षिक सुविधाएँ	प्राथमिक विद्यालय	माध्यमिक विद्यालय	उच्च माध्यमिक विद्यालय	उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
01	स्कूलों की संख्या	6296	4160	3325	2179
02	छात्रों का नामांकन संख्या	75409	2581	3520	7479
03	शिक्षकों की संख्या	3369	3248	5028	3211
04	प्रति हजार पर स्कूलों की संख्या	1234	23.44	716	692
05	कुल नामांकन में लड़कियों के नामांकन का प्रतिशत	47.30	44.41	36.38	36.54

Source- Annual Report of Department of School Education and District Report Card Vol. –I, Elementary Education in India. Arun C. Mehta, National Institutive of Educational Planning and D.P.I., M.P. Jabalpur, 2011.

तालिका क्रमांक 02
जबलपुर-कटनी : विकासखण्डवार स्कूलों की संख्या (वर्ष 2011)

क्र.	विकासखण्ड	विद्यालयों की संख्या	कुल विद्यालयों की संख्या	विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की संख्या	विद्यालय में शिक्षकों की संख्या
1	सिहोरा	377	163	85398	431
2	मझौली	375	155	32661	335
3	पाटन	363	158	71796	323
4	शहपुरा	376	137	62860	370
5	जबलपुर(बरगी)	480	271	211370	892
6	पनागर	386	179	60971	283
7	कुण्डम	388	105	50996	316
8	रीठी	384	167	51441	399
9	कटनी(मुडवारा)	449	238	69884	743
10	बड़वारा	377	132	67099	418
11	विजयराघोगढ़	371	167	59780	328
12	बहोरीबंद	331	130	78286	335
13	ढीमरखेड़ा	353	175	63815	363
जबलपुर-कटनी योग		5010	2177	966357	5536

स्रोत : जिला शिक्षा केन्द्र, जबलपुर-कटनी, 2011

तालिका क्रमांक 2 के अनुसार जबलपुर-कटनी जिले में वर्ष 2011 में प्रति एक लाख जनसंख्या पर 162 विद्यालय थे। जबलपुर-कटनी जिले में स्कूलों का विकासखण्डवार वितरण एक समान नहीं है। जबलपुर-कटनी जिले के 13 विकासखण्डों ऐसे हैं जहां प्रति एक लाख की आबादी पर 300 से ज्यादा स्कूल हैं. ग्यारह विकासखण्डों में प्रति लाख जनसंख्या पर 350 से अधिक स्कूल दर्ज किए गए हैं। ये विकासखण्ड है। जबलपुर (बरगी) (480), कटनी (मुडवारा) (449), कुण्डम (388),पनागर(386), रीठी (384), सिहोरा (377), बड़वारा (377), मझौली (375), विजयराघोगढ़ (371) और शहपुरा (376)। इन विकासखण्डों में से दो विकासखण्डों में प्रति लाख जनसंख्या पर 350 से कम स्कूल हैं। वे ढीमरखेड़ा (353), बहोरबंद (331) हैं। चूंकि, ये दो विकासखण्ड ज्यादातर आदिवासी जिले हैं जहां सरकार ने आदिवासी आबादी के लिए नए स्कूल खोलने के लिए विभिन्न सुविधाएं प्रदान करने के लिए विशिष्ट नीतियां लागू की हैं। परिणामस्वरूप, इन जिलों में साक्षरता दर में भी सुधार हुआ है। इन क्षेत्रों में सरकार द्वारा मुफ्त किताबें और स्टेशनरी, छात्रावास सुविधाएं, मुफ्त वर्दी आदि की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं।



इसके अन्तर्गत जबलपुर–कटनी जिले में साक्षरता की स्थिति एवं जबलपुर–कटनी जिले में शिक्षा की प्रवृत्ति, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों का नामांकन, अनुसूचित जाति, जनजाति एवं सभी श्रेणी के विद्यार्थियों के नामांकन की तुलना, विद्यालय भवनों की स्थिति, विद्यालयों में उपलब्ध आधारभूत सुविधाएँ, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों को उपलब्ध सुविधाऐं एवं विद्यालयों में विभिन्न स्तर पर किये गये व्ययों का वर्णन किया गया है।

जबलपुर-कटनी जिले में साक्षरता की स्थिति (2001 और 2011)- यदि साक्षरता दर पर दृष्टि डाले तो जबलपुर–कटनी जिले की साक्षरता दर में सुधार हुआ है जिसे तालिका 3 में दर्शाया गया है।

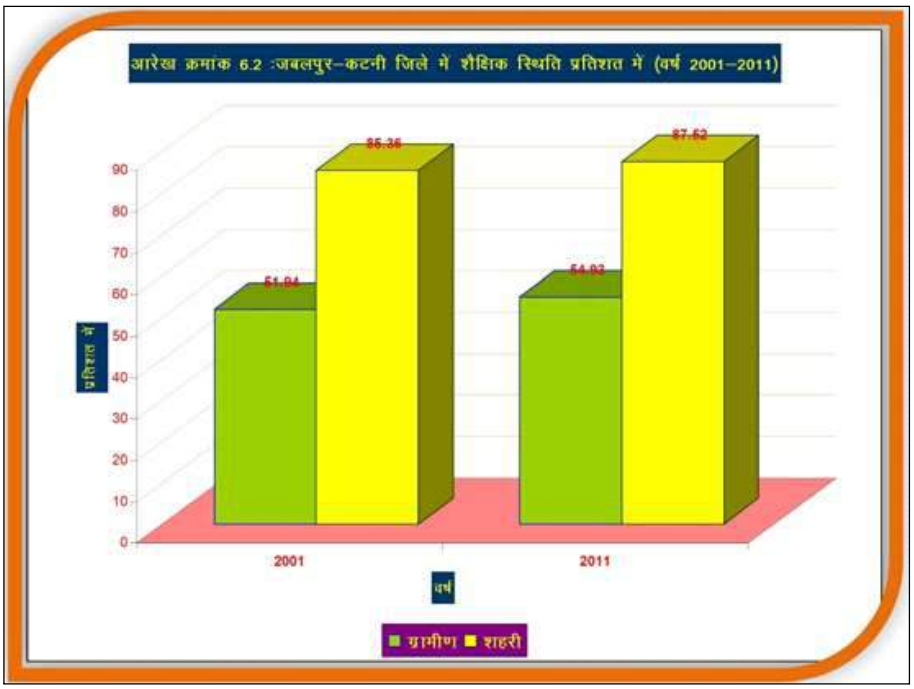
तालिका क्रमांक 03
जबलपुर-कटनी जिले में शैक्षिक स्थिति प्रतिशत में (वर्ष 2001-2011)

क्षेत्र	2001			2011		
	पुरूष	महिला	योग	पुरूष	महिला	योग
ग्रामीण	68.64	35.15	51.94	69.64	39.82	54.93
शहरी	92.64	77.33	85.36	93.36	81.24	87.52
योग	73.62	43.26	58.62	74.74	48.45	61.82

स्रोत : जनगणना प्रतिवेदन, 2001, मध्यप्रदेश जिला सांख्यिकी रूपरेखा, 2011

तालिका क्र 3 में वर्ष 2001 में कुल साक्षरता दर 58.62 प्रतिशत थी जो कि बढ़कर 2011 में 61.82 प्रतिशत हो गई है। एक मुख्य बात यह भी सामने आई है कि ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में शहरी क्षेत्रों में साक्षरता दर अधिक रही है जो कि 2001 में 85.36

प्रतिशत थी वो बढ़कर 2011 में 87.52 प्रतिशत हो गई है। इस प्रकार उपरोक्त तालिका 6. 3 से यह भी स्पष्ट होता है कि महिला साक्षरता दर में काफी सुधार हुआ है जहाँ 2001 में महिला साक्षरता दर 43.26 प्रतिशत थी वो बढ़कर 2011 में 48.45 प्रतिशत हो गई है जिससे यह स्पष्ट होता है कि महिला साक्षरता दर में 5 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई है।



जबलपुर–कटनी जिले में अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति की शैक्षिक स्थिति (2001 और 2011)– यदि अनुसूचित जाति एवं जनजाति की साक्षरता दर पर दृष्टि डालें तो जबलपुर–कटनी जिले की अनुसूचित जाति एवं जनजाति की साक्षरता दर में सुधार हुआ है जो निम्न तालिका 4 से स्पष्ट हैं :–

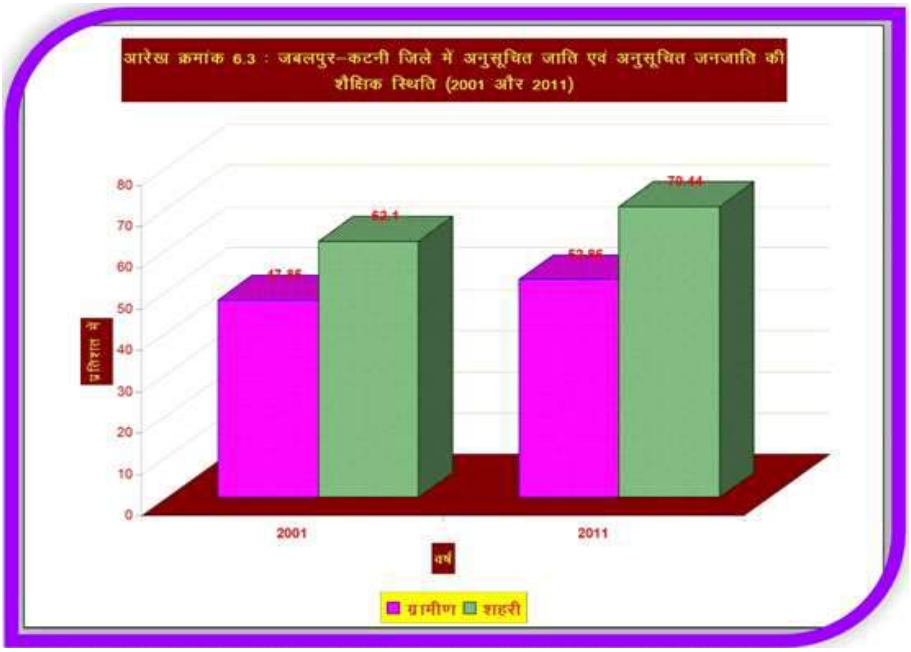
तालिका क्रमांक 4
जबलपुर-कटनी जिले में अनुसूचित जाति
एवं अनुसूचित जनजाति की शैक्षिक स्थिति (2001 और 2011)

क्षेत्र	2001			2011		
	पुरूष	महिला	योग	पुरूष	महिला	योग
ग्रामीण	61.73	33.40	47.85	65.10	39.99	52.86
शहरी	72.64	50.78	62.10	78.28	61.97	70.44
योग	65.15	38.72	52.27	69.77	47.63	59.03

स्त्रोत : जनगणना प्रतिवेदन, 2001, मध्यप्रदेश जिला सांख्यिकी रूपरेखा, 2011

उपरोक्त तालिका 6.4 से यह स्पष्ट होता है कि 2001 में अनुसूचित जाति की कुल साक्षरता दर 52.27 प्रतिशत थी जो बढ़कर 2011 में 59.03 प्रतिशत हो गई वही ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में साक्षरता दर अधिक रही है जो कि 2001 में 62.10

प्रतिशत थी वो वर्ष 2011 में बढ़कर 70.44 प्रतिशत हो गई। अत: तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं की साक्षरता दर में काफी सुधार हुआ है जहाँ वर्ष 2001 में अनुसूचित जाति की महिलाओं की कुल साक्षरता दर 38.72 प्रतिशत थी वो वर्ष 2011 में बढ़कर 47.63 प्रतिशत हो गई।



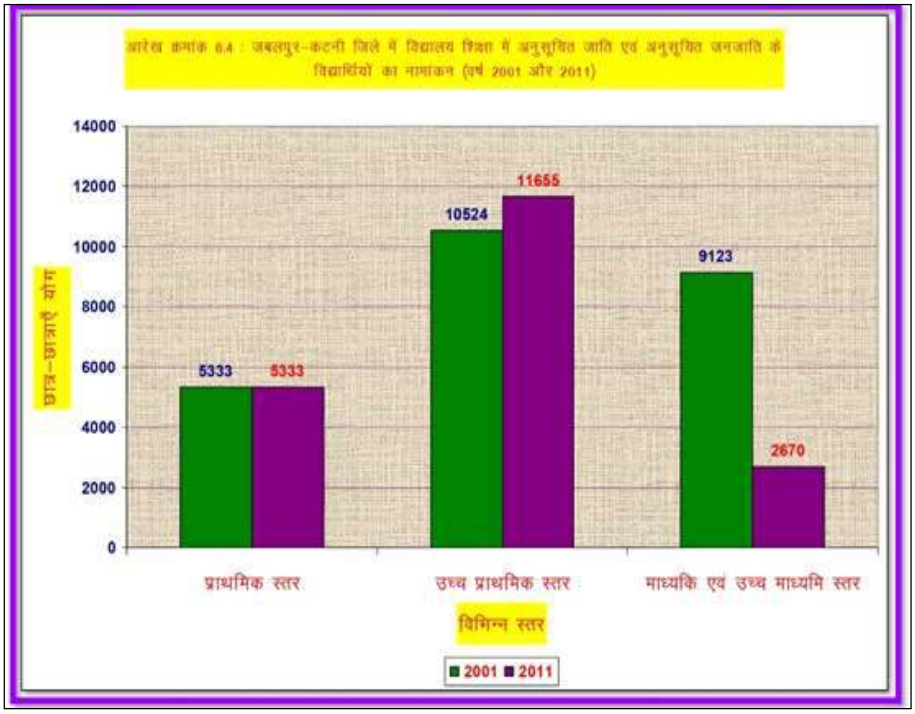
जबलपुर–कटनी जिले में अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का विद्यालय स्तर पर नामांकन– वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जबलपुर–कटनी जिले में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 188525 है लेकिन उनमें से केवल 19658 विद्यार्थियों का विद्यालय नामांकन देखने में आया है जो कि बहुत कम है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों का विद्यालय नामांकन तालिका 5 में स्पष्ट है –

तालिका क्र 05

जबलपुर-कटनी जिले में विद्यालय शिक्षा में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों का नामांकन (वर्ष 2001 और 2011)

विभिन्न स्तर	2001				2011			
	छात्र	छात्राएँ	योग	प्रति सौ छात्रों पर छात्राओं की संख्या	छात्र	छात्राएँ	योग	प्रति सौ छात्रों पर छात्राओं की संख्या
प्राथमिक स्तर	3653	1680	5333	46	3653	1680	5333	46
उच्च प्राथमिक स्तर	5682	5542	10524	98	5701	5954	11655	104
माध्यकि एवं उच्च माध्यमि स्तर	5094	4029	9123	79	1627	1043	2670	64
योग (ए.ग्प्)	14429	11251	24980	78	10981	8677	19658	79

स्त्रोत : कार्यालय जिला शिक्षा अधिकारी, जबलपुर, कटनी 2001–11



$$\text{प्रति सौ छात्रों पर छात्राओं की संख्या} = \frac{\text{छात्राओं की संख्या}}{\text{छात्रों की संख्या}} \times 100$$

तालिका 5 से स्पष्ट है कि वर्ष 2001 में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों का विद्यालय स्तर पर कुल नामांकन 24980 था जो कि घटकर 2011 में 19658 रह गया। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि दोनों ही वर्षों में (2001-11) में अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विद्यार्थियों का नामांकन प्राथमिक तथा माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर की तुलना में उच्च प्राथमिक स्तर पर अधिक है। एक मुख्य बात तालिका में यह भी सामने आयी है कि केवल उच्च प्राथमिक स्तर पर ही छात्राओं का नामांकन लगभग छात्रों के नामांकन के बराबर है। 2001 में लड़कियों की संख्या प्रति 100 लड़कों की तुलना में 98 थी वो बढ़कर 2011 में 104 हो गई।

निष्कर्ष- उपरोक्त विश्लेषण से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का नामांकन आज भी सभी तहसील में सभी श्रेणी के विद्यार्थियों के संख्या तुलना में बहुत कम है। यदि पूरे विश्लेषण का गहन अध्ययन करें तो यह देखने को मिलता है कि समय के साथ अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का संख्या बढ़ी है जिसका मुख्य कारण विद्यालयों में प्राप्त आधारभूत सुविधाओं का होना है। यही बात बहुगुणी प्रतीपगमन विश्लेषण (Multiple Regression Analysis) से भी सिद्ध होती है। अत: अगर अनुसूचित जाति के सामाजिक-आर्थिक स्तर को बढ़ाना है तो उनको शिक्षा के प्रति सभी विद्यालय स्तर पर बढ़ाना अति आवश्यक है। निष्कर्षत: अनुसूचित जनजातियों के

सामाजिक आर्थिक विकास पर जबलपुर–कटनी जिले में देश एवं प्रदेश के अन्य जिलों की भांति प्रथम पंचवर्षीय योजना से अब तक (1 अप्रैल 1951 से 1 अप्रैल 2016) बहुत अधिक धन का निवेश किया गया है किन्तु यह निवेश (वित्तीय अर्थो में) केवल पिछड़े वर्गो के कल्याण क्षेत्र में ही देखा जा सकता है, यह क्षेत्र वस्तुत: उन सभी व्यवस्थाओं का अनुपूरक है जो सामान्य क्षेत्र के अन्तर्गत जनजातियों या अनुसूचित क्षेत्रों के विकास के लिए उपलब्ध है। इसमें सन्देह नहीं है कि पिछड़े वर्गो के कल्याण के अन्तर्गत अधिक खर्च अनुसूचित जनजातियों के विकास एवं कल्याण के लिए किया गया है, किन्तु योजना के कुल विस्तार की तुलना में अधिक नहीं कहा जा सकता है।

अत: जबलपुर–कटनी जिले में अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए आयुक्त, आदिवासी विकास एवं संचालक, अनुसूचित जनजाति विकास विभाग द्वारा अनेक कल्याण कार्य योजनाएं चलाई जा रही है। उपरोक्त कल्याणकारी कार्यक्रम एवं योजनाओं के क्रियान्वयन के बाद भी इन जनजातियों में निर्धनता, अशिक्षा, अन्धविश्वास, सामाजिक एवं धार्मिक परम्पराएं, जागरुकता का अभाव आदि कारणों से सरकारी योजनाओं एवं विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों का भरपूर लाभ नहीं मिल सका है। ये आदिवासी तमाम सरकारी प्रयास के बाद भी विकास की मुख्य धारा से वंचित हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कवि उपेन्द्र और सिंह, राजेन्द्र, 2010, बस्तर के दण्डामी माडिया जनजाति में शिक्षा सम्बन्धी समस्या एवं समाधान : एक क्षेत्रीय अध्ययन, वन्यजाति त्रैमासिक पत्रिका, खण्ड – LVIII अंक–3, जुलाई 2010
2. कुमार सतीश, "शिक्षा का सफर", 1949–1990 : बोर्ड शिक्षण पत्रिका, अजमेर, खण्ड–39, अंक 1, पृ. 5–14
3. चौहान, डॉ. वी.एस. और लखेड़ा डॉ. एस. के., 2007, भोटिया जनजाति की शैक्षिक एवं व्यावसायिक आकांक्षाए, वन्यजाति त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष–55, अंक–2, अप्रैल, 2007
4. डॉ. साईश्वरी कोल, 2011, अनुसूचित जाति/जनजाति छात्रों के शैक्षणिक विकास पर मध्य प्रदेश शासन द्वारा संचालित मेट्रिकोत्तर छात्रावासों का प्रभाव, वन्यजाति, त्रैमासिक पत्रिका, खण्ड–59, अंक–3, जुलाई 2011
5. Purkait, B.R. (1987): New Education in India, Ambala: The Associated Publications.
6. Jain, Kiran Prabha (1981): A study of Regional Imbalance in Education in India, Ph.D. Thesis, Varanasi.
7. वी.एन., दिनेश, 2014, झारखण्ड की आदिम जनजातियों में उच्च शिक्षा की स्थिति, समस्याएं और प्रत्याक्षा, वन्य जाति त्रैमासिक पत्रिका, खण्ड–62, अंक–2, अप्रेल, 2014
8. जियालाल राठौर, (2022) : शहडोल संभाग में साक्षरता एवं शिक्षा के आयाम : एक भौगोलिक विश्लेषण, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.), अप्रकाशित पी. एच.डी, रीवा (म.प्र.), पृ. 217–229
9. जिला सांख्यिकीय पुस्तिका, जबलपुर, कटनी, 2001, 2011
10. संचालक आदिम जाति क्षेत्रीय विकास विभाग की योजनाएँ, भोपाल म.प्र.
11. जिला सांख्यिकीय पुस्तिका, जबलपुर, कटनी, 2001, 2011
12. परियोजना प्रशासक, एकीकृत आदिवासी विकास परियोजनाएँ, भोपाल म.प्र.

13. Glass, G.V. Cohen, L.S. and others (1982): School class Size, Research and Policy, London: sage Publications.
14. Buch, M.B. (1974): A survey of Research in education, Centre of Advanced Study in Education, M.S, Univ. Baroda.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

'छिन्नमस्ता' और 'शेष कादम्बरी' उपन्यासों की नायिकाओं के मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन

•अनिता प्रजापत

सारांश-'छिन्नमस्ता' की प्रिया और 'शेष कादम्बरी' की रूबी गुप्ता के जीवन को गढ़ने वाली परिस्थितियाँ और सम्बन्ध उन्हें अनेक स्थानों पर सामान्य धरातल प्रदान करते हैं। भौतिक सम्पन्नता के बावजूद दुख, पीड़ा, विरोधाभास दोनों को झेलना पड़ता है। रिश्तों की मधुरता व अपनेपन से दोनों वंचित रहती हैं। दोनों का वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं रहता और अन्ततः दोनों की संतानें भी उनसे दूर ही रहती है। फर्क सिर्फ इतना है कि रूबी गुप्ता बड़े से बड़े संघर्ष को अपने अंदर भर लेती है, समेट लेती है, और उसका दंश अकेले ही सहती रहती है। दूसरी ओर प्रिया बचपन में भले ही मुँह न खोल पाई हो, लेकिन उत्तरोत्तर उसका संघर्ष मुखर होता जाता है और उसमें आत्मविश्वास बढ़ता है। रूबी गुप्ता आत्मविश्वास और नई ऊर्जा हासिल करने में असफल रहती है।

मुख्य शब्द- जीवन, संबंध, आत्मविश्वास, संघर्ष, बचपन, विवाह, अस्तित्व।

नारी विमर्श की प्रखर चिंतक और उपन्यासकार प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता' उपन्यास आधुनिक नारी की त्रासदी और उसके संकल्प का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। ''सम्पन्न मारवाड़ी समाज की पृष्ठभूमि में रची गई इस औपन्यासिक कृति की नायिका प्रिया परत दर परत स्त्री जीवन के उन पक्षों को उघाड़ती चलती है जिनको पुरुष समाज औरत की स्वाभाविक नियति मानता रहा है और इस प्रक्रिया में वह हमें स्त्री की युगों-युगों से संचित पीड़ा से रूबरू कराती है।''[1] 'छिन्नमस्ता' एक ऐसी स्त्री की कथा है जो एक रूढ़ समाज से टकराते और अपने को भावात्मक स्तर पर लहूलुहान करते हुए अपने अस्तित्व को नये सिरे से परिभाषित करती है।

हिन्दी उपन्यास जगत की विशिष्ट लेखिका अलका सरावगी का 'शेष कादंबरी' उपन्यास ''एक सदी से दूसरी सदी तक के समय और स्मृतियों के इतिहास के तनाव से नई उत्सुकता जगाता है''[2] तथा रूबी गुप्ता अथवा रूबी दी के माध्यम से स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं, मनोजगत से परिचित कराता है। अपनी किशोरावस्था में ही 'आइडेंडिटी क्राइसिस' की गिरफ्त में आ चुकी रूबी दी जीवन भर एक मानसिक उद्वेलन झेलते हुए भी अपनी संस्था परामर्श के माध्यम से पीड़ित, शोषित, असहाय स्त्रियों का सहारा बनने का प्रयास

• सह आचार्य हिन्दी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय, महाविद्यालय, श्रीगंगानगर

करती है।

'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका प्रिया तथा 'शेष कादंबरी' उपन्यास की नायिका रूबी गुप्ता का व्यक्तित्व एक दूसरे से कुछ अलग है, तो कुछ जगह पर एक जैसा प्रतीत होता है। दोनों को बनाने वाला परिवेश अलग है। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया का जन्म तथा पालन-पोषण सम्पन्न मारवाड़ी परिवार, जो कलकत्ता में स्थापित है, में हुआ है। "बचपन से ही भेदभाव और उपेक्षा की शिकार साधारण शक्ल सूरत और सामान्य बुद्धि की प्रिया परिवार की सुरक्षित चौहद्दी के भीतर ही यौन शोषण की शिकार भी होती है और तदुपरान्त प्रेम और भावनात्मक सुरक्षा की तलाश में उन तमाम आघातों से दो-चार होती है, जिनसे संभवत: हर स्त्री को गुजरना होता है।"[3] छह भाई-बहनों में सबसे उपेक्षित प्रिया अपनी जन्मदाता माँ के प्यार-स्नेह तथा आत्मीयता से भी वंचित रही। प्रिया कहती है- "मुझे कभी अम्मा की गोद की याद भी नहीं आती है। न मालूम क्यों शुरू से ही अम्मा को मुझसे चिढ़ थी या फिर यह घोर निराशा की एक प्रतिक्रिया थी जिसे वे मुझ पर आरोपित कर रही थीं। मुझे दाई माँ ने ही पाला-पोसा।"[4] प्रिया की अम्मा की खीझ इस प्रकार निकलती है- "क्या करूँ, मुझे नहीं सुहाती यह, जबसे जनमी है, मेरा तो शरीर ही टूट गया। खाट पकड़ ली मैंने।... ले जाओ, इसे ले जाओ... पटको इसकी दाई माँ के पास...। भाटा पत्थर तो है, मुँह में बोली तो है नहीं। जिसका मन हो मार जाता है, जिसका मन हो चोटी खींच लेता है।"[5] अनाथ और असहाय बचपन के बावजूद प्रिया अपनी जिद और लगन से अपनी पढ़ाई पूरी करती है। प्रेसीडेन्सी कॉलेज में पढ़ने वाली वह अकेली मारवाड़ी लड़की थी। बी.ए. के बाद उसने लॉ भी किया। उत्पीड़न और संघर्ष के साथ जीती प्रिया को विवाह के बाद अपने पति से भी अपनत्व व सम्मान की प्राप्ति नहीं होती है। अपनी सास व पति के बारे में प्रिया बताती है- "माँ-बेटे में एक अजीब-सी समानता है। वही संग्रही वृत्ति और भावनात्मक लगाव की कमी।"[6] ससुराल में अपनी स्थिति के बारे में प्रिया कहती है "नरेन्द्र के पीछे-पीछे सासूजी रहतीं। अपने सुपुत्र की वे साँस-साँस गिनती रहतीं। मुझसे भी उन्हें यही आशा थी। मैंने किया भी। काफी वर्षों तक करती रही... और एक दिन लगा... मैं नरेन्द्र की पत्नी हूँ... सेक्रेटरी और नौकरानी नहीं।"[7] अपने पति नरेन्द्र के बारे में, आपसी संबंध के बारे में प्रिया इस प्रकार बताती है- "नरेन्द्र में मानवीय संवेदना नाम की कोई चीज नहीं थी। वह बस पैसा, अच्छा खाना और सेक्स समझता था।"[8] "शादी के पाँच साल पूरे हो गए थे... और हम लोगों के सम्बन्ध चटकने लगे थे। खरोंच तो पहले ही लग चुकी थी। क्या सुहागरात के दिन... या हनीमून के दौरान... नहीं, शायद संजू होने के बाद। याद नहीं आता, कुछ न कुछ तो रोज घटता ही रहता... जो हमें एक-दूसरे से दूर फेंकता चला जाता।"[9] प्रिया और नरेन्द्र का स्वभाव, रुचि एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न थे और इसीलिए दोनों एक-दूसरे को सह नहीं पाते थे। अपने खालीपन को भरने के लिए प्रिया नरेन्द्र के साथ ऑफिस जाना शुरू करती है, व्यापार की पूरी संरचना समझने की कोशिश करती है, लेकिन नरेन्द्र के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आता है। किसी न किसी बहाने से प्रिया को ताने देना, नीचा दिखाना, लड़ाई-झगड़ा नरेन्द्र की तरफ से लगातार चलता रहता है और एक दिन तंग आकर प्रिया घर छोड़कर, अपने पुत्र से भी मोह त्याग कर, अलग रहने का निर्णय कर लेती है। नरेन्द्र से अलग अपना स्वतंत्र

व्यवसाय स्थापित करती है, विदेशों में उसका व्यवसाय फैलता है, उसके मित्र जूडी, फिलिप, नीना इस सफर में उसके सहायक बनते हैं। उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, लेकिन अन्ततः वह अपने को एक सफल उद्यमी के रूप में स्थापित करने में कामयाब हो जाती है।

'शेष कादंबरी' उपन्यास की नायिका रूबी गुप्ता का बचपन कलकत्ता के सम्पन्न परिवार में, आलीशान घर में बीता था। उनके परिवार को सतपीढ़िया शाह कहा जाता था। सतपीढ़िया शाह- सात पीढ़ियों से राजसी ठाठ में जीने वाले। सम्पन्नता, सुख-वैभव में पलने के बावजूद रूबी गुप्ता हमेशा एक अलग तरह का अभाव, दंश झेलती रही। जिन माता-पिता ने उसे पाला, वे उसके जन्मदाता नहीं थे। जिन्हें वह मामा-मामी कहती थी, वास्तव में वह उनकी संतान थी। मामी के कई लड़कियाँ थी, तो रूबी को दुधमुँही अवस्था में ही मामा ने अपनी बहन को दे दिया था। जब रूबी गुप्ता ग्यारह वर्ष की थी, तब वे एक बार कानपुर में मामा-मामी के पास गए हुए थे। उसी दौरान माँ और मामी के बीच कुछ कहासुनी हुई और रूबी के सामने यह राज खुला कि वह वास्तव में मामी की लड़की है। रूबी ने इस बारे में कभी किसी से चर्चा नहीं की लेकिन मन ही मन कुछ बनता-बिगड़ता गया। रूबी सोचती है- "क्या सचमुच माँ उसे इसीलिए प्यार नहीं करतीं कि वह सचमुच में उसकी माँ नहीं है, और पिताजी? पिताजी भी उसके पिता नहीं हैं, लेकिन वे तो प्यार करते हैं। या हो सकता है कि वैसे ही प्यार करते हों, जैसे वे अपनी रॉल्स-रॉयस या अपने रेस के घोड़ों से करते हैं। क्या सचमुच माँ जब-तब गुस्से में आकर रूबी को इसीलिए मार देती हैं कि उन्होंने रूबी को पैदा नहीं किया? वह माँ को बहुत तंग करती है... नहीं, उसका दुनिया में कोई नहीं है। वह एकदम अकेली है। रूबी गुप्ता की किसी को कोई जरूरत नहीं है। उसे कोई अपने पास नहीं रखना चाहता। सब उससे छुटकारा पाना चाहते हैं।"[10] इस घटना के बाद रूबी गुप्ता अपने आपको बेहद अकेला महसूस करने लगी। माँ से कभी उसने बच्चों वाली जिद नहीं की। पिता से फिर भी अपने मन की बात कर लेती, लेकिन ताउम्र वह कभी विश्वास नहीं कर सकीं कि किसी को सचमुच उनकी जरूरत हो सकती है। शादी के बाद भी रूबी गुप्ता के जीवन में प्रेम व विश्वास की गहराई का अभाव ही रहा। "कोई पूरी तरह से उनका कभी होगा, इस स्वप्न ने बचपन से जवानी की दहलीज पर कदम रखती रूबी को कितनी सांत्वना दी थी।... वह प्रेम रूबी के जीवन में सचमुच आया, पर वहाँ भी अन्त में बाकी चीजों की जरूरत रूबी से ज्यादा बड़ी सिद्ध हो गई,"[11] रूबी के पति सुधीर ने सारा जीवन लोगों के लिए घर, फैक्ट्री और पुल बनाने के अपने पेशे में झोंके रखा। अपने काम से अधिक बढ़कर उनके लिए कभी कुछ नहीं हुआ। सुधीर के परिवार वालों का व्यवहार भी रूबी के प्रति अच्छा नहीं था। रोजमर्रा की जरूरत की वस्तुओं का उसके और उसकी बेटियों के लिए अभाव रहता। रूबी कहती है- "पिताजी से कहकर बीच-बीच में चेक काटकर रूपए उठा लेती और जीवन चलता रहता। साथ ही चलती रहतीं सतपीढ़िया शाह के ऊपर घुमा-फिराकर इशारे में कही गई व्यंग्य भरी बातें।"[12]

'छिन्नमस्ता' की प्रिया और 'शेष कादंबरी' की रूबी गुप्ता दोनों जिस परिवेश में पली हैं, वहाँ भौतिक सुख-सुविधाओं का अभाव नहीं है, लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर

अभाव है। प्रिया के अनेक भाई-बहन हैं, माँ बीमार रहती है और उनके मन में प्रिया के प्रति ममत्व का अभाव है, इसीलिए माँ व भाई-बहनों द्वारा उसके साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। रूबी गुप्ता के परिवेश में भौतिक सुख-सुविधाओं की कोई कमी नहीं, लेकिन वह अकेली संतान है, जिसके कारण पिता के अलावा वह किसी से हँस-बोल नहीं सकती, मन की बात नहीं कर सकती। फिर जब उसे पता चलता है कि जिन्हें वह माता-पिता कहती है, वे उसके जन्मदाता नहीं है, तो वह बिल्कुल अकेली हो जाती है। उसे विश्वास ही नहीं रहता कि कोई पूरी तरह उसका है। इन परिवेशों और परिस्थितियों के परिणामस्वरूप प्रिया और रूबी- दोनों का ही मनोजगत एक भिन्न प्रकार का बन जाता है। दोनों को अपनी माँ से वह लगाव, आत्मीयता, ममत्व, हृदय की गहराई प्राप्त नहीं होती जो साधारणत: एक बेटी को माँ से होती है। शायद इसी का परिणाम होता है कि आगे चलकर वे दोनों ही अच्छी माँ सिद्ध नहीं हो पाती। उनकी संतानों को भी उनसे ऐसा जुड़ाव नहीं रह जाता।

जीवन में सबके साथ होते हुए भी जो एक अकेलापन, उपेक्षित व्यवहार प्रिया और रूबी के साथ होता है, उसके परिणामस्वरूप वे दोनों हीं- रूबी अपेक्षाकृत अधिक- एक अलग प्रकार की मानसिक बीमारी का शिकार हो जाती है, जिसके चलते किसी पर विश्वास न करना, किसी पर हक न जताना, किसी से जिद न करना, खुलकर अपने मन की बात न कहना, किसी से कुछ माँग न पाना जैसी स्थितियाँ जब-तब दोनों के जीवन में आती रहती है। रूबी गुप्ता के पिता ने एक बार रूबी से किसी बात पर कहा कि ऐसे नहीं बोलते। क्या तुम भी इतनी ऊँची आवाज में बोलोगी बेटी? उस दिन के बाद रूबी ने कभी किसी से ऊँची आवाज में बात नहीं की। "उस दिन के बाद रूबी दी ने कभी किसी से बात करते समय अपनी आवाज ऊँची नहीं की। जिस पिता का रक्त उनकी नसों में नहीं बह रहा था, उसे पिता इसी तरह सिद्ध किया जा सकता था।"[13] किसी बात पर चिड़चिड़ाने पर भी उनकी आदत किसी को जोर से बोलने या डाँटने की नहीं थी, वे इस तरह उखड़ जाने पर एकदम अन्दर ही अन्दर गुम हो जाती। "जिस दुनिया ने बचपन से ही उनको शब्दों के अनगिनत डंक चुभोए थे, उनका तिरस्कार करने का यही तरीका रूबी दी को मालूम था कि वे अपने नजदीक की दुनिया को वैसी न बनने दे। वे अन्दर से उखड़ने पर एक ऐसा घना सन्नाटा ओढ़ लेतीं, जिसे भेदकर कोई उन तक पहुँच नहीं पाता।"[14] रूबी को जिस रात पता चला कि जिन्हें वह माँ-पिता कहती है, वे उसको पालने वाले हैं, उसके जन्मदाता नहीं है। उस रात से उसके हृदय में यह बात बैठ गई कि उसका दुनिया में कोई नहीं है। वह एकदम अकेली है। "उस रात के बाद वे कभी विश्वास नहीं कर सकी कि किसी को सचमुच उनकी जरूरत हो सकती है। बाकी जिन्दगी ने भी तो उन्हें यह विश्वास लौटाने के बजाय उनकी हर बची-खुची उम्मीद को हर बार रौंद डाला था।"[15]

रूबी गुप्ता पूरी उम्र अपने मन की बात, तकलीफ किसी से नहीं कह पाई। जिसके कारण उनकी शारीरिक, मानसिक समस्याएँ बढ़ती गयी। मनोचिकित्सक डॉ. डेविस को रूबी बताती है, "बचपन में जिस माँ से कुछ न माँगने का निर्णय कर लिया हो, उस माँ से कैसे अपने कष्ट कहती है?"[16] पति सुधीर से शिकायत करने की बात पर वह कहती है- "शिकायत? क्या शिकायत करे वह सुधीर से? जो जीते-जी अपनी पत्नी के हक के लिए, अपने बच्चों के हक के लिए खड़ा नहीं हो सका, उससे अब शिकायत करने

से फायदा?''[17] 'रेकी' विधि द्वारा रूबी दी के घुटनों का इलाज करने वाली मिसेज कृष्णमूर्ति ने इलाज के दौरान रूबी से कहा कि आँखें मूँदकर याद कीजिए और बताइए कि क्या आपके जीवन में कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें आप अब तक माफ नहीं कर पाई है, जो सामने आ रहे हैं उनसे अपने मन-ही-मन सब कुछ कह डालिए। तब रूबी गुप्ता अपनी माँ से बहुत बातें कहती है। वह कहती है- ''माँ तुमने मुझे पूरे समाज-परिवार के सामने अपनाने की कोई रस्म अदा नहीं की। तुम्हें पता है, पिताजी की वसीयत में इसीलिए मेरे लिए 'पाली हुई लड़की' जैसे अपमानजनक शब्दों का इस्तेमाल वकील ने करवाया। माँ तुमने मुझे गोद नहीं लिया। क्यों?... माँ, तुम्हें इस बात का अनुमान भी है कि तुम्हारे अपने ससुराल के परिवार ने किस कदर मुझे उपेक्षित और अपमानित किया? तुमने मुझे 'गोद' लेकर अपनी लड़की घोषित करने की रस्म नहीं अदा की थी। वे लोग कैसे समझते कि तुमने मुझे बेटी मान रखा है या दया करके पाल रही हो?... मेरी शादी के बाद मेरे घरवालों के सामने तुम्हारे खानदान की इस अस्वीकृति ने मेरी कितनी नाक कटवाई, तुम्हें कोई अहसास है।''[18]

ऐसे अनेक प्रश्न, अनकही शिकायतें बचपन और जवानी में रूबी गुप्ता के मन में जम गई थी, वे गाँठें बनकर पूरी उम्र उन्हें शारीरिक-मानसिक परे''ानियाँ देती रही। यहाँ तक कि बुढ़ापे में अपनी नातिन कादम्बरी के बोलने पर, कोई सवाल पारिवारिक मसलों पर करने पर, रूबी दी कहीं खो जाती, मौन हो जाती, लेकिन स्पष्टता से, आत्मविश्वास से, खुलकर जवाब नहीं देती।

रूबी दी जैसी ही स्थिति 'छिन्नमस्ता' की प्रिया की दिखाई देती है। माँ के ममत्वहीन व्यवहार, भाई द्वारा दुर्व्यवहार, सभी का उपेक्षित व्यवहार, सास एवं पति द्वारा संवेदनहीन व्यवहार आदि के कारण प्रिया पीहर एवं ससुराल दोनों जगह अपने को असहज, लगावहीन स्थिति में पाती है। बचपन में दाई माँ के अलावा अपनी पीड़ा वह किसी को नहीं बता पाती। कोई भी परेशान करता तो दाई माँ की गोद में घुसकर रो लेती। शादी के बाद पति की मशीनी जिन्दगी, भावशून्य व्यवहार, प्रताड़ना उसे एकदम अकेला कर देते हैं। प्रिया कहती है- ''कब और कौन-सी घटना ने हमें अलग-अलग दिशाओं में ढकेलना शुरू कर दिया, याद नहीं आता। बस मुझे लगता मानो धमाक-धमाक कोई हथौड़ों से मेरे अस्तित्व को गिट्टियों में तोड़ रहा है। उन दिनों की घुटन और तकलीफ के बारे में मैं आज सोच भी नहीं पाती।''[19] अपनी माँ के व्यवहार के बारे में वह कहती है- ''मुझे कभी अम्मा की गोद की याद भी नहीं आती है। न मालूम क्यों शुरू से ही अम्मा को मुझसे चिढ़ थी या फिर यह घोर निराशा की एक प्रतिक्रिया थी, जिसे वे मुझ पर आरोपित कर रही थीं। मुझे दाई माँ ने ही पाला-पोसा।''[20] बीमार अवस्था में अपने अतीत में झांककर देखते हुए प्रिया सोचती है- ''मैं सोच रही हूँ। सोचती जा रही हूँ। मेरे चारों ओर रात का कुहासा और घना हो गया है। यह दर्द? मुझे पता है, मेरी हड्डियों के भीतर तक धँसे इस दर्द का, पर इसका कोई इलाज नहीं। मैं याद करने की चेष्टा कर रही हूँ पर बार-बार कोई अदृश्य वहशी पंजा मेरे मुँह को दबोच लेता है। मैं दर्द से बिलबिला उठती हूँ। नहीं, मैं चुप नहीं रहूँगी। मैं कहना चाहती हूँ... इससे, उससे... सबसे। अपनी माँ के लिए दुखी होना, उनकी याद आना... पर इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं उनसे प्यार करती

हूँ। उन्होंने कभी मुझे प्यार नहीं किया, कभी गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच।''[21]

प्रिया और रूबी गुप्ता दोनों का बचपन और वैवाहिक जीवन रिश्तों की मधुरता, गर्माहट, समर्पण से अछूता ही रहा। रूबी गुप्ता ने इन सभी असंतुलनों को अपने ऊपर इतना हावी होने दिया कि इन सबसे इतर न तो वह कुछ सोच पाई, न नए रिश्ते बना पाई। दूसरी ओर प्रिया परिस्थितियों को अपने ऊपर हावी नहीं होने देती, वह व्यवसाय प्रारंभ कर, उसे अपना सहारा बनाकर आत्मविश्वास प्राप्त करती है। वह कहती है, ''मैंने दुख झेला है। पीड़ा और त्रासदी में झुलसी हूँ। जिस दिन मैंने त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया, उसी दिन, उस स्वीकृति के बाद, मैंने खुद को एक बड़ी गैर-जरूरी लड़ाई से बचा लिया। सारे जुल्मों के सामने... सलीब पर लटकते मैंने पाया कि मैं अब पूरी तरह जिन्दगी की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हूँ।''[22] आगे वह कहती है, ''परिस्थितियों का प्रभाव मुझ पर पड़ा और वापस मैंने अपनी जिन्दगी की जरूरत के अनुसार नई परिस्थितियाँ गढ़ लीं।... जिन्दगी, कम से कम मेरी जिन्दगी विरोधाभासों का बंडल रही है। उलझे हुए धागे, पड़ी हुई गाँठें, जानती हूँ सुलझा नहीं पाऊँगी, पर इनके साथ जीना तो मैंने सीख लिया है। और यह समझ ही मेरी जिन्दगी के प्रति लगाव को जिन्दा रखती है।''[23] प्रिया अपने परिवार, पति से अलग अपनी जिन्दगी को नई दिशा, नई गति देती है, नए संबंध स्थापित करती है। सौतेली सास-ननद से मिलना-जुलना शुरू करती है, सुख-दुख साझा करती है। जूडी और फिलिप से अपने जीने का नया ढंग बताते हुए कहती है- ''ज्यों-ज्यों मैं अपने काम में स्थापित होती गई, त्यों-त्यों प्यार की जरूरत, प्यार के माध्यम से स्वयं को किसी भी पुरूष की नजर में स्थापित करने की चेष्टा और चाहत भी खत्म होती गई।... मेरे स्व का घेरा वृहद् से वृहत्तर की ओर अग्रसर हो रहा है। नहीं, मैं दुनिया में असुरक्षित नहीं। मेरे पास मेरा व्यवसाय है। इस व्यवसाय के माध्यम से मैं नित्य नए लोगों से मिल रही हूँ।''[24]

निष्कर्षत: 'छिन्नमस्ता' की प्रिया और 'शेष कादम्बरी' की रूबी गुप्ता के जीवन, चरित्र का अध्ययन करने पर स्पष्ट है कि रूबी गुप्ता सारी समस्याओं को अपने भीतर उतार लेती हैं, उनका सारा संघर्ष भीतर-भीतर ही चलता है। लगातार वे अतीत की घटनाओं के बारे में, रिश्तों के बारे में, अभावों के बारे में सोचती रहती है और एक प्रकार से स्वयं को सजा देती रहती है। उनकी ऊर्जा क्षीण होती रहती है। किसी से इतना अपनापन नहीं रख पाती कि अपना मन खोल सके। दूसरी ओर प्रिया का संघर्ष बाहर और भीतर दोनों स्तरों पर चलता है। फलस्वरूप बाहरी संघर्ष से उसके जीवन का विकास होता है, उसे नई दिशा मिलती है। वह नए रिश्ते गढ़ती है। अपना व्यवसाय स्थापित कर आत्मविश्वास और नई ऊर्जा प्राप्त करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. प्रभा खेतान, सं. 2018, छिन्नमस्ता, आवरण पृष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अलका सरावगी, सं. 2016 शेष कादम्बरी, आवरण पृष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. प्रभा खेतान, सं. 2018, छिन्नमस्ता, आवरण पृष्ठ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. प्रभा खेतना, सं. 2018, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 24
5. वही, पृष्ठ 25
6. वही, पृष्ठ 116
7. वही, पृष्ठ 120
8. वही, पृष्ठ 126
9. वही, पृष्ठ 130
10. अलका सरावगी, सं. 2016, शेष कादम्बरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 30
11. वही, पृष्ठ 31
12. वही, पृष्ठ 87
13. वही, पृष्ठ 17
14. वही, पृष्ठ 15
15. वही, पृष्ठ 31
16. वही, पृष्ठ 77
17. वही, पृष्ठ 87
18. वही, पृष्ठ 83
19. प्रभा खेतान, सं. 2018, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ133
20. वही, पृष्ठ 24
21. वही, पृष्ठ 31
22. वही, पृष्ठ 09
23. वही, पृष्ठ 21
24. वही, पृष्ठ 183

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव: हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद

• बिरदी चंद जाट

सारांश- भारतीय सिनेमा और साहित्य दोनों ही विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक एवं कलात्मक विविधता को संवादित करते हैं। 'सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव' विषय के तहत, हम यहाँ विचार प्रस्तुत करते हैं कि कैसे हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा में साहित्य का अनुभव संवाद द्वारा किया जाता है। हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा दोनों ही रचनात्मक शैलियों के माध्यम से समाज के माध्यम से आगे बढ़ते हैं। बॉलीवुड सिनेमा में पटकथाएँ आमतौर पर हिंदी साहित्य की कहानियों, कविताओं और उपन्यासों से प्रेरित होती हैं। इसके अलावा, कई बार साहित्यिक रचनाओं को सिनेमा रूप में उतारा जाता है जिससे उनका संदेश और भावनाओं को जनता तक पहुंचाया जा सकता है। यहाँ एक बड़ा उदाहरण है 'प्रेम और प्रेरणा' जैसे फिल्मों में जो मानवीय भावनाओं और संघर्षों को उजागर करती हैं। इस प्रकार, हिंदी साहित्य का अनुभव सिनेमा की पटकथाओं में एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह विभिन्न समाजिक, आध्यात्मिक और मानवीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करता है और उन्हें समूह संघर्ष और संघर्षों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इस प्रकार, हिंदी साहित्य, सिनेमा के लिए एक स्रोत के रूप में कार्य करता है जो समाज के अभिवृद्धि और परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

मुख्य शब्द- साहित्य, अनुभव, बॉलीवुड, संवादक, समानता, प्रेरणा, चित्रण

हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा दोनों भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं के प्रमुख अंग हैं, जो अपनी कथाओं, विविधता और भावनाओं के माध्यम से जनसाधारण को प्रभावित करते हैं। सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव एक महत्वपूर्ण अंग है, जो हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद का निर्माण करता है। हिंदी साहित्य से लेकर, सिनेमा पटकथाओं को अधिकतम साहित्यिक गुणधर्म प्रदान किए जाते हैं। साहित्य के प्रेरणास्त्रोत से प्रेरित पटकथा लेखक उत्कृष्ट कहानियों और विचारों को विकसित करते हैं, जिन्हें बॉलीवुड के बड़े पर्दे पर प्रस्तुत किया जाता है। सिनेमा के माध्यम से, साहित्य के अनेक प्रेरणास्त्रोतों को दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है।

• शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजकीय डूंगर कॉलेज बीकानेर, (महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय बीकानेर राजस्थान)

यह न केवल किरदारों के विकास में सहायक होता है, बल्कि कहानी की प्रगति में भी साहित्य के अनुभव को समाहित करता है। सिनेमा के माध्यम से, हिंदी साहित्य के विषयों को आवाज दी जाती है। धारावाहिक फिल्में और चलचित्र विशेषज्ञता साहित्यिक महाकाव्यों, कथा संग्रहों और कविताओं को प्रस्तुत करने का एक माध्यम होते हैं। सिनेमा के माध्यम से साहित्यिक ग्रंथों को अधिक जनप्रिय बनाया जा सकता है, जिससे उनका प्रसार और प्रचार हो सके। इससे साहित्य का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व बढ़ता है। इस रूप में, हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद हमें उनके अद्वितीय और गहरे संबंध का अनुभव कराता है, जो भारतीय साहित्य और सिनेमा की रचनात्मकता को समझने में मदद करता है।

1.1 प्रस्तावना- सिनेमा और साहित्य, दोनों ही रचनात्मक क्षेत्र हैं जो समाज की भावनाओं, विचारों और अनुभवों को आधार बनाकर आत्मकथा को प्रस्तुत करते हैं। यह दोनों कलाओं में संवाद का महत्वपूर्ण अंग है, जो दर्शकों को आकर्षित करता है और उन्हें एक अनूठा अनुभव प्रदान करता है। इस शोध पत्र में, हम सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव विश्लेषित करेंगे, विशेष रूप से हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद को उजागर करेंगे। सिनेमा के विशाल जगत में, पटकथा एक महत्वपूर्ण तत्व है जो एक कहानी को विकसित करता है और दर्शकों को उसकी दुनिया में ले जाता है। हिंदी साहित्य से प्रेरित, बॉलीवुड के अद्वितीय पटकथा लेखक और निर्देशक, साहित्यिक तत्त्वों को अपनी कहानियों में समाहित करते हैं। उन्हें लेखन कौशल के साथ-साथ साहित्यिक भावनाओं का भी गहरा ज्ञान होता है, जिससे वे उत्कृष्ट कहानियों को बुन सकते हैं। इस प्रकार, साहित्य का अनुभव सिनेमा के रचनात्मक प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दूसरी ओर, सिनेमा के माध्यम से, हिंदी साहित्य की अनेक प्रेरणास्त्रोत कहानियों को दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। यह किरदारों के विकास में सहायक होता है और कहानी की प्रगति में साहित्य के अनुभव को समाहित करता है। साहित्य से प्रेरित कथाएँ और विचार सिनेमा की पटकथाओं में समाहित होते हैं, जिससे दर्शकों को एक गहरा और अभिनव अनुभव मिलता है। इस प्रकार, हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद हमें उनके अद्वितीय और गहरे संबंध का अनुभव कराता है, जो भारतीय साहित्य और सिनेमा की रचनात्मकता को समझने में मदद करता है।

1.2 पटकथा लेखन की प्रक्रिया- सिनेमा की पटकथाओं का निर्माण हिंदी साहित्य से प्रेरित होता है, जिसमें किरदार, कहानी, और दृश्यों का विकास साहित्यिक तत्त्वों के आधार पर होता है। हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद में पटकथा लेखन एक महत्वपूर्ण बिंदु है। पटकथा लेखन का निर्माण एक विवादास्पद और रोमांचक प्रक्रिया है जो लेखक और निर्देशक के बीच, संवाद के माध्यम से होता है। इस प्रक्रिया में, साहित्यिक और सिनेमाटिक दुनियाओं के बीच एक संवाद स्थापित होता है, जिसमें कहानी के तत्व, किरदार, और वातावरण को तैयार किया जाता है। पहला कदम पटकथा लेखन में साहित्यिक उत्तरदायित्व और संवाद के माध्यम से कहानी के संदेश को धारावाहिक रूप में प्रस्तुत करना है। हिंदी साहित्य से प्रेरित पटकथा लेखक ध्यान से

साहित्यिक तत्त्वों को अपनी कहानी में समाहित करते हैं, जैसे कि प्रतिभावना, संवेदनशीलता और सामाजिक संदेश। दूसरा कदम लेखक और निर्देशक के बीच संवाद में होता है, जहां कहानी के शाब्दिक रूप को सिनेमा के रूप में रूपांतरित किया जाता है। साहित्यिक अनुभव और रचनात्मकता से प्रेरित होकर, निर्देशक साहित्य के माध्यम से किरदारों को और वातावरण को तैयार करते हैं, जिससे कहानी को मानवीय अनुभव में परिणत किया जा सकता है। तृतीय कदम पटकथा लेखन में विविधता और नवाचार को सम्मिलित करना है। साहित्यिक अनुभव से प्रेरित होकर, निर्देशक और लेखक नए और अनोखे दृश्य, किरदार और संवाद तैयार कर सकते हैं, जिससे कहानी का नया और रोचक आयाम प्राप्त होता है।

1.3 भावनात्मकता का महत्व- हिंदी साहित्य की भावनाओं और विचारों का प्रसार सिनेमा की पटकथाओं में होता है, जो दर्शकों को कहानी में सम्मिलित करता है। सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव का एक महत्वपूर्ण और रोमांचक आयाम भावनात्मकता है। भावनात्मकता न केवल कहानी को जीवंत करती है, बल्कि दर्शकों को उसकी गहराईयों में ले जाती है और उन्हें कथा के साथ जोड़ती है। इस शोध में, हम विभिन्न पटकथाओं में साहित्यिक भावनाओं के प्रकार और उनके प्रभाव का विश्लेषण करेंगे। हिंदी साहित्य से प्रेरित, बॉलीवुड की पटकथाओं में भावनात्मकता का महत्वपूर्ण स्थान है। कहानी के हर पल में, रोमांच, प्रेम, उत्साह और दु:ख की भावनाएं दर्शकों के दिलों को छूती हैं। इन भावनाओं के माध्यम से, निर्देशक और लेखक दर्शकों को कहानी में जीवंत करते हैं और उन्हें किरदारों के साथ जोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, एक प्रेम कहानी में, किरदारों की भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ दर्शकों के साथ संवाद करती हैं और उन्हें कहानी की गहराई में ले जाती हैं। भावनात्मकता की महत्वपूर्ण भूमिका यह है कि यह दर्शकों को वास्तविकता के अनुभव में ले जाती है। बॉलीवुड के संगीत, नृत्य और अभिनय के माध्यम से, भावनात्मकता को सीधे दर्शकों के संवेदनाओ को जोड़ा जाता है। यह उन्हें किरदारों के साथ संवाद करने और उनके भावों को समझने का अवसर देता है।

1.4 साहित्यिक अनुभव का प्रयोग- सिनेमा में हिंदी साहित्य के विभिन्न प्रकारों से प्रयोग होता है, जैसे कि उपन्यास, कविता, कहानी, और नाटक, जो दर्शकों को एक गहरा और संवेदनशील अनुभव प्रदान करते हैं। साहित्य के माध्यम से, सिनेमा अपने दर्शकों को सामाजिक संदेशों से अवगत कराता है और रचनात्मकता के माध्यम से उन्हें प्रेरित करता है। सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव एक विशेषता है जो हिंदी साहित्य और ब,लीवुड सिनेमा के बीच संवाद के माध्यम से समायोजित होता है। साहित्यिक अनुभव का प्रयोग सिनेमा में कहानी के तत्वों को व्यक्त करने, धारावाहिकता को बढ़ाने और दर्शकों को गहराई में ले जाने के लिए किया जाता है। हिंदी साहित्य के प्रेरणास्त्रोत से, साहित्यिक अनुभव सिनेमा में कहानी के तत्वों को निर्धारित करता है। लेखक और निर्देशक साहित्यिक ग्रंथों से प्रेरित होते हैं और उन्हें सिनेमा रूप में प्रस्तुत करने के लिए उनके विचारों और कल्पनाओं का उपयोग करते हैं। इस प्रक्रिया में, कहानी के तत्वों को साहित्यिक मूल्यों के साथ बुना जाता है, जिससे उन्हें और विविध बनाया जाता है।

साहित्यिक अनुभव का प्रयोग सिनेमा में अद्वितीयता को बढ़ाता है। विभिन्न साहित्यिक ग्रंथों से लेकर कहानियों को सिनेमा रूप में अनुप्रयोग किया जाता है, जिससे उनके नए और आकर्षक आयाम प्राप्त होते हैं।

1.5 सिनेमा और साहित्य का संबंध- यह शोध पत्र सिनेमा और साहित्य के बीच संवाद का महत्व उजागर करता है और दिखाता है कि दोनों कलाओं के बीच कैसे एक गहरा संबंध है जो रचनात्मक और सामाजिक दृष्टिकोण से हमारे समाज को प्रभावित करता है। सिनेमा और साहित्य दोनों ही महत्वपूर्ण कला और मनोरंजन के रूप में भारतीय समाज में अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में महत्वपूर्ण हैं। हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा दोनों ही भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण हिस्से हैं और इनका संबंध गहरा और प्रभावशाली है। सिनेमा और साहित्य का संबंध उनके साझा विशेषताओं और लक्षणों में समाहित है। दोनों में कहानी का महत्वपूर्ण भूमिका होती है, जो व्यक्तित्वों के और समाज के मुद्दों को व्यक्त करती है। साहित्य और सिनेमा दोनों ही मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक और राजनीतिक संदेशों को भी बताते हैं। हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद विभिन्न रूपों में देखा जा सकता है। कई सिनेमाओं में, लेखकों और निर्देशकों ने प्रसिद्ध कथाओं, कहानियों, और उपन्यासों को अद्वितीय और रोमांचक तरीके से प्रस्तुत किया है। उन्होंने साहित्यिक कार्यों के मूल को सिनेमा में अनुकरण किया है, जिससे वे दर्शकों को आकर्षित कर सकें। विशेष रूप से हिंदी साहित्य के मौलिक काव्य, कहानियाँ और उपन्यासों के आधार पर बनी फिल्में साहित्य के रंग, भावनाएं, और विचारों को फ़िल्मी अनुभव में प्रस्तुत करती हैं। इसके अलावा, साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन करके सिनेमा के निर्माण में नवाचारिता को बढ़ावा मिलता है। अभिनेता-निर्देशकों के बावजूद, दोनों कलाओं के बीच अंतर होता है। साहित्य के माध्यम से प्रेरित होते हुए, निर्देशक सिनेमा के रूप में कहानी को रंगीन और रोमांचक बनाते हैं, जिससे दर्शकों को उसके अंदर लीन होने का अनुभव होता है।

1.6 साहित्यिक प्रेरणा का अध्ययन- साहित्यिक प्रेरणा का अध्ययन सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य के अनुभव के प्रमुख बिंदुओं में से एक है। सिनेमा के लेखक और निर्देशकों के लिए साहित्य से प्रेरित होना एक सामान्य प्रक्रिया है, जो उन्हें कहानी के तत्वों को सिनेमा रूप में बुनने में मदद करता है। साहित्यिक प्रेरणा के अध्ययन में सिनेमा में प्रस्तुत किए गए कथात्मक तत्वों के साथ हिंदी साहित्य के प्रमुख काव्य, कहानियाँ, और उपन्यासों का अध्ययन किया जाता है। इसमें, साहित्यिक कार्यों के प्रमुख कल्पनाशील और रोमांचक प्रतीक खोजे जाते हैं, जो सिनेमा के लेखकों और निर्देशकों को प्रेरित करते हैं।

उदाहरण के लिए, हिंदी साहित्य में विभिन्न लेखकों द्वारा रचित कहानियाँ और उपन्यासों की अद्वितीयता और उनके कथात्मक भाव को समझा जा सकता है। यह सिनेमा के लेखकों को नई और रोमांचक कहानियों को तैयार करने के लिए प्रेरित करता है। इसके अलावा, साहित्यिक प्रेरणा के अध्ययन से सिनेमा के लेखक और निर्देशक साहित्यिक कृतियों के विभिन्न मूल्यों और संदेशों को समझते हैं।

1.7 कहानी के तत्वों का विश्लेषण- इस बिंदु पर शोध पत्र में कहानी के विभिन्न तत्वों के संवाद में साहित्य का अनुभव कैसे दिखाई देता है, इस पर विचार किया जाता है। कहानी के तत्वों का विश्लेषण शोध पत्र में एक महत्वपूर्ण बिंदु है जो सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य के अनुभव को समझने में मदद करता है। इस विशेष विश्लेषण में, हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा के बीच संवाद के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हो सकते हैं–

1.8 कलात्मक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य- बॉलीवुड सिनेमा और हिंदी साहित्य दोनों ही कला और साहित्य के माध्यम से समाज के साथ एक संवाद स्थापित करते हैं। सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव करना एक अत्यंत महत्वपूर्ण अनुभव है जो कला और साहित्य के बीच गहरा संबंध दिखाता है। हिंदी साहित्य की गहराई और विविधता ब,लीवुड सिनेमा में प्रकट होती है। कई बार, सिनेमा की पटकथाएँ हिंदी कहानियों, कविताओं और उपन्यासों से प्रेरित होती हैं, जो रचनात्मकता के क्षेत्र में विविधता को उत्पन्न करती हैं। इसके अलावा, साहित्य के भावनात्मक और विचारात्मक पहलुओं को सिनेमा के माध्यम से दर्शकों तक पहुंचाने का काम किया जाता है। सिनेमा भी साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है जो सांस्कृतिक और सामाजिक संदेशों को प्रस्तुत करता है। बॉलीवुड फिल्में अक्सर समाज के महत्वपूर्ण मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करती हैं और विभिन्न साहित्यिक प्रेरणाओं से प्रेरित होती हैं। सिनेमा के माध्यम से, साहित्य के महत्वपूर्ण सन्देश और विचारों को दर्शकों तक पहुंचाया जाता है जो समाज में परिवर्तन और संवाद को बढ़ावा देता है।

1.9 संगीत और नृत्य का अध्ययन- बॉलीवुड सिनेमा में संगीत और नृत्य की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शोध पत्र में यह विश्लेषण किया जा सकता है कि कैसे हिंदी साहित्य के अलावा भारतीय संगीत और नृत्य की परंपरा सिनेमा को अधिक रंगीन और कलात्मक बनाती है। संगीत और नृत्य का अध्ययन, सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य के अनुभव को समझने के लिए महत्वपूर्ण प्रमुख बिंदुओं को विश्लेषित करता है। यह अध्ययन सिनेमा में संगीत और नृत्य के भूमिका की समझ को मजबूत करता है और कथाओं को विशेष रूप से अभिव्यक्त करने में सहायक होता है। संगीत और नृत्य, सिनेमा की पटकथाओं में कई महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निरूपण करते हैं। संगीत गाने के माध्यम से कथा को आकर्षक बनाता है और अक्सर संवादों को समीक्षात्मकता देता है। नृत्य से व्यक्तित्व और भावनाएं प्रस्तुत की जाती हैं, जो कथा को और भी गहरा बनाता है। संगीत और नृत्य के अध्ययन में विशेष रूप से संगीत और नृत्य के साथ कथा के संबंध को विश्लेषित किया जाता है। संगीत के गाने कैसे कथा की मुख्य विषयों को संबोधित करते हैं और नृत्य कैसे कथा को अभिव्यक्त करता है, इस पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इसके अलावा, संगीत और नृत्य के रूप में किसी विशेष संगीत या नृत्य शैली के साथ कथा का संबंध कैसे होता है, यह भी विश्लेषण किया जा सकता है।

1.10 साहित्यिक परंपराओं का प्रभाव- हिंदी साहित्य की विभिन्न परंपराओं, जैसे कि कविता, कहानी और नाटक का सिनेमा पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इस बिंदु पर गहराई से विचार किया जा सकता है। संगीत सिनेमा का एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग है। यह

कहानी को और भी रोमांचक बनाता है और दर्शकों को उसमें संजीवनी देता है। संगीत के माध्यम से, भावनाओं को व्यक्त करने में कथाओं को अधिक संवादी बनाया जा सकता है। नगमों और स्वरों के माध्यम से, दर्शकों को कहानी में जीवंत करने का अनुभव होता है। उदाहरण के लिए, एक प्रेम कहानी में, गाने, प्रेम और भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम बन सकते हैं। नृत्य भी सिनेमा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नृत्य के माध्यम से, अभिनेता या अभिनेत्री अपने पात्र की भावनाओं को और मानवीय भावनाओ को प्रकट करते हैं। नृत्य से, वे कहानी को साकार करते हैं और दर्शकों के ध्यान को आकर्षित करते हैं। नृत्य का माहौल और उसकी गतिशीलता कई बार दर्शकों के मन को मोह लेती है और कहानी को और भी विशेष बनाती है।

1.11 भारतीय संस्कृति और विरासत- भारतीय संस्कृति और विरासत एक अमूल्य धन है, जो दुनिया भर के लोगों को अपने विशाल और विविध धार्मिक, सांस्कृतिक और कलात्मक विरासत के रूप में प्रस्तुत करता है। यह एक समृद्ध और अनन्त संस्कृति है, जिसमें अद्वितीयता का संगम है। भारतीय संस्कृति न केवल अपने भव्य ऐतिहासिक और धार्मिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि उसकी विविधता, भिन्नता और सांस्कृतिक समृद्धता के लिए भी जानी जाती है। भारतीय संस्कृति सदियों से अपनी विचारशीलता, उत्कृष्टता और आदर्शों के लिए प्रसिद्ध है। इसकी विरासत ने कला, साहित्य, संगीत, नृत्य, दर्शन और विज्ञान में विशेष योगदान किया है। भारतीय संस्कृति की अद्वितीयता उसके विभिन्न रंगों, ध्येयों और अभिव्यक्तियों में है। बॉलीवुड सिनेमा भारतीय संस्कृति और विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा है। सिनेमा के माध्यम से, भारतीय कला और साहित्य का अद्वितीय अनुभव होता है। बॉलीवुड फिल्में भारतीय समाज की भावनाओं, परंपराओं और संस्कृति की मान्यताओं को प्रस्तुत करती हैं। सिनेमा के माध्यम से, भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया जाता है, जो विभिन्न जातियों, धर्मों और समुदायों के बीच समानता और सामंजस्य को बढ़ावा देता है। इस रूप में, सिनेमा भारतीय संस्कृति की विरासत को आधुनिक दर्शकों के सामने प्रस्तुत करता है, जिससे वे इसे समझने और सम्मान करने का अवसर पाते हैं। इस रूप में, सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव हमें भारतीय संस्कृति और विरासत के मूल्यों, सिद्धांतों और आदर्शों का सुंदर अनुभव प्रदान करता है। यह संवाद न केवल हमें हमारे संगीत, नृत्य, कला और साहित्य की विरासत के प्रति उत्साहित करता है, बल्कि हमें हमारे सामाजिक संदेशों और सांस्कृतिक विरासत के प्रति भी संवेदनशील बनाता है।

1.12 साहित्यिक प्रेरणा और अद्भुतता- सिनेमा में साहित्य की अद्भुतता को कैसे प्रस्तुत किया गया है, और कला और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से इसका महत्व क्या है, यह साहित्यिक प्रेरणा और अद्भुतता, सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य के अनुभव के अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली आयाम हैं। यह दोनों ही कलाओं के मिलन से एक अद्वितीय अनुभव उत्पन्न होता है जो दर्शकों को आकर्षित करता है और उन्हें प्रेरित करता है। साहित्यिक प्रेरणा का अनुभव सिनेमा के माध्यम से होता है जब फिल्म निर्माता या निर्देशक विभिन्न साहित्यिक काव्य, कहानियाँ, उपन्यास या नाटकों से प्रेरित होते हैं। वे एक अद्वितीय फिल्म की कथा को रचते हैं जो दर्शकों को आनंदित करती है और उन्हें

जीवन के तथ्यों को समझने के लिए प्रेरित करती है। इस तरह, साहित्यिक प्रेरणा सिनेमा की पटकथाओं को सामूहिक अनुभव का रूप देती है और उन्हें समृद्ध करती है। फिल्म उत्कृष्ट गतिशीलता, चित्रण, संगीत और नृत्य के माध्यम से दर्शकों को विस्मित करती है। अद्भुतता के माध्यम से, फिल्म दर्शकों के मनोभाव और भावनाओं को नई ऊंचाइयों तक ले जाती है। इस रूप में, साहित्यिक प्रेरणा और अद्भुतता एक साथ काम करते हैं और एक संवादात्मक अनुभव को उत्पन्न करते हैं जो दर्शकों के दिलों में स्थायित होता है।

1.13 धार्मिक और सामाजिक परंपरा का प्रभाव- सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव और सामाजिक परंपरा का प्रभाव एक प्राचीन और गहराई से जुड़ा हुआ विषय है। बॉलीवुड सिनेमा और हिंदी साहित्य दोनों ही भारतीय समाज की विविधता, संस्कृति और सामाजिक परंपराओं का प्रतिबिम्ब करते हैं।

हिंदी साहित्य ने समाज के विभिन्न पहलुओं को छूने और प्रस्तुत करने के लिए समृद्ध और सामाजिक संदेश युक्त कहानियों को साहित्यिक धरोहर बनाया है। इसी तरह, बॉलीवुड सिनेमा भी समाज की मुख्य चुनौतियों, संघर्षों और सामाजिक संदेशों को दर्शाता है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों पर आधारित फिल्में सामाजिक संदेश और चेतावनियाँ प्रस्तुत करती हैं। सिनेमा के माध्यम से, समाज की परंपराओं, संस्कृति, और सामाजिक संदेशों को एक बड़े दर्शक समूह तक पहुंचाया जा सकता है। फिल्मों के माध्यम से बदलती समाज की धाराओं और परिप्रेक्ष्य को दर्शाने के लिए विभिन्न कहानी का उपयोग किया जा सकता है, जो सामाजिक संदेशों को स्पष्ट करते हैं और जनता को विचार करने पर मजबूर करते हैं। इस रूप में, साहित्य और सिनेमा के संवाद सामाजिक परिवर्तन को निर्धारित करते हैं और समाज को उत्साहित करते हैं। समाजिक परंपराओं का प्रभाव सिनेमा के साथ-साथ साहित्य के भीतर भी दिखाई देता है। कई सिनेमाओं और कहानियों में समाज की विभिन्न विधाओं, प्रथाओं और परंपराओं को दिखाया जाता है, जो विभिन्न वर्ग, जाति और समुदायों के बीच अंतर समझाते हैं।

1.14 संवाद और भाषा- साहित्य के भाषाई और संवादात्मक पहलुओं को सिनेमा में कैसे प्रस्तुत किया गया है, यह विश्लेषण किया जा सकता है। संवाद और भाषा एक महत्वपूर्ण प्रमुख बिंदु हैं जो सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य के अनुभव को प्रभावित करते हैं। हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा दोनों ही भाषा के व्यावसायिक उपयोग का प्रमुख उदाहरण हैं। भाषा, संवाद और बोलचाल का उपयोग सिनेमा की पटकथाओं में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल किसी कहानी को समझने में मदद करता है, बल्कि दर्शकों को चरित्रों के विचारों, भावनाओं और संवेदनाओं का अनुभव करने में भी सहायक होता है। समाधानिक संवाद और वाणी का चयन करने का तरीका, संधि का उपयोग, वाणी के रंग और ढंग और भाषा की उपयोगिता, समय और स्थान के संदर्भ में, साहित्यिक अनुभव को समृद्ध करते हैं। हिंदी साहित्य में समृद्ध भाषा का उपयोग साहित्यिक प्रेरणा को संजीवनी देता है। यहां भाषा का रंग और ढंग आदिवासी, ग्रामीण, शहरी, व्यावसायिक और साहित्यिक संदर्भों में विविधता और संवेदनशीलता को दर्शाता है। ब, लीवुड सिनेमा में भी, साहित्यिक प्रेरणा को दिखाने के लिए भाषा का उपयोग किया

जाता है। बातचीत, भाषा के ध्वनि और विभिन्न वर्णमालाओं का उपयोग रचनात्मक रूप से साहित्यिक अनुभव को बढ़ाता है।

1.15 भाषा और रचनात्मक शैली का विश्लेषण- सिनेमा की पटकथाओं में साहित्य का अनुभव विश्लेषण के लिए, भाषा और रचनात्मक शैली का महत्वपूर्ण होना अत्यंत आवश्यक है। हिंदी साहित्य और बॉलीवुड सिनेमा दोनों ही भाषा और रचनात्मक शैली के उदाहरण हैं जो दर्शकों को एक रचनात्मक अनुभव प्रदान करते हैं। पहले, भाषा का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। सिनेमा की पटकथाओं में उपयुक्त भाषा का चयन करने से, निर्माताओं को अपनी कहानी को उचित रूप में प्रस्तुत करने में मदद मिलती है। हिंदी साहित्य में, भाषा की समृद्धता और विविधता साहित्यिक प्रेरणा को प्रकट करती है। उत्कृष्ट और संवेदनशील भाषा साहित्य के अनुभव को गहराती है और पाठकों को एक अद्वितीय अनुभव प्रदान करती है। सिनेमा में भी, उचित भाषा का चयन नाटकीय प्रभाव को बढ़ावा देता है और दर्शकों को रचनात्मक रूप से आकर्षित करता है। दूसरे, रचनात्मक शैली का विश्लेषण भी महत्वपूर्ण है। सिनेमा में, निर्माताओं की रचनात्मक शैली किसी विशेष फिल्म के विशेष विषय और संदेश को प्रकट करती है। भाषा के साथ-साथ, ध्वनि, छायाचित्रण और फिल्म की अन्य गतिविधियों का रचनात्मक उपयोग भी विचारों को सामूहिक रूप से प्रस्तुत करने में मदद करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. भारतीय सिनेमा और साहित्य: संवादना और परिप्रेक्ष्य (लेखक अभिनव खरे) - प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ संख्या 45-68
2. सिनेमा और साहित्य: विचार एवं अध्ययन (लेखक संजीव कुमार)- प्रकाशन वर्ष 2019, पृष्ठ संख्या 112-130
3. बॉलीवुड: उत्थान और विकास (लेखक मिथुन गोस्वामी)- प्रकाशन वर्ष 2015, पृष्ठ संख्या 78-95
4. सिनेमा का साहित्यिक पक्ष (लेखक रवि शंकर)- प्रकाशन वर्ष 2018, पृष्ठ संख्या 205-224
5. सिनेमा और समाज- संवाद और परिप्रेक्ष्य (लेखक महेश शर्मा)- प्रकाशन वर्ष 2016, पृष्ठ संख्या 150-170
6. हिंदी साहित्य: अतीत, वर्तमान, भविष्य (लेखक आनंद शर्मा)- प्रकाशन वर्ष 2020, पृष्ठ संख्या 55-72
7. बॉलीवुड सिनेमा: विकास और प्रभाव (लेखक राहुल गुप्ता)- प्रकाशन वर्ष 2014, पृष्ठ संख्या 120-138
8. साहित्य का सिनेमाटिक रूप (लेखक सुमित राजवंशी)- प्रकाशन वर्ष 2019, पृष्ठ संख्या 180-198
9. सिनेमा और सामाजिक विचार (लेखक अरुणा शर्मा)- प्रकाशन वर्ष 2017, पृष्ठ संख्या 85-105
10. हिंदी साहित्य और राष्ट्रीय चेतना (लेखक रमेश तिवारी)- प्रकाशन वर्ष 2018, पृष्ठ संख्या 240-260

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

बालमुकुंद गुप्त के साहित्य में धार्मिक व्यंग्य

• राहुल गर्ग

सारांश- बालमुकुंद गुप्त ने अपने युग की धार्मिक विडंबनाओं जैसे जाति प्रथा,सती प्रथा, विधवा की स्थिति,धार्मिक कुकृत्यों व आडंबरों का अनुशीलन कर उसपर अपनी तीखी व्यंग्यात्मक लेखनी चलाई है। अपने युग में व्यंग्यात्मक लेखों के माध्यम से धार्मिक विसंगति को दूर करके सामाजिक जागृति फैलाने में उनकी अहम भूमिका रही है। इसके लिए, वे प्रशंसनीय है।

मुख्य शब्द- धार्मिक सुधार, वर्ण व्यवस्था, महिलाओं की दुर्दशा, आडंबर,सुधारवाद

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में भक्ति मत के प्रचारकों द्वारा हिन्दू धर्म में सुधार किया गया, परंतु मुगलों के शासन काल में अंधविश्वासों ने फिर ज़ोर पकड़ लिया था। 19वीं सदी धार्मिक पुर्न जागरण की थी, जिसमें बहुत से धार्मिक सुधार आंदोलन भी आरंभ हुए। राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि ने हिन्दू समाज में धर्म के प्रति जागरूकता पैदा की और अनेक बाह्याडंबरों का विरोध किया। उस समय अँग्रेजी शासन ने धार्मिक सुधारों के नाम पर लोगों में तर्कशीलता और समालोचना के भाव जागृत अवश्य किए, परंतु उन सब के पीछे उनका स्वार्थ निहित था। ईसाई धर्म के पादरियों ने हिन्दू व इस्लाम की कुरीतियों पर आक्रमण किया। परिणामस्वरूप अँग्रेजी शासन काल में ईसाई धर्म भारत में खूब फैला। आरंभ में बहुत से हिन्दू, जो अपने धर्म से परिचित नहीं थे, ईसाई मिशनरियों के प्रभाव में आकर ईसाई बन गए। देश में बहुत से अछूतों ने विशेष कर दक्षिण में, अपनी सामाजिक दशा सुधारने के लिए ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया। इस काल में भारत की धार्मिक अवस्था पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने के कारण पत्तन के कगार पर खड़ी थी। भारतीयों में पढ़े लिखे लोग अंग्रेजों की चाल–ढाल में ढलने लगे। जो अशिक्षित थे, वे भाग्यवाद, बहु देव–बाद, भूत–पिशाच, अज्ञान, तीर्थ यात्रा, मूर्ति–पूजा आदि में विश्वास रखने वाली संकीर्णता का शिकार थे। कुल मिलाकर,भारत के अनेक संप्रदाय आपस में संकीर्णता के कारण झगड़ रहे थे। धार्मिक –ष्टि से पतनोन्मुख समाज को सुधारने के लिए व्यंग्य की आड़ से भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायन मिश्र आदि ने व्यंग्य रचनाएँ की। अतः इस काल की धार्मिक परिस्थितियाँ उथल–पुथल व परिवर्तन की स्थिति में थी।

• नेट,जे.आर.एफ उत्तीर्ण, एम ए हिंदी, दिल्ली विश्वविद्यालय

उन्नीसवीं सदी में अनेक साहित्यकारों द्वारा भारतीय समाज में फैले अंधविश्वासों और धार्मिक रूढ़िवादिता के खिलाफ आंदोलन आरंभ किये गए। उस समय सर्वत्र अज्ञान, अविद्या एवं बिगड़ती नैतिक दुर्दशा का राज्य था। जनता भाग्यवाद, बहुदेववाद, तीर्थ यात्रा, मूर्तिपूजा तथा भूत-प्रेतों आदि के परंपरागत अंधविश्वासों में जकड़ी हुई थी। उसी समय, स्वामी दयानंद ने वेदों द्वारा, रूढ़ियों को दूर करने का प्रयास किया। तत्कालीन धार्मिक सुधारों के बारे में डॉ. कमला कानोडिया ने कहा है, "आर्य समाज द्वारा अनेक वैदिक ढंग के शिक्षा संस्थानों की स्थापना हुई। इस समाज द्वारा स्त्री शिक्षा को बहुत प्रोत्साहन मिला। इसमें श्राद्ध तथा विवाह में की जाने वाली फिजूलखर्चो का विरोध किया गया और ब्राह्मणों द्वारा स्थापित एकाधिकार की कटु निंदा करते हुए अनुपयोगी वर्ण व्यवस्था की निंदा भी की गयी। इस संप्रदाय ने समाज में एकता के सिद्धांतों पर बल देते हुए दलितों तथा अछूतों के मानसिक विकास के लिए यथेष्ट प्रयत्न करके उसमें आत्मसम्मान की भावना जगायी।"[1]

इन सब के बावजूद समाज में धर्म के प्रति दो मत बनते जा रहे थे। जिनमें एक भारतीयता से चिपके रहने वाले थे व दूसरे भारतीयता से विरत होने वाले। यह परिस्थिति अँग्रेजी सरकार के द्वारा विभिन्न प्रकार के हथकंडे अपनाने की नीति के कारण थी। ईसाई मिशनरियों के अनैतिक प्रकार से धर्म को प्रचारित करने से भारतीयों का एक वर्ग पाश्चात्य धर्म की चपेट में आ रहा था। इन मिशनरियों की छल-कपट की नीति पर प्रकाश डालते हुए डॉ. कमला कानोडिया ने कहा हैं, "आओ भाइयों ! धर्म हमारे पास है। मित्रों आप लोग परमेश्वर की राह भूले हुए हो, बिना सच्चे गुरू कभी न पाओगे। तुम्हारे गुरू लोभी, लालची, व्यसनी और कपट युक्त हैं। यदि तुम सच्चे गुरु के द्वारा परमेश्वर की राह खोजना चाहते हो तो चले आओ चले आओ !! इस धर्म की ध्वजा के नीचे चले आओ।"[2]

बालमुकुंद जी पर भारतेन्दु युग का काफी प्रभाव था। भारतेन्दु युग के रचनाकारों ने धार्मिक सुधारों के लिए अपनी लेखनी जरूर चलाई, परंतु वे ब्रह्म समाज अथवा आर्य समाज आदि धर्म सुधार संबंधी विचारधाराओं को अस्वीकार करते थे। वे सनातन धर्म में सुधार अवश्य चाहते थे, परंतु पाश्चात्य प्रभाव से दूर रहकर ही। इस मन्तव्य को डॉ. मेंहदीरत्ता ने स्पष्ट करते हुए कहा है, "ब्रह्म समाज अथवा आर्य समाज आदि धर्म सुधार संबंधी विचारधाराएँ भी इन्हें स्वीकार नहीं थी। वे सनातन धर्म के सुधार के पक्ष में थे इसलिए जहाँ एक ओर उन्होंने सनातन धर्म में कर्मकांडों की विकृतियों तथा मंदिरों के भ्रष्टाचार को समाप्त करने के उद्देश्य से व्यंग्य किया वहाँ दूसरी ओर ब्रह्म समाज के ईसाइयत की ओर झुकने तथा आर्य समाज के मूर्ति पूजा खंडन पर भी प्रहार किया।"[3]

गुप्त जी के साहित्य में धर्म के दो स्वरूप मिलते है। एक तो उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो पाश्चात्य प्रभाव से धर्म के साथ अकारण ही छेड़-छाड़ करते हैं, दूसरे धर्म को आधार बनाकर अनेक सामाजिक स्थितियों पर व्यंग्य किया हैं। गुप्त जी ने उन लोगों पर हास्यात्मक-व्यंग्य किया जो धर्म के नाम पर अनैतिक कार्यों में लिप्त थे। उनके साहित्य में धर्म के क्षेत्र में अनेक विसंगतियों पर प्रहार किया गया हैं। बालमुकुंद गुप्त जी ने धर्म के नाम पर सर्वत्र छाए भ्रष्टाचारात्मक व्याभिचार को 'जोगीड़ा' कविता के माध्यम से व्यक्त

किया है। गुप्त जी ने साधू के गुणों, शिष्य धर्म, आहार व्यवहार व सात्विकता पर बल दिया है। जो संत इन सभी का पालन नहीं करते वे समाज को भ्रमित करने का कार्य करते हैं। धर्म के नाम पर फैली विकृति व असंगति गुप्त जी को मान्य नहीं थी। उनको यह बिलकुल पसंद नहीं था कि साधू-संतों के साथ महिला शिष्य विचरण करे। गुप्त की दृष्टि में यह कार्य समाज में गलत संदेश देने वाला था। वे समाज को सुदृढ़ व सुचारु रूप में महिलाओं की भूमिका स्वीकार करते थे क्योंकि महिला ही परिवार का भली-भाँति ध्यान रखती है। जिससे समाज में असामाजिक तत्व नहीं पनपते। महिला साधू का विरोध करने का एक कारण यह भी था कि इससे पहले भी नारी सिद्ध, नाथ धर्म में अनैतिकता का कारण थी। जिसका कबीर ने भी विरोध किया था। यही कारण था कि उन्होंने विवेकानंद जैसे विद्वान पर व्यंग्य किया।

हुई बाबाजी तेरी - सदा चरणोंकी चेरी।
हे सन्यासी सदा उदासी सुनके तुम्हरी बनी।
जीमें बसी तुम्हारी मूरत भूल गई कृस्तानी ।।
प्रेम ईसाका छुटा, नेह मरियमसे टूटा।
योग का पंथ बताओं मुझे भी संग लगाओं।।[4]

गुप्त जी के इस प्रकार के व्यंग्य का लक्ष्य धर्म में बढ़ते व्याभिचार को रोकना था क्योंकि सब व्यक्ति तो कठोर तपस्वी नहीं होते और उन निम्न स्तर के संतों द्वारा धर्म की हानि होती हैं। यह गुप्त जी को मान्य नहीं थी और वे एक अन्य जगह पर खान-पान को लेकर साधु के डोंग पर कटाक्ष करते हैं-

जो अंडा सोही ब्रह्मंडा इसमें नाहीं भेद।
दोनों अच्छे समझों बच्चे सोइ आंत सोइ ही मेद।।
वेदका सर यही है बुद्धि का पार यही है,
मिले तो अंडा चकखो, मिले तो मंडा भक्खो।[5]

इन पंक्तियों में उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो अनेक आडंबरों व अनैतिकताओं में फंसे हुए थे। धर्म के आड़ में अन्यायपूर्ण कार्य करने वाले लोगों की संख्या उस समय बढ़ रही थी। यही कारण था कि भारतेन्दु युग के सभी रचनाकारों ने भी मंदिरों, मठों में होने वाले अनैतिक कार्यों की निंदा करते हुए लेखन कार्य किया। जिसमें राधाचरण गोस्वामी का श्तन मन धन गोसाई को अर्पणश, भारतेन्दु का 'प्रेमजोगिनी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', प्रतापनारायण मिश्र का 'धर्म का वृषभ', बालकृष्ण भट्ट का 'चंद्रसेन' आदि अनेक रचनाएँ धर्म के नाम पर होने वाले पाखंडों को लेकर लिखी गयी। इस प्रकार, समाज में फैले व्याभिचार व अनैतिकता का विरोध करने के लिए लोकगीत का सहारा लिया तथा उपहासात्मक व्यंग्य द्वारा उन योगियों पर व्यंग्य किया जो योग और भोग में अंतर नहीं मानते तथा अपनी शिष्य को गलत उपदेश देते हैं -

कच्चे जोगी पक्के भोगी बालक निपट नदान।
जोग भोग का भेद न जाना दोनों एक समान।।
निरा चोला रंगवाया जतीका वेष बनाया।
जोगका भेद न पाया, मुफ्त में अलख जगाया।।[6]

पाश्चात्य प्रभाव के कारण एक वर्ग ऐसा बन गया था जो केवल आराम की ज़िंदगी चाहता था और आराम से बैठे खाने के लिए धर्म की आड़ लेने लगा था। जो व्यक्ति पाश्चात्य के प्रभाव में मदिरा पान, मांस भक्षण आदि करने लगा था, उससे आम व्यक्ति को अपना धर्म खतरे में नजर आने लगा था। गुप्त जी ने कलकत्ता यात्रा के दौरान इस प्रकार की स्थिति का अनुभव किया था। उन्होंने बाबाजी वचन के माध्यम से व्यंग्य किया है –

एकही गाओ एकही ध्याओ करो उसी का ध्यान।
जो बोतलमें सो होटलमें निराकार भगवान ।।
उसीका ध्यान लगाओ उसीमें मन अटकाओ।
वही है मक्खन बिसकुट, वाहिहाई मुर्गो कुक्कुट।
अगल बगलमें बिस्कुट मारो बोतल रक्खो पास।
आंख मूंदकर ध्यान लगाओ छः रितु बारह मास।।[7]

इन पंक्तियों को देखकर लगता है कि उस समय का समाज किस तरह से पतन की ओर जा रहा था। धर्म के नाम पर इस प्रकार के संत किसी भी स्तर पर जा सकते थे और वे अपनी भोग भावना में मस्त दिखाई देते थे। ऐसे होंगी बाबा निंदा के पात्र ही बन सकते हैं।

सिद्धांतों की दृष्टि के आधार पर भारतेन्दु युगीन साहित्यकार वर्ण–व्यवस्था के समर्थक थे। उनका आदर्श था कि प्रत्येक व्यक्ति शास्त्रों के आधार पर अपने कर्तव्यों का पालन करता हुआ चले। उनकी –ष्टि में कर्तव्य का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति, चाहे वह किसी भी वर्ण से संबंध रखता है, उसका विरोध होना चाहिए। गुप्त ने व्यंग्य के माध्यम से ब्राह्णों के द्वारा विधा अभ्यास को छोड़ निरंकुशता अपनाने, क्षत्रियों के विलासी हो जाने तथा वैश्यों के आलसी होने पर उपहासात्मक व्यंग्य किया है।

सेल गई बरछी गई गये तीर तरवार।
घड़ी छड़ी चसमा भये छत्रिन के हथियार।।
जो लिखते अरि–हरि पै सदा सेलके अंक।
झपत नैन तिन सुतन के कटत कलम को डंक ।[8]

गुप्त जी को वर्ण व्यवस्था के विपरीत कार्य करने वाले लोग बिलकुल पसंद नहीं थे। अतः उन्होंने उन क्षत्रियों पर व्यंग्य किया जो बढ़ते फैशन के कारण हाथ में घड़ी व छड़ी रखने का शौक करने लगे थे। गुप्त जी ने उनकी बाबूगिरी को व्यंग्य का आधार बनाया है।

प्राचीनकाल से ही हिन्दू धर्म में अनेक संप्रदाय थे और उनमें सिद्धांतों के आधार पर आपसी सहमति कम ही होती थी। जहां तक धर्म के प्रचारकों की बात थी वे सभी एक दूसरे की अनावश्यक कमियां दिखाकर अपने धर्म का प्रचार करते थे। हिन्दू धर्म में सुधार के लिए अनेक संप्रदाय के अनुयायियों ने कार्य किया। जिसमें कोई मूर्ति–पूजा का खंडन करता है, तो कोई बहुदेववाद का, तो कोई निराकार का। वैसे तो यह प्रणाली मध्यकालीन संतो ने भी अपनाई थी परंतु ब्रिटिश शासन के दौरान ईसाई मत का प्रचार लोगों को गुमराह करने में किया जाने लगा था। जिसका प्रभाव बहुत तेजी के साथ फैल रहा था। उस समय के साहित्यकारों ने सभी पाश्चात्य मतों को मानने वाले सुधारकों का खंडन किया। डॉ. वंशीधर ने कहा है, "राजा राममोहन राय के ब्रहम समाज से भारतेन्दु हरिश्चंद्र को विरोध था, क्योंकि ब्रह्म समाज ने मूर्ति पूजा का विरोध किया था। भारतेन्दु ने ब्रह्म समाज को ब्रांडी समाज कहा था।[9]

बालमुकुंद गुप्त जी ने धर्म के क्षेत्र में भेद-भाव को छोड़कर, देश की उन्नति में सहायता करने वाले धर्म को ही अपनाने पर बल दिया है। उनका यह मत इसलिए था क्योंकि अन्य धर्म के प्रचारक हिन्दू धर्म में कमियों बताते और अपने धर्म की कमियों को ढकते जाते। भारतीय उनका अंधानुकरण कर रहे थे। गुप्त जी किसी भी धर्म को स्वार्थ के लिए अपनाए जाने के विरुद्ध थे। अत: वे सभी स्वार्थों धर्मों का उपहास करते हुए कहते हैं-

अल्ला गाड अरु निराकार में भेद न जानो भाईरे।
इन तीनोंको जीमें अपने जानो भाई भाईरे।
गाड कभी मूर्त नहिं पूजी अल्लाने तुड़वाईरे।
निराकार ने गाली देकर सारी कसर मिटाई रे।।
X X X X X X X
तहमद अरु पतलून एक भये एक कोट मिज़राईरे।
चोटी डाढ़ी क्रूस जनेऊ गड्डमगडड मचाईरे।।[10]

धर्म के नाम पर ब्रिटिश सरकार भी अपने शासन को दृढ़ करने में लगी हुई थी। उसके लिए वह मुस्लिम मत को सहयोग देने लगी। जो हिन्दू-मुस्लिम वर्षों से एक साथ रह थे वे एक दूसरे को अपना दुश्मन समझने लगे। 'सर सैयद का बुढ़ापा' के माध्यम से गुप्त जी ने धर्म के नाम पर होने वाले भेद-भाव पर प्रहार किया है। वे अंग्रेजों की चाल को समझते थे कि उनकी नीतियां राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा उत्पन्न करते थी। इसलिए वे उनका विरोध करते थे-

गोवधका ले नाम अनोखा तुमने स्वाग मचाया है,
नक्शा चितली कबरका तुमने क्या खूब दिखाया है।
खुदगरजी के मारे अगली पिछली इज्जत खोते हो,
मुसलमान कुल का गौरव औ देशका नाम डबोते हो।[11]

इसके माध्यम से गुप्त जी ने सर सैयद अहमद के द्वारा मुसलमानों का पक्ष धार्मिक आधार पर लिए जाने के कारण व्यंग्य किया है। गुप्त जी ने विभिन्न धर्म के अनुयायियों का खुलकर विरोध किया। वे केवल देश को ही सर्वोपरि मानते थे। देश की सभ्यता संस्कृति का आधार धर्म होता है अत: उसके खिलाफ काम करने वाले पर खिल्ली द्वारा उपहास किया है-

हाथी है सुधार का लोगों पूछ उधर भई पूछ इधर
आओ आओ पता लगाओ सूंड किधर है मूँड किधर?
इधर को देखो उधर को देखो जिवर को देखो दुम ही दुम,
बोल रहा हूँ चाल रहा हूँ सूंड भी गुम है मूंड भी गुम।[12]

इसके माध्यम से गुप्त जी ने सूंड और मूंड न होने की कल्पना द्वारा सुधारवादियों के सिद्धांतों पर चोट की है। क्योंकि कई बार ये अपने सुधार कार्यों के लिए जब सरकार की सहायता लेते है तो वे देश हित की भी उपेक्षा करते थे। यही कारण था कि राष्ट्रीय आंदोलन में पंजाब के नेताओं की गिरफ्तारी के खिलाफ आर्य समाज के लोगों ने आवाज नहीं उठाई, जो गुप्त को अमान्य थी। 'पंजाब की लायल्टी' कविता में आर्य समाज के लोगों का राष्ट्र विरोधी होने के कारण व्यंग्य किया है -

धर्म समाजी पक्के लायल, लायल है अखबारे आम,
दयानंदियों का तो है लायल्टी से ही काम तमाम ।[13]

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कानोडिया, कमला, 'भारतेन्दुकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन,1971, पृष्ठ- 74
2. वहीं, पृष्ठ- 75
3. मेंहदीरत्ता, वीरेंद्र, हिन्दी साहित्य में व्यंग्य, नयी दिल्ली एवं जयपुर रिसर्च पचिरकेशन्ना इन सोशल साइनोज, 1976, पृष्ठ-155
4. शर्मा, झाबरमाला, चतुर्वेदी, बनारसीदास, 'गुप्त-निबंधावली, कलकत्ता गुप्त-स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, 1950, पृष्ठ- 680
5. वहीं, पृष्ठ 682
6. वहीं,पृष्ठ- 681
7. वहीं,पृष्ठ- 682
8. वहीं, पृष्ठ-581

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

मीडिया एकाधिकार: पूंजीवादी संरचनाएँ और सूचना नियंत्रण

• आरती प्रसाद

सारांश- मीडिया एकाधिकार का मतलब है कि कुछ गिनी-चुनी कंपनियाँ या व्यक्तियाँ मीडिया के अधिकांश साधनों को नियंत्रित करती हैं। यह पूंजीवादी संरचनाओं और सूचनात्मक नियंत्रण का एक प्रमुख उदाहरण है। यह एकाधिकार सूचना के प्रसारण और सार्वजनिक राय को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बड़ी मीडिया कंपनियाँ छोटी कंपनियों का अधिग्रहण करती हैं, जिससे उनका प्रभुत्व बढ़ता है। मीडिया उद्योग में कंपनियों का एकीकरण, जिससे बाजार में प्रतिस्पर्धा कम होती है और एकाधिकार बढ़ता है। कंपनियाँ विभिन्न मीडिया प्लेटफार्मों पर निवेश करती हैं, जैसे प्रिंट, टीवी, रेडियो, और इंटरनेट, जिससे उनका व्यापक नियंत्रण होता है। मीडिया कंपनियाँ मुख्य रूप से मुनाफा कमाने पर ध्यान केंद्रित करती हैं। इसके लिए वे विज्ञापनों, प्रायोजनों और पेड कंटेंट का उपयोग करती हैं। बड़े मीडिया घरानों के पास शक्ति होती है कि वे कौन सी खबरें और विचार प्रसारित करें, जिससे वे सार्वजनिक राय को नियंत्रित कर सकते हैं। मीडिया एकाधिकार कंपनियाँ अक्सर अपने हितों की रक्षा के लिए राजनीतिक संबंधों का उपयोग करती हैं, जिससे उनकी नीतियों और निर्णयों पर असर पड़ता है। मीडिया एकाधिकार पूंजीवादी संरचनाओं और सूचना नियंत्रण का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसके प्रभाव को समझना और इससे निपटने के लिए आवश्यक कदम उठाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए समावेशी नीतियाँ, वैकल्पिक मीडिया का समर्थन, और मीडिया साक्षरता पर जोर देना आवश्यक है।

मुख्य शब्द- मीडिया, पूंजीवादी संरचना, सूचनात्मक नियंत्रण, प्रिंट, टीवी, रेडियो

नियंत्रित मीडिया जनता की राय और दृष्टिकोण को प्रभावित करने में सक्षम होती है। एकाधिकार के कारण सूचनाओं का असमान वितरण होता है, जिससे कुछ खास दृष्टिकोण ही प्रमुख होते हैं। विभिन्न विचारधाराओं और दृष्टिकोणों के लिए प्लेटफॉर्म की कमी होती है, जिससे स्वतंत्र और निष्पक्ष पत्रकारिता प्रभावित होती है। डिजिटल युग और **सोशल मीडिया-** हाल के वर्षों में सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफार्मों ने सूचना नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालांकि, बड़ी टेक कंपनियाँ जैसे फेसबुक,

• सह प्राध्यापक, हिंदी विभाग, रास ना. महाविद्यालय पंडौल, मधुबनी

गूगल, और ट्विटर ने भी एक प्रकार का डिजिटल एकाधिकार स्थापित कर लिया है।
फेक न्यूज़ और प्रोपेगेंडा- सूचना के इस एकाधिकार ने फेक न्यूज़ और प्रोपेगेंडा के प्रसार को भी बढ़ावा दिया है, जिससे सत्यता और विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लग गया है। सरकारें और नियामक संस्थाएँ मीडिया एकाधिकार को नियंत्रित करने के लिए नीतियाँ और नियम बना सकती हैं। स्वतंत्र और वैकल्पिक मीडिया प्लेटफार्मों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, ताकि विभिन्न दृष्टिकोणों को सुना जा सके। जनता को मीडिया साक्षरता के माध्यम से शिक्षित किया जाना चाहिए, ताकि वे जानकारी की सत्यता और स्रोतों की विश्वसनीयता को समझ सकें। मीडिया संचार का एक साधन है जो समाज में सूचनाओं, विचारों और सांस्कृतिक मूल्यों को प्रसारित करने का कार्य करता है। इसमें प्रिंट मीडिया (अखबार, पत्रिकाएँ), इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (टीवी, रेडियो), और डिजिटल मीडिया (इंटरनेट, सोशल मीडिया) शामिल हैं। साम्राज्यवाद एक ऐसी नीति है जिसमें एक देश अपनी शक्ति का विस्तार दूसरे देशों पर प्रभुत्व या नियंत्रण स्थापित करके करता है। यह आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूपों में हो सकता है। इतिहास में, साम्राज्यवादी देशों ने अक्सर अन्य देशों के संसाधनों का दोहन किया और उनकी संस्कृति पर प्रभाव डाला। सूचनात्मक पूंजीवाद वह आर्थिक प्रणाली है जिसमें सूचना और ज्ञान प्रमुख पूंजी के रूप में माने जाते हैं। इस प्रणाली में डेटा और जानकारी को संग्रहित, नियंत्रित और व्यापार किया जाता है। इसका उदाहरण है बड़ी टेक्नोलॉजी कंपनियाँ जैसे गूगल, फेसबुक, अमेज़न आदि, जो उपयोगकर्ताओं के डेटा का उपयोग करके व्यापार करती हैं। साम्राज्यवादी शक्तियों ने मीडिया का उपयोग अपने विचारधारा को प्रसारित करने के लिए किया है। औपनिवेशिक काल में, पश्चिमी देशों ने अपने मीडिया का उपयोग अन्य देशों में अपनी सांस्कृतिक और राजनीतिक विचारधारा को फैलाने के लिए किया। डिजिटल युग में, मीडिया कंपनियाँ बड़ी मात्रा में डेटा संग्रह करती हैं और इसका उपयोग विज्ञापन और अन्य व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए करती हैं। यह सूचनात्मक पूंजीवाद का एक प्रमुख उदाहरण है, जहाँ सूचना सबसे महत्वपूर्ण संसाधन बन गई है। साम्राज्यवाद और सूचनात्मक पूंजीवादरू आधुनिक साम्राज्यवाद अक्सर आर्थिक प्रभुत्व के रूप में प्रकट होता है, जहाँ बड़ी टेक कंपनियाँ और विकसित देश अपने डेटा और तकनीकी श्रेष्ठता का उपयोग करके अन्य देशों पर प्रभाव डालते हैं। यह नया साम्राज्यवाद सूचनात्मक पूंजीवाद के रूप में देखा जा सकता है। मीडिया, साम्राज्यवाद और सूचनात्मक पूंजीवाद आपस में जुड़े हुए हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मीडिया का उपयोग साम्राज्यवाद के प्रचार और सूचनात्मक पूंजीवाद के व्यापारिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। इस संदर्भ में, जानकारी और डेटा की शक्ति ने आधुनिक आर्थिक और राजनीतिक परि–श्य को बदल दिया है। मीडिया द्वारा प्रस्तावित साम्राज्यवाद एक ऐसी दशा है जो छोटे राज्यों, राष्ट्र–राज्यों का अभिज्ञान, अस्मिता और उसकी सांस्कृतिक संज्ञानता को पराभव के कगार पर पहुंचाता है। यह मीडियों के उपकरणों द्वारा केवल बड़े राष्ट्र–राज्यों और उनके द्वारा मीडिया घरानों व बड़े

संगठनात्मक निगमों द्वारा ही संचालित और सफलीभूत नहीं होता, बल्कि अपने स्वरूप और आकार में छोटे राष्ट्र-राज्य की मीडिया के संगठनात्मक निगमों के कार्यशैली और उसके उत्तरोत्तर वृद्धि के सकारात्मक सहमति में देखा जा सकता है। यह साम्राज्यवाद मीडिया के कुछ या एक बड़ी कम्पनी के बड़े स्तर पर उत्पादित सामाग्रियों द्वारा भी संचालित हो सकता है। विश्लेषकों का एक वर्ग पूर्णत: साम्राज्यवाद को मीडिया और सांस्कृतिक संगठन द्वारा प्रकट या अप्रकट तरीके से संचालित करने की रणनीति और सुचनात्मक पूँजीवाद के रूप में वर्चस्व और आधिपत्य के रूप में व्याख्यायित करता है। यह शोध लेख, शोध प्रबन्ध सूचना प्राद्यौगिकी और सामाजिक संगठन (2007)1 पर आधारित है। इस शोध लेख को छ: भागों में बांटा गया है। इस शोध लेख का प्रथम और द्वितीय भाग मीडिया और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण है। तृतीय और चतुर्थ भाग वैश्विक मीडिया की नई कार्य प्रकृति द्वारा स्थान और समय को पुनर्संगठित करने और समरूपता और विविधता पर विमर्श को जारी रखता है। पाँचवां भाग सूचनात्मक पूंजीवाद की नवीन कार्ययोजना तथा आविर्भूत पूंजीवादी संरचना की व्याख्या है। छठे भाग के रूप में शोध लेख के निष्कर्षों को प्रस्तावित किया गया है। इस प्रकार यह शोध लेख मीडिया, साम्राज्यवाद और सूचनात्मक पूंजीवाद के जटिल अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या करता है। मीडिया साम्राज्यवाद का सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के साथ गहन अन्तर्संबंधन है। मीडिया साम्राज्यवाद को सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के साथ अभिव्यक्तिकरण के लिये चार तरीकों (संभवत: पाँच) को प्रस्तुत किया जा सकता है (टामिल्सन: 1991) - (1) साम्राज्य के साथ संबंधित वर्चस्व के रूप में (2) अमेरिकन संप्रेषण वर्चस्व के द्वारा स्थानीय उत्पादों की मीडिया के भरमार के रूप में (3) स्थानीय व राष्ट्रीय संस्कृति के स्वायत्तशासी स्वरूपों के बाध्यकारी दबाव के रूप में (4) वैश्विक पूंजीवाद की राजनीतिक और आर्थिक वर्चस्व के समालोचना के रूप में (5) वैश्विक आधुनिकता की आलोचना के रूप में (मास कम्यूनिकेशन, राष्ट्र-राज्य, उपभोक्तावाद, कारण व उपकरणात्मक स्वरूप) साम्राज्यवाद का अध्ययन एक दूरस्थ क्षेत्र पर एक वर्चस्वकारी मेट्रोपोलेटियन केन्द्र की शासन की अभिवृत्ति, सिद्धान्त तथा प्रथागत स्वरूप का प्रदर्शन है (सेड: 1993)। इसके अतिरिक्त साम्राज्यवाद का संबंध हमेशा उस साम्राज्य से होता है जहाँ एक राज्य शक्ति व सहमति को दूसरे के संदर्भ में प्रयुक्त करता है। वर्तमान समय में नियंत्रण के प्रत्यक्ष साधन समाप्तप्राय: है लेकिन साम्राज्यवाद की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कार्यगत है। साम्राज्य के प्रति आसक्ति भावना, सांस्कृतिक सर्वोच्चता तथा वर्चस्व की विचारधारा, सजातीयता के प्रक्षेपण की भावना व अन्य संस्कृतियों के प्रति हिंसात्मक अभिव्यक्ति, इन सभी तत्वों को साम्राज्यवाद के तहत सम्मिलित किया जा सकता है। ये भावनायें वैश्विक अन्त:वैषयिक आयाम के तहत समझी जाती है लेकिन इसे सरल रूप में देशभक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। साम्राज्य की तरह 'संस्कृति' को भी अभिव्यक्त किया जा सकता। पश्चिमी समाज 'संस्कृति' की चर्चा मानवता के आदर्शात्मक विकास, विशिष्ट राष्ट्रों और उनके सामाजिक समूहों के

विशिष्ट जीवन परिवेश और अंततोगत्वा बौद्धिक व कलाकारों के विशिष्टीकृत क्रियाओं के संदर्भ में करते हैं (विलियम : 1976)। संस्कृति का अध्ययन वर्चस्वकारी सामाजिक संबंधों तथा संस्थाओं के संदर्भ में करना चाहिये जो इनके वितरण तथा सामाजिक विनिमयों के आकार व निर्धारण हेतु करता है (स्टीवेंसन: 1999)। सांस्कृतिक अध्ययन भी विश्लेषण के राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्तर की विशिष्टता के रूप में अवलोकित किया जाना चाहिये जो उनके मध्य विद्यमान संबंधों के रहस्य को खोजता है। यह सांस्कृतिक अध्ययन का पुन: परिभाषित स्वरूप है जिसके तहत सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के माध्यम से ही मेट्रोपोलेटियन वर्चस्व जारी रहता है तथा जो आर्थिक तथा राजनीतिक प्रथाओं द्वारा सतत रहता है। निर्भरता के नवमार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यक्ष नियंत्रण के पुराने स्वरूपों की असफलता जो साम्राज्यवाद द्वारा उकसाया जाता था, अन्य स्वरूपों के कारण बदलावित हो गया है जिसके तहत 'मीडिया साम्राज्यवाद' एक छोटा भाग है। यूरोपियन उपनिवेशवाद, पूर्व उपनिवेशित अफ्रीका, लैटिन अमेरिका व एशिया में व्यापक स्तर पर 'मौखिक संस्कृति स्वरूप विद्यमान था। लेकिन आधुनिक मीडिया के रूप में, 'प्रेस' का तृतीय विश्व में प्रवेशीकरण, उपनिवेशवाद की एक नवीन भाषा थी। इसने सांस्कृतिक शक्ति के स्रोत का कार्य किया जिसके कारण उपनिवेशकारियों की भाषा व सांस्कृतिक प्रथा वैधताकृत हुई। पुराने साम्राज्यों की भाषा व स्टाइल राष्ट्रीय संचालित वर्गों की (जिसके तहत सूचनात्मक उपकरण व मीडिया संगठन था) भाषा बन गई। मीडिया स्वरूपों का अन्यायकारी वैश्विक व्यवस्था के साथ संबंध स्थापित हो गया। मीडिया के प्रत्यक्ष शासन की कमी के बाद राजनीतिक हस्तक्षेपों को प्रश्रय दिया जाने लगा उस सामाजिक अभिवृत्ति को संपोषित करने के लिये जो प्रत्यक्षत: पूंजीवादी अभिमुखन तथा प्रथाओं का आधार था। यह परिकल्पित किया गया कि वैश्विक 'अर्थतंत्र' के संदर्भ में मास कम्यूनिकेशन तृतीय विश्व के एकीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तोता होगा। मीडिया संस्कृति परंपरामूलक प्रथाओं और विश्वासों को परावर्तित करेगा जो गैर विकास का नेतृत्व करता है। लेकिन महत्वपूर्ण अंतराल को निर्भरता के सिद्धान्तकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया जो असमान 'संपन्न' व 'निर्धन' राष्ट्रों के संरचनात्मक संबंधों का विश्लेषण था। सिद्धान्तकार 'वालेरस्टीन' अभिव्यक्त करते हैं कि : पूंजीवादी विश्व व्यवस्था राज्यों के तीन स्वरूपों में विभाजित थी। प्रथम 'कोर' द्वितीय 'सेमी पेरीफेरी' तृतीय 'दी पेरीफेरी' (वालेरस्टीन : 1974) राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक शक्ति के असमान वितरण द्वारा 'कोर स्टेट्स' विश्व व्यवस्था के कार्य संचालन को अपने हितों पर संचालित करता था। यह 'परिकल्पित' किया गया कि मीडिया और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद वैचारिक मशीनवाद हेतु प्रस्तावित था जिसके द्वारा निर्भरता के संबंध तीव्र व प्रथागत होते थे। विकासमूलक परिप्रेक्ष्य से निर्भरतामूलक सिद्धान्त की ओर बदलाव, इस मान्यता को प्रति उत्तरित करता था कि सीमा क्षेत्रीय राष्ट्र-राज्य शक्तिशाली प्रतिरूप के साथ वैश्विक समानता को हासिल कर लेते हैं। इस संदर्भ में निर्भरता सिद्धान्त का यह निवेदन था कि यह विकासमूलकवाद के यूरो सेन्ट्रिक

अनुत्पादकता को प्रति उत्तरित करने योग्य था। यूरोसेन्द्रिक विचारधारा के आधारक दो मान्यताओं को प्रेषित करते हैं (आमीन: 1989)। आंतरिक कारक राष्ट्रीय समाज के विकास को निर्धारित करता है और पूंजीवाद का पश्चिमी प्रारूप संपूर्ण पृथ्वी के समाविष्टीकरण के लिये सामान्यीकृत है। निर्भरता सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप प्रस्तुत करता है (जो यह उस मार्ग को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है) कि वैश्विक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अन्तर्संबंधन वर्चस्व के संबंधों को ताकत प्रदान करता है। मीडिया साम्राज्यवाद के संदर्भ में फेजेस व्याख्यायित करते हैं कि मीडिया साम्राज्यवाद को व्यापक व सामान्य अर्थों में, उस प्रक्रिया को अभिवर्णित करने के लिये किया जा सकता है जिसके द्वारा आधुनिक कम्यूनिकेशन मीडिया ने वर्चस्व व एक विश्व स्तर पर निर्भरता के विस्तारित व्यवस्था, रख-रखाव तथा सृजन के संचालन को प्रस्तुत किया है (फेजेस : 1981)। नवमार्क्सवाद के सैद्धान्तिकीय हस्तक्षेप के संदर्भ में 'वर्चस्व' व 'निर्भरता' के संबोधों को अवलोकित किया जा सकता है जो वैश्विक तथा समालोचनात्मक स्तर पर चिंतन करते हैं। इसके अन्तर्गत प्रमुख मुद्दा वर्चस्व के सांस्कृतिक व वैचारिक साधन के संदर्भ में, शक्ति व शोषण के आर्थिक स्वरूप की वास्तविक व्याख्या का विस्तारण था। बैरेट के संदर्भ में, मीडिया साम्राज्यवाद को तीन स्तर पर अवलोकित किया जा सकता है। (ब्याड-बैरेट : 1977) पश्चिमी पूंजीवाद द्वारा कम्यूनिकेशन प्रौद्योगिकी के विकास का अर्थ है कि वे कम्यूनिकेशन के वाहक को आकार देने योग्य थे। इन प्रौद्योगिकियों का प्रथम स्तर पर आयात 'उपनिवेशवाद' द्वारा किया गया व निर्भरता द्वारा प्रोन्नत किया गया जो 'पश्च पूंजीवाद' द्वारा संचालित हुआ। नवीन प्रौद्योगिकी का विकास प्रमुखत: पश्चिमी पूंजीवाद द्वारा किया गया जब इसका विकास 'तृतीय विश्व' द्वारा किया गया जिसका कारण अधिक स्थानीय उत्पादन का निषेधात्मक लागत था। मीडिया की खरीददारी स्वत: निर्भर राष्ट्रों को, पश्च पूंजीवाद के वित्तीय तथा संगठनात्मक संरचना के अन्तर्गत संलग्न करती है। ट्रांसनेशनल मीडिया कारपोरेशन के विकास व वृद्धि का अर्थ है कि 'पश्चिमी पूंजी व जानकारी' कि कैसे आर्थिक अधीनस्थ राष्ट्र-राज्यों में कम्यूनिकेशन प्रणाली का प्रयोग हो सकता है। इसने संगठनात्मक संरचना व नियंत्रण के पूंजीवादी स्वरूप की प्रतिकृति को विस्तारित किया है।

पश्चिमी पेशेवर प्रतिमान (वस्तुनिष्ठता, संतुलन) भी मीडिया संगठन के साक्ष्य हैं। इसकी वैचारिकी व मान्यतायें मीडिया साम्राज्यवाद की वाहक है। इन सांस्कृतिक स्वरूपों के माध्यम से निश्चिम पश्चिमी मूल्य प्रोन्नत होता है (उपभोक्तावाद)। राजनीतिक रूप से, मीडिया उत्पादन और प्रतीकात्मक विनिमय के विरूद्ध प्रतिरोध करने की शक्ति में गतिशीलता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह प्रतिउत्तर यूनेस्को (1974) के प्रतिवेदन द्वारा प्रस्तुत किया गया कि पश्चिम का संरचनात्मक और सांस्कृतिक वर्चस्व का अर्थ है कि विश्व का 75 प्रतिशत भाग आर्थिक रूप से आभावग्रस्त और सांस्कृतिक रूप से पश्चिमी इमेज, न्यूजो और परिप्रेक्ष्यों की भरमार से युक्त है। इन मुद्दों

को मैकब्रिड आयोग (1978) के प्रतिवेदन (बहुत आवाजे, एक विश्व) से बल मिलता है। यह प्रतिवेदन एक नवीन सूचना व्यवस्था के संदर्भ में चर्चा करता है जो 'तृतीय विश्व' के संदर्भ में 'सांस्कृतिक स्वायत्तता' को प्रस्तावित करेगा और मध्यस्थ संस्कृति के एक पक्षीय बहाव को उल्टा करेगा। मत व विचारणा का स्वतंत्र प्रवाह, प्रजातंत्र के विकास और बाजारू सिद्धान्तों के संचालन के अन्तर्गत अस्वीकार योग्य, अनुचित हस्तक्षेप हेतु अत्यावश्यक है। मीडिया साम्राज्यवाद सिद्धान्त व सुर्वाकरण, निर्भर राष्ट्रों के लिये अभिज्ञान का एक राजनीतिक केन्द्र उपलब्ध कराता है जो पश्चिम की आलोचना भौतिक तथा प्रतीकात्मक रूप से करता है। यदि इस तर्क का अनुसरण किया जाय तो यह सत्य है कि पश्चिमी पूंजीवाद के स्वरूप और सांस्कृतिक मूल्य, अधीनस्थ राष्ट्र-राज्यों पर, आर्थिक साधनों द्वारा थोपा जाता है। प्राथमिक रूप से, यह आर्थिक संबंधों का पश्चिमी वर्चस्व है जो सांस्कृतिक वर्चस्व को जारी करता है। यह तर्क दिया गया है कि वैश्विक पूंजीवाद और संस्कृति का स्वरूप, समान रूप से 1960 व 1970 के दौरान परिवर्तित हुआ है। इस संदर्भ में शिलर का अध्ययन प्रासंगिक है (Schiller : 1992 : 1996) दो महत्वपूर्ण उपागमों में यह शिलर है जो समाज के बचाव के अन्तर्गत संस्कृति के उत्पादन को अवलोकित करता है। शिलर तर्क देते हैं कि 1960 का दशक अमेरिकी आर्थिक और सांस्कृतिक शक्ति का सर्वोत्तम समय है। इस समय तक वैश्विक प्रारूप अत्यधिक जटिल हो चुका था। इसका प्रमुख कारण आर्थिक शक्तियों व क्रियाओं का प्रतियोगी केन्द्र था। अमेरिका ने इन बदलावों के प्रति उत्तर के रूप में, नवीन कम्यूनिकेशन प्रौद्योगिकी के विकास के द्वारा सांस्कृतिक उद्योग के अन्तर्गत अपनी सार्वभौमिक सफलता को सुनिश्चित किया। इन विकासों ने अमेरिकन मल्टीनेशनल के वैश्विक प्रवाह को वृद्धिगत किया है; इसने पब्लिक नेटवर्कों के विनियमतीकरण और मास मीडिया के विस्तारित व्यवसायीकरण को भी वृद्धिगत किया। शिलर अमेरिकन 'पापुलर कल्चर' के पूंजीवादी संचालित प्रकृति और वस्तुकरण को प्रस्तुत करता है। इस संदर्भ में, विश्व 'अमेरिकन इमेज' में पुनर्निमित है। शिलर के अनुसार अमेरिकन पूंजीवादी संस्कृति, क्रेडिट का विस्तार, उच्चश्रृंखल व अनियंत्रित उपभोक्तावाद, विज्ञापन, परंपरागत बंधकों के स्वरूपों के व्यवस्थित व्यवस्थापन के विकास के संदर्भ में अवलोकित किया जा सकता है। पूंजीवादी अमेरिकन चरित्र व जीवन शैली का, एक राष्ट्रीय संदर्श में विकास हुआ है जहाँ सामाजिक प्रजातंत्र के किसी भी संज्ञानमूलक परंपरा का अभाव है और जहाँ कार्यकारी श्रमिक संगठन के पास कमजोर जन उपस्थिति का अभाव है। इस तरह के वातावरण ने, वित्तीय अर्थतंत्र के वर्चस्वकारी संरचना के अन्तर्गत संस्कृति व सूचना की प्रोन्नति को प्रोत्साहित किया (शिलर : 1992 स्टीवेंसन: 1999)। अमेरिका में 'पापुलर कल्चर' का संचालन, पूंजीवादी संचयी रणनीति के तहत सम्मिलित था। प्रौद्योगिकी विकास जैसे : सर्वोच्च सूचना राजमार्ग और इंटरनेट के पीछे आर्थिक संरचना प्रमुख शक्ति है और ये प्रमुख धारावाली जन संस्कृति के सतहीपन को निर्धारित करता है। सामाजिक परिवेश के ऊपर आर्थिक प्रणाली के वर्चस्व की अनवरत

व्याप्तता अनुरूपता की संस्कृति की उन्नति में सहायता करता है, तब अनुभूति (संवेदन) की समालोचना, तब वास्तविक भौतिक तत्व व तकनीक तब प्रत्यावर्तन। सांस्कृतिक मुद्दों के अतिरिक्त बौद्धिक अभिजात्य अर्थतंत्र के प्रमापकों द्वारा संचालित, व्यवस्थित व निर्धारित होता है। इस तर्क हेतु, अमेरिकी संस्कृति उपभोक्तावाद से संबंधित वैचारिकी संदेश का वाहक होता है और संग्रहणशील व्यवहार को प्रोन्नत करता है। मनोरंजन का जन स्वरूप वि-एकीकृत सामुदायिक जीवन के लिये, क्षतिपूर्ति के स्वरूप के रूप में कार्य करता है जबकि विभाजित समाज से संबंधित समालोचनात्मक प्रश्नों के विस्थापन को प्रोत्साहित करता है। शिलर तर्क देते हैं कि मनोरंजन सेवाओं में विस्तार विज्ञापनों के लिये सिर्फ नवीन मार्ग उपलब्ध नहीं कराता है बल्कि सामाजिक मुद्दों का भी मुखौटा धारित किये रहता है जैसे : निम्न वर्गों में वृद्धि; विस्तारित सामाजिक प्रभाग; जेलयुक्त जनसंख्या में उत्तरोतर उतार-चढ़ाव (शिलर : 1992, 1996)। इस प्रकार शिलर व्यवस्थित विश्लेषण करते हैं कि अमेरिका संपूर्ण पद-प्रस्थिति में, वैश्विक अर्थतंत्र के अन्तर्गत अवनति को प्राप्त हुआ है लेकिन इसके बावजूद इसने वैश्विक संस्कृति के ऊपर आधिपत्य को जारी रखा है। 1980 से प्रत्येक जगह संस्कृति वृद्धि हुई है। यह पूरी तरह से अमेरिकनकृत है तथा यह आर्थिक कारणों द्वारा प्रवेशित हुआ है। वैश्विक बाजारों के तहत मीडिया उत्पादों के बढ़ते एकीकरण, सार्वजनिक संस्कृति का तीव्र गति से बढ़ता वि-नियमतीकरण ने विश्वव्यापी स्तर पर अमेरिकीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित व प्रोन्नत किया है। इसको प्रत्यक्षत: अमेरिकन उत्पाद, अमेरिकन टेलीविजन के तौर-तरीके, जीवनशैली व आकार की स्थानीय प्रतिकृति व फोटो कापी के समर्थन द्वारा हासिल किया गया है। व्यवसायिक रूप से संचालित मीडिया, जो अमेरिकन उत्पाद का प्रमुख वाहक है, निष्क्रिय विश्व पर पूर्णत: एकाधिकार कर चुकी है। महत्वपूर्ण रूप से, यह वैश्विक अर्थतंत्र है तब जाकर राष्ट्र-राज्य; जो शासन संचालन का नवीन मशीनवाद है। वैश्विक पूंजी नेटवर्क के संदर्भ में, राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक स्वायत्तता के व्यवस्थीकरण तथा आतंरिक निर्मित सामाजिक अभिज्ञान के विशिष्ट अभिलक्षण के संरक्षण हेतु संघर्ष कर रहे हैं। वास्तविक रूप से वैश्विक कम्प्यूनिकेशन निम्न व/व्यक्तिगत राज्य की अपेक्षा, विश्व के शक्तिशाली व सम्पन्नों से है। एक विश्व आज राष्ट्र की शासन व्यवस्था के द्वारा कम संचालित है और अधिक मात्रा में, यह वैश्विक पूंजीवाद के व्यवसायिक आदेशकों द्वारा संचालित है जो एक ऐसे सामाजिक वातावरण के विकास व उन्नति को प्रोत्साहित करता है जहाँ कुछ संपन्न, समृद्ध, उच्चवर्गीय और बहुसंख्यक निम्न, शोषित, कम आय वर्गीय व सीमान्तीकृत है। अद्यतन तर्क यह प्रस्तुत करते हैं कि वैश्विक मीडिया 'स्थान' और 'समय' को पुनर्संगठित करता है। इस 'स्थान' और 'समय' के पुनर्संगठन को मार्शल मैकलुहान के कार्यों में प्रथमत: अवलोकित किया जा सकता है। मैकलुहान व्याख्यायित करते हैं कि आधुनिक विश्व का बदलाव सूचना विनिमय के तीन साधनों द्वारा होता है जो मौखिक, प्रिंट और कम्यूनिकेशन का इलेक्ट्रानिक माध्यम होता है। इलेक्ट्रानिक कम्यूनिकेशन के माध्यमों से संबंधित

संक्रमण को आधुनिकता के प्रायोगिक प्रकृति में परिवर्तनों के साथ संबंधित किया जा सकता है। यह कूल माध्यमों के साथ हाट माध्यमों के क्रमिक विस्थापनों के द्वारा सही तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है। मैकलुहान के लिये हाट माध्यम सहभागिता को अमान्य करता है व सूचनात्मक अन्तर्वस्तु में उच्च होता है। जबकि इसके विपरीत 'कूल मीडिया' श्रोताओं व सहभागियों के लिये, व्यापक स्थान प्रस्तुत करता है व सूचनात्मक सघनता के निम्न स्तर को प्रदर्शित करता है। 'कूल माध्यम' का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण 'इंटरनेट' है। इंटरनेट एक ऐसा माध्यम है जो विषय वस्तु को, सूचना के भेजने वालों और अधिग्रहित करने वालों, दोनों में परिवर्तित करता है। प्रतिकूल रूप से, प्रिंट संस्कृति एक हाट माध्यम है। प्रिंट संस्कृति सूचना के प्रवाह का एक हाट माध्यम है, जो व्यक्तियों, अध्ययनकर्ताओं के छोटे से समूह को प्रदर्शित करता है। मैकलुहान के आशय में टेलीफोन व इंटरनेट पूर्ण सहभागिता की प्रतीक व मांग है। इसकी अपेक्षा लिखित व प्रिंटेंड पेज कम सहभागी है (मैकलुहान : 1994)। इसके अतिरिक्त मैकलुहान इस तथ्य से संज्ञायित है कि टेलीफोन जो उपभोगकर्ताओं हेतु सतत उपलब्ध है; शक्ति, सार्वजनिक व निजीगत संबंधों के परिवर्तित संबंधों का प्रभाव हो चुका है। उदाहरण के लिये 'बुक संस्कृति' अध्ययनगत प्रथाओं पर आधारित था जिसने सार्वजनिक स्थानों की अपेक्षा अधिकतर निजीगत स्वरूप ग्रहण किया और ज्ञान का उत्पादन मात्र एक छोटे से समूह के लोगों व लेखकों द्वारा संपन्न किया गया। कूलर माध्यम जैसे कि इंटरनेट व टेलीफोन ने ज्ञान के उत्पादन को विकेन्द्रित किया है व साथ ही साथ सहभागिता की व्यापकता को प्रोत्साहित किया है जो मतों व विचारों की रचना को लोकतांत्रिक स्वरूप प्रदान करता है। मैकलुहान का यह तर्क है कि यह किताबी बौद्धिकों का स्वरूप है जो समाज के अति पिछड़े क्षेत्रों के अन्तर्गत प्रभुता व ज्ञान के परिप्रेक्ष्य को विस्तारित करने की इच्छा रखते है। यदि तर्क का अनुसरण किया जाय तो यह कम्यूनिकेशन का बढ़ता वाह स्वरूप है जो कि ज्ञान उत्पादन के केन्द्रीयकृत स्वरूप पर आधारित है। मैकलुहान भविष्यवाणी करते हैं कि नवीन मीडिया, कम्यूनिकेशन संबंधों के अन्तर्गत वर्चस्व के संबंधों को समाप्त करेगा व ऐसी वैधता निर्देशित करेगा जिसे कोई केन्द्रीय प्राधिकरण संचालित नहीं कर सकता। कम्यूनिकेशन के इलेक्ट्रानिक स्वरूप के अन्तर्गत 'समय व स्थान' के पुनर्गठन ने 'समय व स्थान' को भी पुनर्कार्यकारी बनाया है। 'समय व स्थान' का अस्तित्व इलेक्ट्रानिक मीडिया के प्रभावों द्वारा ध्वस्त हुआ है। आधुनिक अवस्था में, मैकलुहान के अनुसार सांस्कृतिक स्वरूप का प्रवाह 'अतिशीघ्र व सतत' (तत्कालीन व निरन्तर) है (मैकलुहान व फिओरे : 1967)। आज संपूर्ण विश्व के व्यक्तियों का जीवन संप्रेषण के भौतिक और प्रतीकात्मक साधनों के अनंतहीन मिलन से आच्छादित है। विविध परिप्रेक्ष्यों के संदर्भ में, कम्यूनिकेशन प्रणाली अनंत व तत्कालीन संपर्क प्रस्तुत करता है। कम्यूनिकेशन के लिखित स्वरूपों को नवीन मीडिया ने विखण्डित किया है व एक संस्कृति जो इलेक्ट्रीसिटी के माध्यम से संचालित है का किसी एक स्थान से प्रवाह नहीं है बल्कि यह नेटवर्कों के रूप में संगठित है जिसका कोई अन्तर्सम्बन्धित केन्द्र नहीं है।

कम्यूनिकेशन प्रौद्योगिकी केन्द्रीय स्नायु प्रणाली की तरह कार्य करता है व मानवतायुक्त संबंधी वैश्विक आलिंगन के रूप में प्रस्तुत होता है। कम्यूनिकेशन के इलेक्ट्रानिक स्वरूप के तरह विश्व ऐतिहासिक व स्थानिक रूप से पूर्णत: वर्चुअल है। इलेक्ट्रानिक संस्कृति की एक नवीन वैश्विक संवेदनशीलता ने राष्ट्र-राज्य की सीमाओं को पूर्णत: नष्ट किया है और विचारों के अभिजात्य वर्गीय तथा रेखीय स्वरूप को क्षीणता प्रदान की है जो प्रमुखत: कभी प्रिंट मीडिया की विशेषता थी। मैकलुहान का तर्क है कि तकनीकी निर्माणस्थल मानवीय संवेदना पर प्रत्यक्ष प्रभाव स्थापित करता है। उत्तर आधुनिक विवरण एक विवेचनात्मक बदलाव ग्रहण करता है जिसका आधार मार्गों का परीक्षण है तथा जहाँ वैश्विक संस्कृति आधुनिक स्वरूप रचना पर प्रभाव स्थापित करता है। साम्राज्यवाद का युग वैश्वीकरण के द्वारा बदलावित हो चुका है। साम्राज्यवाद राष्ट्र-राज्य का एक ऐसा प्रयास था जहाँ निम्न जनसंख्या पर एक समरूप सांस्कृतिक स्वरूपों को थोपा जाता था वही वैश्वीकरण में एकाकी केन्द्र का अभाव है तथा यह सांस्कृतिक विजातीयता/बहुविविधता द्वारा चिन्हित है। सांस्कृतिक बहुलवाद का नवीन स्वरूप अन्युग्मीय लोगों के रूप में उपलब्ध है व विशिष्ट समय तथा स्थानों से विलग प्रतीकात्मक वस्तुओं से संबंधित है। इसे मैकलुहान के शब्दों में, तकनीकी साधनों से अर्जित किया जा सकता है। समरूपता तथा विभिन्नता के प्रतिमानों को अन्य बहुतेरे अध्ययनकर्ताओं के कार्यों में अवलोकित किया जा सकता है (अप्पादुरई, : 1990, ल्यूक : 1995, गुनाटीलेक : 1995)। अप्पादुरई यह अभिव्यक्त करते हैं कि मीडिया प्रौद्योगिकी के वैश्विक पहुँच व विस्तार के बावजूद समजातीय संस्कृति और समजातीय स्थान निर्देशित व उत्पादित नहीं हुआ है। इसे श्रीलंका के इंडियनाइजेशन, बाल्टिक्स और अरमेनियन्स के रसियानाइजेशन और कोरिया के जपानीनाइजेशन के विविध नीतियों व मुद्दों के संदर्भ में अवलोकित किया जा सकता है। ये नीतियाँ व मुद्दे केन्द्रीय व सीमा क्षेत्रीय प्रारूप के अंत को 'सांस्कृतिक साम्राज्यवाद' के साथ अन्तर्संबंधन के संदर्भ में, चिन्हित करता है। यह उत्तर आधुनिक अवस्था व विखण्डन तथा टूटन को प्रदर्शित करता है। अप्पादुरई संस्कृति का विश्लेषण पाँच परराष्ट्रीय प्रघटनाओं के रूप में अभिव्यक्त करते है जो बहुविध प्रभावों के रूप में, एक दूसरे से विविध संदर्भों में, विविध रूप से अंतर्संबंधित है। इसे विखण्डित वैश्विक सांस्कृतिक अर्थतंत्र के प्रारूपण के रूप में निम्नवत् रेखांकित किया जा सकता है। (अप्पादुरई : 1990)

इस प्रकार साम्राज्यवाद को 'वर्चस्व स्थापना व प्रभाव स्थापना' के रूप में प्रतिबिम्बित किया जा सकता है। यह वर्चस्वकारी केन्द्र की जीवन मूल्यकृति, कार्यगत अभिगम व दबाव तथा नियंत्रण के प्रतिमानगत स्वरूपों का प्रकट या अप्रकट प्रचार-प्रसार है। यह आतंरिक चिंतन तथा मूल्य, प्रथा, विश्वास व जीवनशैली की सर्वोच्चता व संरचनात्मक-हिंसात्मक प्रदर्शीकरण का वाहक है जो आज अन्तर्संयोजित है। यह सभ्यताओं, समाजव्यवस्थाओं व संगठनों के मध्य संघर्ष को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से प्रोत्साहित करने व स्वयं को राष्ट्रभक्त, देशज लगाव व निरपेक्षता के बजाय

सापेक्षिता, स्वजातीयता, सजातीयता के रूप में प्रकटीकृत करता है। यह एक समालोचनात्मक तर्क है कि नव–सिद्धान्त साम्राज्यवाद स्थापना के रूप में या के आधारभूतकारक के रूप में, सूचना व इलेक्ट्रानिक उपकरण व मीडिया के अन्य साधनों को अवलोकित करते हैं जो नवीन भाषा, नवीन सोच, नवीन कार्यशैली, नवीन प्राधिकार, नवीन वैधता के रूप में प्रासंगिक हुई है, हालांकि इससे साम्राज्यवाद स्थापना के पुरातन उपकरण समाप्ति की ओर उन्मुख है। निर्भरता सिद्धान्त तथा मीडिया –सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के मध्य एक अन्तर्संबंधन अवलोकित होता है जो नवीन पूंजीवादी अभिलक्षणों के बहाव (इसे सार्वभौमिक रूप से अवलोकित न कर वैश्विक रूप से अवलोकित किया जा सकता है) ट्रांसनेशनल इलेक्ट्रानिक मीडिया व सूचना उपकरणों के सेवाओं में सतत वृद्धि व कार्य की वैज्ञानिक, एकाकी व वैश्विक नियम व प्रतिमान के रूप में प्रदर्शित है। यह आर्थिक–सांस्कृतिक वर्चस्व के प्रवाह का एकाकी कारक होता है। यह एकाकी देश के मीडिया सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की आसक्ति को विस्तारित करता है लेकिन विपरीत परिणाम के रूप में यह राष्ट्रीय प्रतिरोध की ऐसी प्रवृत्ति को निर्मित करता है जो स्वयं की स्थानीय, क्षेत्रीय देशज सांस्कृतिक व्यवस्था के संरक्षण व पुनर्निर्माण से संबंधित होता है। हालांकि यह कम स्तर पर अभिलक्षित है। ऐसा ऑकलन है कि यह अलगाव सांस्कृतिक पिछड़ापन, विभेद व सर्वोच्च स्थापना व निम्न बचाव लेकिन वृद्धिगत चैतन्यता का प्रतीक है। ऐसा आलोचनात्मक चिंतन है कि यह राष्ट्रवाद व मीडिया–सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के संघर्ष का भविष्य में प्रबलीकरण है जो संकरित, संक्रमित व संदूषित प्रभाव व परिणामों का प्रतीक है। विश्लेषक 'साम्राज्यवाद के अंत' तथा तृतीय स्थान (जो अस्पष्ट, असंदिग्धता, संघर्ष, विभिन्नता व विखण्डन के रूप में लक्षित है) के निर्माण को प्रस्तुत करता है तथा जो सार्वभौमिक स्तर पर व्याप्त होता दिख पड़ रहा है।

नवीन मीडिया व्यवस्था (जो तृतीय मशीन युग, सैद्धान्तिक ज्ञान का बढ़ता प्रयोगीकरण व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बढ़ती पराश्रिता के रूप में व्यक्त है) ने पूंजीवाद के पुरातन विलक्षणों को अलग कर, सूचनामूलक अर्थतंत्र की प्रस्थापना व वैश्विक प्रवाह को संचालित किया है। यह पूंजीवाद के अन्तर्राष्ट्रीय ब्रांड (जो कभी पश्चिमी देशों का प्रारूप हुआ करता था) का प्रस्तोता साबित हुआ है। सूचना व सूचना उपकरणों से संबंधित क्रांति धनस्रोत व आय स्रोत का केन्द्रक है। मीडिया मल्टीनेशनल जिनका सूचना बाजार (ज्ञान व सूचना से संबंधित) व सूचना उत्पादक फैक्टरियों पर नियंत्रण होता है, पूंजीवाद के नवीन प्रतिमान को निर्मित करता है। नवीन मीडिया का समामेलन, स्वामित्व, वर्चस्व स्थापना व पूंजीवाद भूमिका निष्पादन को भी प्रदर्शित करता है। राज्य, केन्द्र व देश की नीतियों से विलगाव व अन्य ध्रुवीय पक्षों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त निष्क्रिय उपभोक्तावाद की बजाय, सक्रिय सहभागिता व सहलग्नता व उपभोक्तावादी परिप्रेक्ष्य को विस्तारित करता है। लेकिन मीडिया के नवीन रूप ने टूटन, भ्रंशता, विखण्डन तथा संकटों का सार्वभौमिक संरचनात्मक प्रस्तुतिकरण

किया है। इससे सार्वभौमिक स्तर पर टूटन, भ्रष्टता, विघटन व संरचनात्मक संकट तथा अपघटन व क्षय के प्रति सार्वभौमिक (वैश्विक) चैतन्यता भी उद्भूत की है। यह विभेद को नकार, सार्वभौमिक रूप से चेतना का एक प्रारूप निर्मित करता है जहाँ पूंजीवादी संचयन व लोचनीयता से तद्जनित समस्याओं व संकटों पर सार्वभौमिक वाद, संवाद व संश्लेषण का मंचन होता है व कठोर तथा शक्तिशाली प्रमापकों द्वारा विश्व को खतरनाक स्थान बनने से रोका जाता है। यहाँ सूचना व सूचना से संबंधित उपकरण : सूचना विनिमय, सूचना जागरूकता, सूचना पहुँच, सूचना स्थल का कार्य करते हैं जहाँ से पूंजीवाद से तद्जनित समस्यायें हेतु सार्वभौमिक चैतन्यता का प्रारूपण होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1 रामशरण जोशी, मीडिया और लोकतंत्र
2 आनंद प्रधान, मीडिया और समाज
3 संजय द्विवेदी, मीडिया का समाजशास्त्र
4 वीरेन्द्र कुमार, प्रचार और जनसंचार माध्यम
5 पी. के. रवि, सूचना और जनसंचार माध्यम
6 हेमंत जोशी, मीडिया, बाजार और लोकतंत्र
7 शशि शेखर, मीडिया का बदलता परिदृश्य
8 Noam Chomsky and Edward S. Herman, "Manufacturing Consent: The Political Economy of the Mass Media"
9. Ben Bagdikian, "The Media Monopoly"
10. Noam Chomsky, "Media Control: The Spectacular Achievements of Propaganda"
11.Ben Bagdikian, "The New Media Monopoly"
12.Ryan Holiday, "Trust Me, I'm Lying: Confessions of a Media Manipulator"
13.Neil Postman, "Amusing Ourselves to Death: Public Discourse in the Age of Show Business"
14.Barry Glassner, "The Culture of Fear: Why Americans Are Afraid of the Wrong Things"
15.David Crace and Richard Campbell"Media/Society: Industries, Images, and Audiences"

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

हिन्दी दलित कहानी का वैशिष्ट्य

• शशि भूषण कुमार 'शशि'

सारांश- दलित समाज की समस्याओं, समाज की जातिवादी मानसिकता और जातीय समाज के अंतरर्विरोधों को उजागर करने के साथ ही समरस समाज का निर्माण करना दलित कहानी का वैशिष्ट्य है। दलित रचनाकारों से डॉ. अम्बेदकर का यह आह्वान दलित समाज की अस्मितागत संघर्ष के लिए ही था। दलित समाज उस समय जिन सामाजिक परिस्थतियों में अमानवीय जीवन जी रहा था, उस पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए दलित रचनाकारों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं को माध्यम बनाया। कालान्तर में दलित वर्ग के रचनाकारों ने विविध विद्याओं में विपुल साहित्य-सृजन से दलित साहित्य की पुख्ता नींव रखा। अपनी रचनाओं में उन्होंने अपनी अस्मिता और पहचान के बीच सदियों की मानसिक गुलामी से मुक्त के प्रश्न को रखकर दलित चेतना के विकास में महती भूमिका का निर्वाह किया।

मुख्य शब्द- जातिवादी समाज, वैशिष्ट्य, साहित्य, साहित्य-सृजन

डॉ. अम्बेदकर ने दलित समाज की मुक्ति के लिए प्रतिरोध और संघर्ष का अभियान शुरू किया। इसका व्यापक प्रभाव दलित समाज पर पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप अधिकार प्राप्त करने के लिए सजग और आन्दोलित हुए। दलित समाज की इस सजगता एवं सामाजिक जड़ता के प्रति प्रतिरोध और संघर्ष का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। डॉ. अम्बेदकर की आत्मकथा से प्रेरणा लेकर दलित साहित्यकारों ने आत्मकथा विधा विकसित की है जो समाज को दर्पण दिखाती है कि वह समाज जिसमें हम रहते हैं कितना अमानुशिक है।" परिणामस्वरूप कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा आदि विधाओं के माध्यम में दलित-पीड़ा की अभिव्यकित होने लगी। डॉ. अम्बेदकर ने दलित रचनाओं को साहित्य-सृजन के लिए प्रेरित किया- "हमारे जीवन, कर्त्तव्य और संस्कृति की ओर हमारा ध्यान नहीं है। अन्तर्मुख होकर विचार करने से हमारे सामने वह भयावह स्थिति स्पष्ट हो जाएगी कि हमारे जीवन-मूल्य और संस्कृतिक मूल्यों को बचाने के लिए दलित साहित्यकारों को जागरूक और प्रयत्नशील हो जाना चाहिए।" साहित्य व्यक्ति और समाज को जातीय स्मृति और अतीत से जोड़कर वर्त्तमान की चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रतिरोध और संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करता है तथा वृहत्तर समाज की वाणी के रूप

• सह प्राचार्य, हिन्दी विभाग, बी.आर.बी. कॉलेज, समस्तीपुर

में आने वाली पीढ़ी से भी संवाद का सशक्त माध्यम है। डॉ. अम्बेदकर साहित्य की इस शक्ति से भली-भाँति अवगत थे, इसलिए उन्होंने दलित रचनाकारों से यह भी कहा कि "तुम्हारे उपन्यास, कथाओं की सीता लक्ष्मण रेखा पार करके जा चुकी है। दुर्योधन के दरबार में द्रौपदी का वस्त्रहरण हो रहा है। शकुन्तला को वनवास हो रहा है। ऐसी स्थिति में साहित्यकारों का आह्न करता हूँ कि वे विभिन्न साहित्यक विधाओं के द्वारा उदात्त जीवन-मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों को रेखांकित करें। अपने लक्ष्य की मर्यादा में मत बाँधों, उसे और अधिक विशाल बनने दो। वाणी का विस्तार करके अपनी लेखनी को केवल अपने प्रश्नों तक सीमित मत रखो। उसे तेजस्वी बनाओं जिससे गाँव में फैला अंधकार दूर हो सके। यह मत भूलो कि इस भारत देश में उपेक्षित दलितों का बहुत बड़ा विश्व है। अपनी रचनाओं के द्वारा उनकी वेदना को समझकर उनके जीवन को उज्जवल बनाने की कोशिश कर ले यही मानवता की सच्चाई है।"[5] दलित रचनाकारों से डॉ. अम्बेदकर का यह आह्वान दलित समाज की अस्मितागत संघर्ष के लिए ही था। दलित समाज उस समय जिन सामाजिक परिस्थतियों में अमानवीय जीवन जी रहा था, उस पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए दलित रचनाकारों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं को माध्यम बनाया। कालान्तर में दलित वर्ग के रचनाकारों ने विविध विद्याओं में विपुल साहित्य-सृजन से दलित साहित्य की पुख्ता नींव रखा। अपनी रचनाओं में उन्होंने अपनी अस्मिता और पहचान के बीच सदियों की मानसिक गुलामी से मुक्त के प्रश्न को रखकर दलित चेतना के विकास में महती भूमिका का निर्वाह किया।

हिन्दी दलित कहानी के परिदृश्य पर विचार करते हुए हम पाते हैं कि सातवे दशक में मोहनदास नैमिशराय की पहली कहानी सबसे बड़ा सुख, कथालोक और ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'अंधेरी वस्ती' निर्णायक 'भीम-पत्रिका' में छपी। इन कहानियों में दलित अस्मिता और दलित चेतना का तीखा स्वर सामाजिक अमानवीयता को अपनी बेचैनी से उजागर कर उसकी विद्रुपता को तार-तार कर देता है। "उस दौर की कहानियाँ को हिन्दी संपादकों ने प्रकाशित करने में विशेष रूचि नहीं दिखाई "फिर भी दलित कथाकारों ने हौसला नहीं खोया और रचनाकर्म को एक आन्दोलन की तरह जारी रखा।"[1] इन रचाकारों के लेखन से दलित साहित्य आंदोलन की भूमिका में नया जोश पैदा हुआ और शहर तथा ग्रामीण परिवेश से उभरने वाले युवा दलित लेखकों को प्रेरणा मिली।

हिन्दी दलित कहानी का समकालीन परिदृश्य आठवें दशक में तेजी से उभरकर सामने आया, जिसमें कई नए महत्वपूण रचनाकारों ने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी। इन रचनाकारेां ने अपनी कहानियों से हिन्दी दलित कहानी को आधार प्रदान किया। "दलित कथाकारों का यह प्रयास जहाँ सर्जनात्मक आवेग से स्वयं को तलाशने की प्रक्रिया के साथ-साथ सामाजिक परिवेश की गंभीर चुनौतियों से टकराता है, वहीं हिन्दी कहानी का परिचय उन स्थितियों और चरित्रों से करना है जिनसे हिन्दी रचनाकार अनभिज्ञ था।"[2] इस दशक में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हिन्दी दलित कहानियाँ एक विशाल वर्ग तक पहुँचने में सफल रही। कुरूक्षेत्र, 'संचेतना', स्वतंत्र भारत', पंजाब केसरी', हंस, जनसत्ता नव भारत', 'निष्कर्ष' आदि पत्र-पत्रिकाओं ने इन कहानियों को प्रमुखता से प्रकाशित किया। "दलित साहित्य ने भारतीय साहित्य को नया आशय एवं अभिव्यक्ति दी

है। जो समाज युगों से हाशिए पर था, उसे केन्द्र में लाकर उसके यथार्थ को भारतीय समाज के सामने रखा है। परम्परागत साहित्यिक मान्यताओं को तोड़कर एक नये साहित्य-सौंदर्य की स्थापना की है।"[3] इसके साथ ही हिन्दी साहित्य में दलित चेतना और दलित अस्मिता को केन्द्र मे रखकर आलोचना, विमर्श तथा कथा समीक्षा के क्षेत्र में परम्परागत मानकों से अलग साहित्य सृजन और मीसांसा की नई दृष्टि एवं कसौटी को लेकर चर्चा, परिचर्चा तथा बहस की शुरूआत हुई। हिन्दी दलित कहानी में समाज के यथार्थ-चित्रण से पुरानी मान्यताओं एवं जड़ परम्पराओं को झकझोर दिया था। इस नयी साहित्यिक धारा में भारतीयों को नये अनुभव नये शब्द, नयी दृष्टि, नये नायक एवं संवदना विद्रोह का रसायन दिया है। इतना ही नहीं उसने तो भारतीय समीक्षा को आत्मपरीपक्षण करने के लिए लगा दिया और पाठक-समीक्षकों के मन में मूलभूत प्रश्न निर्माण किए।"[4] दलित साहित्य ने आधुनिक हिन्दी कहानी को अपने इर्द-गिर्द फैले सामाजिक यथार्थ को देखने की नई दृष्टि ही नहीं प्रदान किया वरन् सही मायने में उसके आधुनिक स्वरूप का नवीन विन्यास भी किया।

नौवें दशक में हिन्दी दलित कहानियों ने अपनी विशिष्ट पहचान को अर्जित किया। इस दशक में 'हंस' पत्रिका में ओम प्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, ''यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, डॉ. सुशीला टाकभौरे आदि दलित वर्ग के हिन्दी कथाकारों की कहानियों खुब प्रकाशित हुई। लोकमत समाचार, पश्यन्ति, संचेतना, दस्तक, राजस्थान, पत्रिका इंडिया टूडे, कथानक, युद्धरत आम आदमी, दैनिक ट्रिब्यून आदि पत्रों में भी हिन्दी दलित कहानियाँ प्रकाशित हुई।

''नौवें दशक की दलित कहानी में जहाँ भारतीय गाँव में व्याप्त वर्ण- व्यवस्था और सामन्ती व्यवस्था में पिसते दलितों की हाहाकार है, वहीं छोटे शहरों, महानगरों में बसे सरकारी नौकरियों में जीवन निर्वाह करते अधिकारियों, क्लर्कों, कर्मचारियों की व्यथा-कथाएँ हैं साथ ही दलितों में उभरते आक्रोश, विरोध, संघर्ष की तीव्र चेतना की कृति थी है जो बदलाव का संकेत है"[5] दलित कहानी लेखकों ने अपने जीवन के प्रामाणिक अनुभव को कहानी की अंतर्वस्तु बनाकर उसे जन-सरोकार से जोड़कर हिन्दी की जनधर्मी बना दिया।

हिन्दी दलित कहानियाँ दलित समाज की अस्मिता का संघर्ष और दलित चेतना के स्वर को अभिव्यक्त करती हुई सामाजिक विकृतियों को दूर कर समरस समाज की स्थापना और दलित चेतना का समाज चेतना में रूपांतरण की मांग करती है। ''यह दलित चेतना ही है जो समाज को विस्तृत समय तथा बृहत्तर समाज के साथ जोड़ती है। अर्थात् सामाजिक दायित्व निर्वहन करने की प्रेरणा देकर समाज को जोड़ने का काम करती है।'' हिन्दी दलित कहानी की यह यात्रा सहज और सरल यात्रा नहीं रही बल्कि यह एक संघर्ष यात्रा है जो दलित समाज के अस्मितागत संघर्ष से भी जुड़ी हुई साहित्य, सृजन एवं जीवन की सहयात्रा है। इस यात्रा में तमाम दिक्कतों का सामना करते हुए दलित हिन्दी कहानी ने यथार्थ की संघर्षपूर्ण स्थितियों, सामाजिक, विषमताओं, भेदभाव, शोषण, उपेक्षा, क्रूर परम्पराओं और सामाजिक अंतर्द्वंद्वों से टकराते हुए अपने आक्रोशित स्वतर को सर्जनात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है। उसकी यह प्रवृत्ति किसी दबाव या प्रतिक्रिया

का प्रतिफल नहीं बल्कि उसकी सहज चेतना और स्वाभाविक स्वरूप की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है।''[6] यह दलित चेतना ही रचना को सयम और समाज से जोड़कर उसे जीवतंता प्रदान करती है और साहित्य को जड़ होने से बचाती है। साथ ही साहित्य को जो विशिष्ट सामाजिक उत्तरदायित्व है, उसके प्रति भी सचेत करती है।''[7] एक रचनात्मक के रूप में हिन्दी दलित कहानीकारों के लिए अपने सामाहिजक दायित्व का निर्वाह करते हुए सामाजिक विद्रूपता को उजागर करना आसान नहीं है। समाज में रहते हुए उसी समाज के अंतर्विरोध को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट करना एक रचनात्मक चुनौती और कठिन आत्मसंघर्ष है। हिन्दी दलित कहानीकारों ने इस कठिन आत्मसंघर्ष से गुजरकर अपने सामाजिक दायित्व के साथ-साथ अपनी रचनात्मकता को बरकरार रखने में सफल हुए हैं। प्रसिद्ध हिन्दी लेखक कहानीकार ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- ''इस संघर्ष से मुझे लगातार जूझना पड़ा लेकिन हार नहीं मानी। लिखना नहीं छोड़ा। लगातार उन विषयों पर लिखना जारी रखा। सिर्फ विषय ही नहीं भाषा और प्रस्तुति को लेकर भी अपना अलग रास्ता चुना। दलित अस्मिता और दलित संघर्ष की जद्दोजहद के लिए मैंने अपनी प्रतिबद्धता से कोई समझौता नहीं किया। मेरी कहानियों में दलित पात्र अपने स्वाभिमान, आत्मविश्वास के लिए संघर्ष करते हैं और जातीय हीनता से मुक्त होन की जद्दोजहद करते हैं। दलित जीवन के ऐसे अनेक पहलुओं से पाठकों को परिचय होता है जिससे हिन्दी जगत अनभिज्ञ था।''[8] वे मानते हैं कि उनवकी कहानियों का यथार्थ और अंतर्वस्तु उन्हीं स्थितियों से उत्पन्न होती है जो दलित समाज के जीवन की नियति है। सदियों से जो हीनता बोध दलित समाज में है, उससे मुक्त होने के लिए दलित चेतना के रूप में मुक्ति का पथ प्रशस्त हुआ है। उनकी कहानियों के पात्र इसी जद्दोजहद को स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त करते हैं।

हिन्दी दलित कहानी वर्त्तमान दौर में भी अस्मितागत संघर्ष और दलित चेतना के विकास में अपना योगदान कर रही है इस बीच सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी दलित कहानी प्रकाशित हुई और हो रही है। इनमें अनेक रचनाकारों के स्वतंत्र कहानी संकलन भी प्रकाशित हुए हैं, जिनमें मोहनदास नैमिशराय का कहानी संग्रह 'अवाजें', 'सूरज पाल चौहान का 'हेरी कब आयेगा', डॉ. दयानन्द बटरोही का 'सुरंग', 'कफनखोर', यातनाओं के जंगल, ओम प्रकाश वाल्मीकि का 'सलाम', डॉ. सुशीला टाकभौरे का 'टूटना वहम', आदि कहानी संग्रह दलित कहनी की संघर्ष यात्रा का अहम 'दस्तावेज' है। इसके साथ ही अनेक संपादित कथा संकलनों का भी प्रकाशन हुआ है, जिनमें महत्वपूर्ण दलित कहानीकारों की कहानियाँ प्रकाशित हुई है अनेक पत्रिकाओं ने भी दलित कहानी विशेषांकों का प्रकाशन किया है। डॉ. महीप सिंह ने वार्षिक संकलनों में दलित कहानियों को शामिल किया है। डॉ. कुसुम वियोगी द्वारा सम्पादित समकालीन दलित कहानियाँ में दलित रचनाकारों की कहानियाँ प्रकाशित हुई, वर्ष 2010 में रत्न कुमार सांभरिता का कहानी संग्रह 'दलित समाज की कहानियाँ, प्रकाशित हुआ। इसमें दलित समाज की व्यवस्था पर केन्द्रित 'आखेट', 'चपड़ासन', 'निपट', 'सुदर' एक कोने और खेत ?' जैसी कहानियाँ शामिल है। इस कहानी संग्रह की विशेषता यह है कि इसमें 'मेरी बात' शीर्षक भूमिका में उन्होंने दलित कहानवी की सैद्धांतिकी निर्मित करने का प्रयास किया है। दलित

समाज में विभिन्न तबकों से जुड़े पात्रों की कहानियाँ इस संग्रह में मिलती हैं। इनके पात्रों का तेवर जुझारू है। इन कहानियों में सामाजिक परिवेश का यथार्थवादी चित्रण और दलित समाज की जिजीविशा के प्रमाणिक चित्रण से पाठक कहानी के कल्पनालोक और मायावी दुनिया से मुक्त होकर जीवन के यथार्थ से परिचित हुए। "हिन्दी कहानी के अनेक उतार-चढ़ावों, तथाकथित आन्दोलनों से अलग दलित कहानी बदलते हुए सामाजिक परिदृदृय के यथार्थ चित्रण की एक विशिष्ट धारा के रूप में सामने आती है जिसकी ओर समीक्षकों का ध्यान देर से गया।"[9] हिन्दी दलित कहानी दलित समाज की समस्याओं का चित्रण ही नहीं करती है बल्कि उनकी चेतना का विस्तार भी करती है।

हिन्दी दलित कहानी दलित समाज का विस्तार भी करती है। दलित चेतना के विकास से हिन्द्धदी समाज की उपस्थित हुआ। आजादी के बाद भी समाज में दलित समाज के शोषण उपेक्षा और अत्याचार से जबकि स्वतंत्र भारत के संविधान में उन्हें समानता का अधिकार प्राप्त है। अपनी इस स्थिति से वे खिन्न हैं और वे स्वाभिमान से जीना चाहते हैं उनमें राजनीतिक चेतना का प्रसार हो चुका है और अब वे प्रतिरोध की भावना की अभिव्यक्ति सीख चुके हैं। ऐसी स्थिति में अन्यायी शक्तियों के उत्याचार को चुपचाप सहने की नियति को उन्होंने अपना भाग्य मानने से इंकार कर दिया है। अस्मितागत संघर्ष एवं दलित चेतना दलित कहानी के पात्रों की भावाभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है वरन् दलित समाज के दैनिक जीवन में शामिल है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव प्रसिद्ध हिन्दी दलित कहानीकार मोहनदास नैमिशराय 'हंस' के माध्यम से पाठकों से साक्षा कर चुके हैं। वर्ष 1997 में मेरठ के शेरगढ़ी गाँव में दलित समाज अपनी संघर्ष कथा खून से लिख रहा था। मेरठ में उन दिनों बाबा साहब भीम राव अम्बेदकर की मूर्ति स्थापित करने को लेकर प्रशासन और दलित समाज आमने-सामने थे। "उनके बीच अधिकार-चेतना जन्म ले चुकी थी। दलित बस्तियाँ में आँच दहक उठी थी जो भड़कने लगी थी। वे लड़ रहे थे। वे मनु के वंशजों से जूझ रहे थे। उनकी लड़ई तो तरफा थी। सवर्णों से और पुलिस से। उनके भीतर बाबा साहिब का संघर्ष उभर आया था। मेरठ में बाबा साहेब की प्रतिमा लगाने को दलित अस्मिता उभार पर थी।"[10] इस संघर्ष में पुलिस की गोली गलने से दो दलित व्यक्तियों की मृत्यु से आक्रोसित दलित-समाज ने भी एक पुलिसकर्मी को पीट-पीट कर मार दिया था। "उनके भीतर से उत्तेजना फूट रही थी। वे मारने-माने को उताबले थे। उनकी उतावली देखकर मैं दंग था। शहर में दलितों की लगभग तीस बस्तियाँ थीं। अधिकांश बस्तियों के भीतर ऐसी ही आग थी। शेष गैर दलित बस्तियों मे उनके खिलाफ नफरत उग रही दहक रही थी, जिसे हवा देने का भरसक प्रयास स्थानीय अखबार कर रहे थे। वे अखबार दलित नहीं, सवर्ण चलाते थे, जो अपने धर्म तथा संस्कृति के पक्षधर थे। भले ही उन दोनों में ही सड़ांध संस्कृति के पक्षधर थे। भले ही उन दोनों में से ही सड़ाध आने लगी हो।"[11] इस घटना-क्रम में पुलिस और दलित समाज के बीच कई बार मुठभेड़ हो चुकी थी जिसमें चालीस-पचास स्त्री-पुरुष और बच्चे घायल हुए थे, पर किसी की आँखों में आँसू न थे। दलित समाज के सीने में प्रतिरोध की ज्वाला धधक रही थी।

शेरगढ़ में घटी यह घटना देश के सामंती परिवेश में दलित समाज के प्रतिकार और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति थी। अपरी अस्मिता के संघर्ष में उन्होंने अपने जान तक की

परवाह छोड़ दी थी। ऐसे सामाजिक परिवेश में जिनका सामंती मिजाज आज भी दलित विरोधी ही बना हुआ है। हिन्दी दलित कहानी के पात्र कहानी के पृष्ठों से निकालकर हमारे आस-पास की जिन्दगी में सांस लेने लगते हैं।'' दलित लेखन वह आईना है जिसमें जातिवादी समाज अपनरा अक्स देख सकता है और विद्रुपताओं से छूटकारा पाने की कोशिश शुरू कर सकता है। हिन्दी दलित कहानी दलित समाहज के अस्मितागत संघर्ष की गाथा हमारे सामाजिक परिवेश में उपस्थित पात्रों के माध्यम से कह रही हैं।

ओम प्रकाश वाल्मीकि अपनी कहानी 'शवयात्रा' में भारतीय समाज की अमानवीय जाति-व्यवस्था के कुत्सित चेहरा को बेनकाब करते हैं जिसमें विषम जीवन-स्थितियों में जी रहे लोग भी संवेदना शून्य हो गये हैं। इस कहानी में चमारों के गाँवों में रह रहे बल्हार जाति के एक परिवार की व्यथा-कथा चित्रित है। चमार की तरह बल्हार भी एक दलित जाति है परन्तु हमारी सामाजिक विडंबना यह है कि सवर्ण और दलित वर्ग की सभी जातियाँ क्रमगत रूप में श्रेष्ठ होने की भावना से ग्रसित हैं। इस कारण ये एक-दूसरे को हीन समझकर घृणा करती हैं और इस अंतरर्विरोध के कारण सवर्णों की भाँति दलित जातियाँ भी अपने ही वर्ग की अन्य जातियों से अपमानजनक व्यवहार करती हैं जबकि वे स्वयं ही इन्हीं स्थितियो की शिकार हैं।

इस जाति क्रम में विभाजन में बल्हार जाति दलित समाज में चमार से भी निम्न स्तर की दलित जाति है। ''परिवार में सिर्फ दो जन ही रह गए थे- सूरज, जिसकी उम्र ढल चुकी थी, और उसकी बेटी संतो जो शादी के तीसरे साल ही विधवा होकर मायके लौट आई थी। सूरज की घरवाली को मरे भी तीन साल हो गये थे। घर-बाहर की तमाम जिम्मेदारियाँ संतों ने संभाल रखी थी। सूरज वैसे भी काफी कमजोर हो चला था। उसे सूझता भी कम था। लेकिन फिंर भी गाँव के छोटे-मोटे काम वह कर ही देता था। सूरज रेलवे में फीटर हो गया था। गाँव वह यदा-कदा ही आता था लेकिन जब भी गाँव आता, चमार उसे अजीव निगाह से देखते थे, कल्लू से कल्लन हो जाने को वे स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। इनकी दृष्टि में वह अभी भी बल्हार ही था, सामाजिक व्यवस्था में सबसे नीचे।

उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषणोपरान्त यह स्पष्ट है कि दलित समाज की समस्याओं, समाज की जातिवादी मानसिकता और जातीय समाज के अंतरर्विरोधों को उजागर करने के साथ ही समरस समाज का निर्माण करना दलित कहानी का वैशिष्ट्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र-ओम प्रकाश वाल्मीकि, प्रकाशन राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली-2, पृष्ठ-108
2. वहीं, पृष्ठ -72
3. पंचशील शोध समीक्षा, सं.-डॉ. हेतु भारद्वाज प्रकाशन पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-3022002 अंक-12, अप्रैल-जून 2011 पृष्ठ -11
4. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, शरण कुमार, लिंबाले द्वितीय संस्करण पृष्ठ -49
5. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र-ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ -112
6. संवेद वारणसी, सं.-कमला प्रसाद मिश्र, प्रकाशक-किताब वाला, 205 शिवाजी, दलित

नगर रोड नं.-9 बोरीवली पूर्व मुंबई-66 अंक 13-14 संयुक्तांक 2010 पृष्ठ -155-156
7. पक्षधर वार्ता विनोद तिवारी प्रकाशक विनोद तिवारी एल-4 वार्डेन आवास, जोधपुर कॉलोनी बी.एन.यू. वाराणसी-221005 मई-दिसम्बर 2008, पृष्ठ -126
8. वही, पृष्ठ-125
9. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ -109
10. हंस, संपादक-राजेन्द्र यादव, प्रकाशक-अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. 2/36 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली नवम्बर 1997, पृष्ठ -52
11. वही, पृष्ठ -53.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र में अर्थ और नैतिकता का समन्वय

• दीप नारायण कुमार

सारांश- अर्थ और नैतिकता का समन्वय व्यवसायों के दीर्घकालिक सफलता के लिए आवश्यक है। जो कंपनियाँ नैतिक मूल्यों का पालन करती हैं, वे न केवल अपने आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करती हैं, बल्कि समाज और पर्यावरण के प्रति भी अपनी जिम्मेदारी निभाती हैं। इससे उनका समग्र विकास होता है और वे दीर्घकालिक सफलता प्राप्त करती हैं। आधुनिक व्यावसायिक नीतिशास्त्र में अर्थ और नैतिकता का समन्वय एक महत्वपूर्ण मुद्दा है, क्योंकि यह न केवल कंपनियों की दीर्घकालिक सफलता सुनिश्चित करता है, बल्कि समाज के समग्र विकास में भी योगदान देता है।

मुख्य शब्द- अर्थ, नैतिकता, समाज, पर्यावरण

"काम क्रोधो तुसंयम्य योऽर्थान्धर्मेणपश्यति।
प्रजास्तं अनुवर्तन्ते समुद्रं इवसिन्धवः।। 8/175 (मनुस्मृति)

नैतिकता का तात्पर्य व्यावसायिक व्यवहार के लिए सामान्य नैतिक विचारों से हैं। नैतिक व्यवहार न केवल लाभप्रदता में सुधार करता है बल्कि व्यावसायिक संबंधों और कर्मचारियों की उत्पादकता को भी बढ़ावा देता है। व्यावसायिक नैतिकता का संबंध व्यवसाय करने में व्यवसायी के व्यवहार से है। अनैतिक आचरण व्यवसायी और व्यावसायिक इकाइयों के लिए कई प्रकार की समस्याएं पैदा करते हैं। व्हीलर ने व्यावसायिक नैतिकता को परिभाषित करते हुए कहा है, "व्यावसायिक नैतिकता समाज इसके विभिन्न समूहों और संस्थानों के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए रखने के साथ-साथ व्यापार आचरण की कठोरता और गलतता के लिए नैतिक जिम्मेदारी को पहचानने की एक कला और विज्ञान है।"[1]

व्यावसायिक नीतिशास्त्र के स्वरूप एवं इसके अन्तसंबंधों को समझने के पूर्व हमें उसके ऐतिहासिक विकास को जानना आवश्यक है। एथिक्स का इतिहास 1970 के दशक का है जब बिजनेस एथिक्स शब्द का आमतौर पर इस्तेमाल किया जाता था 1960 के दशक के दौरान निगमों द्वारा अनैतिक आचरण तेजी से पाया गया। इसका मुकाबला करने के लिए, निगमों ने सामाजिक जिम्मेदारी कार्यक्रम विकसित किए जिनमें धर्मार्थ

• शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, बी.आर.ए.बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

दान और स्थानीय सामुदायिक परियोजनाओं को वित्त पोषित करना शामिल था। व्यावसायिक नीति के पूर्व हमें नीतिशास्त्र की अवधारणा पर भी गौर करना आवश्यक है। नीतिशास्त्र को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं, ''नीतिशास्त्र वह सुसंगठित तथा सुसंगतविचार संग्रह है जिसकी विषय-वस्तु मनुष्य के आचरण सम्बन्धी नियमों तथा आदर्शों के निरूपण तथा उनके अनुसार उनके कार्यों के मूल्यांकन से सम्बन्धित है।'' यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि किसी विषय की परिभाषा में उस विषय के अन्तर्गत आनेवाले सभी पहलुओं का समावेश करना संभव नहीं होता। ऐसा इसलिए है कि परिभाषा को संक्षिप्त तथा चुस्त होना चाहिये। अन्यथा वह परिभाषा न होकर विवरण हो जाती है। हाँ, परिभाषा में सारभूत पहलुओं का संकेत तो रहना ही चाहिये। यहाँ हम कुछ प्रसिद्ध परिभाषाओं को उद्धत करेंगे। विलियमलिली के अनुसार, ''नीतिशास्त्र समाज में रहनेवाले मनुष्यों के आचरण का आदर्शमूलक विज्ञान है।''[2] सिजविक कहते हैं, ''नीतिशास्त्र उचित मानव आचरण की मौलिक समस्याओं का सुसंगठित अध्ययन है।''[3] व्यावसायिक नीति, नीतिशास्त्र दो शब्दों के योग से बना है- 'नीति'तथा 'शास्त्र'।[4] 'नीति' का अर्थ है जो ले जाये अर्थात् जो निर्देश करे या दिशा संकेत करे। 'शास्त्र' का अर्थ है- जो सिखाये या शिक्षा दे। इस प्रकार नीतिशास्त्र का अर्थ है जो दिशा-निर्देश की शिक्षा दे। अर्थात् नीतिशास्त्र वह ज्ञान-भण्डार है जिससे मनुष्य को अपने आचरण के लिए दिशा-निर्देश मिले। इसीलिए नीतिशास्त्र को आचार शास्त्र या कर्तव्य शास्त्र भी कहते हैं। अंग्रेजी के 'एथिक्स' तथा 'मॉरल फिलॉसफी' जो नीतिशास्त्र के पर्याय के रूप में व्यवहृत होते हैं, 'एथिके' तथा 'मोर्स' से उत्पन्न हुए है जिनका अर्थ रीति रिवाजया प्रचलित व्यवहार है। इससे यह स्पष्ट होता है कि नीतिशास्त्र का मुख्य विषय आचार या आचरण ही है।[5]

कभी-कभी यह प्रश्न आता है कि नीतिशास्त्र का उद्देश्य क्या है? अनेक विचारक यह आक्षेपकरते है कि व्यावसायिकनीतिशास्त्र की कोई उपयोगिता ही नहीं है, क्योंकि लोग नीतिशास्त्र से अपरिचित रहकर भी नैतिक हो सकते है और नीतिशास्त्र में पारंगत व्यक्ति भी अनैतिक हो सकता है। तथा नीति का ज्ञान रखते हुए भी व्यक्ति अनैतिक तरीकों से अर्थार्जन कर सकता है।

''जानामिधर्मं न च मेप्रवृतिः।
जानाम्यधर्मं न च मेनिवृतिः।।''[6]

अतः नीतिशास्त्र का कोई महत्त्व नहीं है। किन्तु यह आक्षेप उचित नहीं है। यह सही है कि मनुष्य को नैतिक बनने के लिए अंततः अपने संकल्प को ही दृढ़ तथा सक्रिय करना पड़ता है और इस संकल्प में कर्ता की स्वतंत्र कार्य निष्पादन की क्षमता की बहुत बड़ी भूमिका रहती है पर तब भी कर्म करने के लिए किसी-न-किसी रूप में ज्ञान की पृष्ठभूमि का होना तो आवश्यक होता ही है । इस प्रसंग में हम नीतिशास्त्र की दो प्रमुख ज्ञान परक देनों की ओर दृष्टिपात करते हैं कि एक को हम बौद्धिक जिज्ञासा-शांति परक देन कह सकते हैं और दूसरी को हम कर्तव्य ज्ञान परक देन कह सकते हैं। सर्वप्रथम हम नीतिशास्त्र की बौद्धिक जिज्ञासा शांति परक देन को ही लेते है तो कोई भी शास्त्र एक ज्ञान भण्डार होता है। वह अपनी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में अनेक स्त्रोतों से विभिन्न प्रकार की जानकारी एकत्र करता है। जहाँ जहाँ संभव होता है वह नयी जानकारी हासिल करने के

लिए वैज्ञानिक प्रयोग का भी सहारा लेता है। इस तरह प्रासंगिक विषय–वस्तु के संदर्भ में नयी–नयी जानकारियां उपलब्ध होती रहती हैं। मनुष्य तो स्वभाव से ही जिज्ञासु होता है। वह बराबर नये–नये ज्ञान हासिल करना चाहता है।

इसे हम 'अज्ञान के प्रति जिज्ञासा' कह सकते हैं। कोई भी शास्त्र अपने ज्ञान–भण्डार के द्वारा बहुत हद तक उससे सम्बद्ध जिज्ञासा को शान्त कर ही सकता है। थोड़ी देर के लिए यदि हम यह मान भी ले कि इस प्रकार का ज्ञान–भण्डार कार्य सम्पादन में सहायक सिद्ध नहीं होता, तो इतना तो सच ही है कि उसके द्वारा मनुष्य की कुछ जिज्ञासा बहुत हद तक शान्त हो जाती है। जस प्रकार नीतिशास्त्र बिल्कुल निरर्थक या अनुपयोगी नहीं माना जाता है क्योंकि उसका बौद्धिक जिज्ञासा शान्ति परक महत्व है ही। किन्तु नीतिशास्त्र ज्ञान का केवल जिज्ञासा शान्ति परक महत्व ही नहीं होता। उसका असल महत्व तो कार्य सम्पादन के सम्बन्ध में है। नीतिशास्त्र महज एक सैद्धांतिक विज्ञान नहीं, वरन् एक क्रियात्मक विज्ञान है। मनुष्य अज्ञान या अन्धविश्वास के कारण प्राय: ही ऐसे कर्म करता रहता है जिन्हें उसे नहीं करना चाहिये। ऊपर दिये गये बालिका विवाह सम्बन्धी उदाहरण में हमने देखा है कि लोग धर्मग्रन्थ के आधार पर अपनी कन्याओं का विवाह उनकी अत्यन्त कम उम्र में ही करा देते हैं।

इस सन्दर्भ में हम सती–प्रथा, बाल विधवा विवाह, आदि के उदाहरण दे सकते हैं। पर नीतिशास्त्रीय विवेचन के द्वारा हम ऐसे ज्ञान प्राप्त कर ले सकते है जो हमे अपने कार्यों के सम्पादन में दिशा निर्देश दे सकते है। ऐसे ज्ञान के अर्जन के प्रयास में हमें किसी अन्धविश्वास या पूर्वाग्रह से प्रेरित न होकर विज्ञान से प्रेरणा एवं सहायता लेनी चाहिये। इसी तरह हम अपनी कार्यनीति का निर्धारण कर सकते हैं और अपने कर्मों के नीतिसंगत निष्पादन में सक्षम हो सकते हैं। चूँकि नीतिशास्त्र का प्रमुख लक्ष्य ऐसी ही कार्यनीति का निर्धारण करना है, इमलिये इस शास्त्र की उपयोगिता अत्यधिक होती है। इस शास्त्र के अभाव में मनुष्य अनेक अवसरों अवसरों पर कठिनाई में पड़ सकता है। अत: यहस्पष्ट है कि नीतिशास्त्र का अत्यन्त उपयोगी शास्त्र है।

नैतिक और नैतिक मान्यताओं की जो व्यावसायिक सगठन और उस सगठन के भीतर के व्यक्तियों के मूल्यों, व्यवहार और निर्णयों का मार्गदर्शन करती है, जो व्यावसायिक नैतिकता के रूप में जाना जाता है। व्यवसायों के लिए कुछ नैतिक आवश्यकताओं के कानून में संहिताबद्ध किया गया है। पर्यावरणीय नियम, न्यूनतम वेतन और अंदरूनी व्यापार और मिलीभगत के खिलाफ प्रतिबंध, ये सभी सरकार द्वारा व्यावसायिक नैतिकता के लिए न्यूनतम मानक निर्धारित करने के उदाहरण हैं।

प्रबंधन टीम यह निर्धारित करती है कि पूरी कंपनी दिन–प्रतिदिन के आधार पर कैसे चलती है। जब प्रचलित प्रबंधन दर्शन नैतिक प्रथाओं और व्यवहार पर आधारित होता है, तो किसी संगठन के नेता उदाहरण के द्वारा कर्मचारियों को निर्देशित कर सकते है और उन्हें ऐसे निर्णय लेने में मार्गदर्शन कर सकते है जो न केवल उनके लिए, बल्कि पूरे संगठन के लिए भी फायदेमंद हो। नैतिक व्यवहार की नींव पर निर्माण करने से कंपनी के लिए लंबे समय तक चलने वाले सकारात्मक प्रभाव पैदा करने में मदद मिलती हैं , जिसमें अत्यधिक प्रतिभाशाली व्यक्तियों को आकर्षित करने और और बनाए रखने की

क्षमता, और समुदाय के भीतर सकारात्मक प्रतिष्ठा बनाना और बनाए रखना शामिल है। किसी व्यवसाय को ऊपर से नीचे तक नैतिक तरीके से चलने से प्रबंधन टीम के व्यक्तियों के बीच एक मजबूत बनता है, जिनसे कंपनी के भीतर स्थिरता पैदा होती है।

जब प्रबंधन किसी संगठन का नैतिक तरीके से नेतृत्व करता है, तो कर्मचारी उसी नक्शे कदम पर चलते हैं। व्यावसायिक नैतिकता को मार्गदर्शक सिद्धांत मानकर कर्मचारी कम समय में बेहतर निर्णय लेते हैं य इससे उत्पादकता और समग्र कर्मचारी मनोबल बढ़ता है। जब कर्मचारी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा पर आधारित तरीके से काम पूरा करते है, तो पूरे संगठन को लाभ होता है। जो कर्मचारी किसी ऐसे निगम के लिए काम करते हैं जो संचालन के सभी पहलुओं में व्यावसायिक नैतिकता के उच्च मानक की मांग है,उनके अपने कार्यकर्तव्यों को उच्च स्तर पर करने की अधिक संभावना होती है और वे उस संगठन के प्रति वफादार रहने के लिए भी अधिक इच्छा होते हैं।

व्यावसायिक नैतिक उद्योग–दर उद्योग अलग–अलग होती है। किसी व्यवसाय के संचालन की प्रकृति का उन नैतिक दुविधा तब पैदा होती है जब ग्राहक और उसके पैसे के लिए सबसे अच्छा निर्णयब्रोकरेज द्वारा उच्चतम कमीशन का भुगतान करने वाले से मेल नहीं खाता है। एक मीडिया कंपनी जो बच्चों के लिए टीवी सामग्री तैयार करती है, उसे अच्छे मूल्यों को बढ़ावा देने और अपने प्रोग्रामिंग में रंगीन सामग्री से परहेज करने का नैतिक दायित्व महसूस हो सकता है।

एथिक्स शब्द की उत्पति ग्रीक शब्द 'एथोरा' से हुई, जिसका अर्थ है चरित्र। नैतिकता दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जो मानव चरित्र और आचरण से संबंधित है। यह क्या अच्छा है। और क्या बुरा है और नैतिक कर्तव्य और दयित्व से संबधित अनुशासन है। नैतिकता नैतिक मूल्यों का अवतार है, जो बताती है कि मानव व्यवहार में 'सही' है और क्या 'गलत' है और क्या होना चाहिए। नैतिकता नैतिक जागरूकता विकसित करने और व्यवहार और कारवाई करने के लिए रुपरेखाओं, मूल्यों और सिद्धातों का विचार और अनुप्रयोग है। आमतौर पर, नैतिकता को नैतिक, अच्छा, सही, न्यायपूर्ण और ईमानदार भी कहा जाता हैं।

सामान्य समाज में जो नैतिक और अनैतिक है, वह व्यवसाय में समान नहीं हो सकता है। क्योंकि व्यवसाय विभिन्न वातावरणों में संचालित होता है। व्यावसायिक नैतिकता मुख्य रूप से विशिष्ट मानवीय आवश्यकताओं के साथ व्यावसायिक लक्ष्यों और तकनीकों के संबंध से सबंधित है। यह व्यक्ति, फर्म, व्यावसायिक समुदाय और समग्र रूप से समाज की भलाई पर कार्यो के प्रभाव का अध्ययन करता है। व्यावसायिक नैतिकता उन विशेष दायित्वों का अध्ययन करती है जो एक व्यक्ति और नागरिक तब स्वीकार करते हैं जब वह वाणिज्य की दुनिया का हिस्सा बन जाता है। व्यावसायिक नैतिकता मानव व्यवहार के मानदंड और नैतिक मूल्य हैं जो समकालीन समाज द्वारा विशेष रूप से और समावेशी रूप से वाणिज्यिक लेन–देन से निपटने के लिए वांछित है।

किसी व्यवसाय या कंपनी को तभी नैतिक माना जाता है जब वह अपने आर्थिक उदेश्यों और अपने सामाजिक दायित्वों के बीच समझौता करने की कोशिश करता है। यानी, उस समाज के प्रति अपने दायित्वों के बीच जहाँ वह मौजूद है और संचालित होता है, अपने लोगों के प्रति इसके दायित्व, जिनके कारण यह आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के बारे में भी सोच सकता है अपने पर्यावरण से जिसमें वह बहुत कुछ लेता है और बदले में कुछ भी नहीं मांगता। किसी कंपनी द्वारा निभाए जाने वाले दायित्वों की सूची लंबी और जटिल है और इसलिए, कंपनी के लिए महंगी हैय फिर भी, यदि कोई कंपनी लंबे समय तक जीवित रहना और बढ़नाचाहती है और केवल अल्पावधि में मुनाफा कमाने से संतुष्ट नहीं है, तो उन्हें छुट्टी दे दी जानी चाहिए। समाज के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करते हुए, कंपनी न केवल अपने कर्तव्यों को पूरा करती है, बल्कि एक मजबूत और अधिक नैतिक आधार पर मार्ग भी प्रशस्त करती है। Corporate social responsibility की अवधारणा उसी व्यासायिक नैतिकता का एक अंग हैं। व्यावसायिक नैतिकता के प्रमुख तत्व निम्नलिखित है–

1. एक औपचारिक आचार संहिता
2. आचार समिति
3. नैतिक संचार प्रणाली
4. नैतिक अधिकारियों के साथ एक नैतिकता कार्यालय
5. नैतिकता प्रशिक्षण कार्यक्रम
6. एक अनुशासनात्मक प्रणाली
7. एक लोकपाल की सीापना
8. निगरानी।

'सीमांत नैतिकता' की अवधारणा नीतिशास्त का अनुप्रयुक्त आयाम है। यह नवीन चिन्तन का महत्वपूर्ण पक्ष भी है। 'सीमांत नैतिकता' पद में दो शब्द हैं। 'सीमांत' एवं 'नैतिकता।' सीमांत नैतिकता' पद में दो शब्द है। 'सीमांत' एवं 'नैतिकता।' 'सीमांत' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'subaltern' का प्रयोग हुआ है। Subaltern शब्द मौलिक रूप से एक सैनिक शब्दावली है।[7] जिसका प्रयोग कैप्टन से नीचे के ओहदे पर तैनात कर्मचारियों के लिए किया जाता है। इटली के मार्क्सवादी विचारक एन्टोनियोग्राम्शी[8] ने सर्वप्रथम परम्परागत अर्थ से हटकर इस शब्द का प्रयोग सर्वहारा के लिए किया था स्वतंत्र रूप से इतिहास की विधा के रुप में 1970 ई. में इंग्लैंड से Subaltern History पर चिंतन आरंभ हुआ। इनइतिहासकारों का मूल उद्देश्य था कि इतिहास का पुनर्लेखन होना चाहिए क्योंकि समाज के विकास में सीमांतकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन सीमांतकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन सीमांतकों का उल्लेख इतिहास में देखागया है। लेकिन इतिहासकारों ने सीमांतकों की भूमिका को रेखांकित करने तक ही सीमित रखा है। पाश्चात्य विचारकअरस्तू ने तर्कवाक्यों के विरोध के संबंध की व्याख्या के लिए subaltern उपाश्रितता संबंध की चर्चा की है। लेकिन यहाँ पर Subaltern शब्द का प्रयोग दो तर्क वाक्यों के बीच तार्किक सम्बन की स्थापना के संबंध में किया गया है। यह संबंध पूर्ण व्यापी तथा अंश व्यापी तर्क वाक्यों के बीच होता है, जिसका गुण एक होता है

परन्तु परिणाम में भिन्नता होती है। ऐसा संबंध। सीमान्त का शाब्दिक अर्थ ही सीमा के अन्त पर स्थित जन समुदाय जिसकी खोज-खबर यदि नहीं ली जाय तो वह फिसल कर सीधे अस्तित्वहीन होने वाला है यानी मौत के मुंह में सामने वाला है। इतिहास और साहित्य में इस सीमान्त (subaltern) का विवेचन पूर्व से उपलब्ध है। इसे दलित, हरिजन आदि के रूप में समझने का प्रयास हुआ है। संक्षेप में विकास की धारा से दूर और अनभिज्ञ, काल-क्रम प्रदत्त परिस्थितियों से उपेक्षित जन-समदायसीमान्त के रूप में अभिज्ञेय है। द्वितीय शब्द 'नैतिकता' (Morality) है। नैतिकता का संबंध मानव के साथ है और गौण रूप से अन्य जीवों के साथ नैतिकता का आधार सामाजिक जीवन और मानवता की आवश्यकताएँएवं समाजद्वारा उसकी पूर्ति है। नैतिकता कोई अमूर्त्तप्रत्यय नहीं है। इसका संबंध व्यक्ति और समाज से है। डॉ. वेस्टर मार्क (Dr. Westermarck) ने भी कहा है कि कई बातों से यह सिद्ध होता है कि छोटी जातियों को भी न्याय की अनुभूति है।, जो सभी नैतिक अनुभवों का पुष्प है। (various data prove that the lowerraces have some feeling of justice] the flower of all moral feeling)। इसलिए छोटी जातियों (दलित, शोषित, वंचित) को अपनी बातों को रखने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। कहा भी गया है कि या तो इच्छा स्वतंत्रता सत्य है या नैतिकता एक भ्रम है। प्रश्न यह है कि क्या सीमांत वर्ग को बोलने की स्वतंत्रता है? (Can subaltern speak) यदि नहीं हैं तो वैसे समाज में नैतिकता एक अमूर्त्त प्रत्यय है। 'नैतिकता' शब्द 'नी' धातु में 'क्ति' प्रत्यय के मिलने से बना है। जिसका अर्थ 'ले जाना' या 'दिग्दर्शन करना' है, अर्थात् जो किसी निर्दिष्ट स्थान या लक्ष्य की ओर ले जाने का मार्ग दिखलाता है, उसे नीति कहते हैं अर्थात् 'सीमांत नैतिकता' का अर्थ समाज के हाशिए पर रहने वाले लोगों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने हेतु नीति के व्यावहारीकरण पर विचार करता है।

भाषा विश्लेषण की दृष्टि से 'सीमान्त नैतिकता' कम-से-कम तीन अर्थों में प्रयुक्त किया जा सकता है। प्रोफेसर रामजी सिंह ने 'सीमान्त नैतिकता' पर आधारित संगोष्ठी के लिए भेजे गए अपने आलेख में भाषा की दृष्टि से विश्लेषण करते हुए इसे दो अर्थों में समझा है- प्रथमत: 'नैतिकता ही सीमान्त है तथा द्वितीयत: 'सीमान्तव्यक्तियों की नैतिकता' के अर्थ में विश्लेषित करने की चेष्टा है। इसी क्रम को आगे बढ़ाने काप्रयास निम्नलिखित हैं-

1. नैतिकता ही सीमान्त है।
2. सीमान्त व्यक्तियों की नैतिकता।
3. सीमान्तकों के प्रति नैतिकता।

प्रथम अर्थ इस बात को इंगित करता है कि आज विश्व भर में जिस रफ्तार से भौतिक विकास हो रहा है, उस रफ्तार से नैतिक मूल्यों का क्षरण भी होता जा रहा है। वर्तमान में विश्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती मूल्यों के संकट की है। इसलिए राजनीति में राजधर्म, व्यापार व्यावसायिक नैतिकता, पर्यावरण की सुरक्षा में पर्यावरणीय नैतिकता, मूल्यों का संकट सामाधान हेतु मूल्य आधारित शिक्षा, सीमान्त को समाज की मुख्य धारा में जोड़ने के लिए सीमान्त नैतिकता महत्वपूर्ण वैचारिक विषय बनकर उभरा है।

द्वितीय अर्थ समाज के हाशिए पर रहनेवाले लोगों की नैतिकता से संबंधित है। वंचित वर्ग भी मानवीय मूल्यों से युक्त प्राणी ही हैं। उन्हें भी ऐच्छिक कर्म करने का अधिकार है। नैतिकता का महत्वपूर्ण आधार स्वतंत्रता है। उन्हें भी अपने अधिकार, कर्तव्य, दायित्व का ज्ञान होना चाहिए।

तृतीय अर्थ 'सीमांतकों के प्रति नैतिकता' का अर्थ सीमांतकों, शोषितों, वंचितों, दलितों आदि के प्रति नैतिकता है। यहाँ इस बात की खोज करनी है कि आखिर कौन से ऐसे कारण हैं जिसके चलते सीमांत को के उत्थान के लिए किए जा रहे उपायों का व्यावहारीकरण नहीं हो रहा है? कई राजनीतिशास्त्री, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, इतिहासकार आदि के द्वारा इस गंभीर समस्या के समाधानार्थ कई सिद्धांतों का प्रणयन हुआ, लेकिन इसके बावजूद आज भी शिक्षा, रहन-सहन, सोच-विचार तथा सभ्यता व संस्कृति से यह वर्ग विपन्न दिखाई पड़ रहा है। उन सीमान्तकों को जो समाज के हाशिए पर है, उन्हें मुख्य धारा में लाने की नैतिक जिम्मेदारी दार्शनिकों की भी बनती है। यद्यपि इस दिशा में प्राचीन काल से ही प्रयास जारी है। इसको भगवान बुद्ध ने 'बहुजन सुजाय' मार्क्स ने 'सर्वहारा' बाइबिल में 'समाज के अन्त में जो है' 'रस्किन' Unto this Last', गांधीजी का 'अन्त्योदय' या 'सर्वोदय' सिद्धांत' की शब्दावली से अभिहित किया गया हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मिश्र प्रो. नित्यानंद "नीतिशास्त्र" सिद्धांत और व्यवहार, मोतीलाल वाराणसी दिल्ली प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 4
2. मिश्र प्रो. नित्यानंद "नीतिशास्त्र" सिद्धांत और व्यवहार, मोतीलाल वाराणसी दिल्ली प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ संख्या 3
3. वही पृष्ठ संख्या 3
4. वही पृष्ठ संख्या 3
5. वही पृष्ठ संख्या 4
6. वही पृष्ठ संख्या 4
7. किशोर डॉ. श्यामल सीमान्त नैतिकता के आयाम, इम्प्रेशन पब्लिकेशन, पटना पृष्ठ संख्या 28
8. सिन्हा, डॉ. रमेशचन्द्र विकास की अवधारणा एवं नैतिकता के बदलते प्रतिमान, परख-2010, बिहार दर्शन परिषद् की स्मारिका पृष्ठ संख्या-16-20

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer- Reviewed Research Journal
Impact Factor 7.0 (IIFS) ISSN 0973-3914
Vol.- 40, Hindi Edition, Year-20, Jan.-June 2024

भारत में क्षेत्रवाद समस्या एवं निदान

• मालती तिवारी

सारांश- भारत एक विशाल और विविधतापूर्ण देश है, जहां विभिन्न भाषाएं, संस्कृतियां, धर्म और परंपराएं हैं। इस विविधता के बावजूद, क्षेत्रवाद एक महत्वपूर्ण समस्या बनी हुई है। क्षेत्रवाद की समस्या का सामना विभिन्न राज्यों और क्षेत्रों में होता है, और इसके कई कारण और प्रभाव हैं। भारत में क्षेत्रवाद की समस्या का समाधान किया जा सकता है और राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया जा सकता है।

मुख्य शब्द- क्षेत्रवाद, विविधतापूर्ण, राष्ट्रीय एकता

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयता एक अपभ्रंश प्रयोग है जिसका अभिप्राय राष्ट्र की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य या छोटे क्षेत्र से लगाव। क्षेत्रवाद राष्ट्रीय भावना का विलोम है जिसका उद्देश्य अपने संकीर्ण क्षेत्रीय स्वार्थो की पूर्ति यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसमे क्षेत्र विशेष के लोग अपने लिए आर्थिक समाजिक एवं राजनितिक शक्तियाँ के अधिकारिक मांग करते है भारतीय राजनिति व्यवस्था में क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति मे भौगोलिक क्षेत्र अपनी समाजिक सांस्कृतिक भाषायी की मौलिकता को बनाए रखने के लिए पृथक अस्तित्व की मांग करता है। ऐसी प्रवृत्ति में क्षेत्रीय हित की राष्ट्रीय विकास की तुलना में अधिक श्रेष्ट हो जाता है। निजी संकीर्ण हितो के कारण राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीय सत्ता एवं महत्व अधिक प्रबल हो जाता है। यह संकुचित क्षेत्रवाद राष्ट्र के एकीकरण के लिए घातक है । भारतीय राजनिति में क्षेत्रीयवाद ऐतिहासिक विरासत है। क्षेत्रीयवाद की मनोवृत्ति के कारण अल्पसंख्यक समुदाय को विकास का सही अवसर नहीं मिलवाने के कारण उनमें पृथक क्षेत्रवाद आज भारतीय राजनिति एवं सामाजिक क्षेत्रीयता का सर्वाधिक अत्यन्त व्यापक घटना है क्षेत्रीयता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है राज्य की माँग होती है। प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक – पालिटिक्स इन इण्डिया में क्षेत्रीयवाद की चर्चा करते हुए लिखा है।

- देश के सामने एक स्वायत्तता खतरा राज्यों के संघ से अलग हो जाने का था।
- प्रान्तीयता की भावना था प्रदेश के लिए अधिक अधिकार या स्वायत्तता की मांग बढ़ती गई तो इससे देश अनेक छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्यों में बंट जाएगा।
- कुछ क्षेत्रो में असंतोष आदिवासियों का स्वायत्तता आन्दोलन
- राज्यों के भीतर विशिष्ट क्षेत्रों के अलगाव ।

• **सहायक प्राध्यापक राजनीति शास्त्र/ शोध निर्देशक, शासकीय महाप्रभु वल्लभाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय महासमुंद छत्तीसगढ़**

1-भारतीय राजनीति में क्षेत्रीयतावा
2-क्षेत्रीयवाद और पृथक राज्यों की मांग
3-क्षेत्रीयवाद अन्तराष्ट्रीय झगड़े
4-क्षेत्रीयवाद स्वायत्तता की मांग
5-क्षेत्रीयवाद केन्द्र राज्य संघर्ष
6-क्षेत्रीयवाद के सम्बन्ध के उत्तर दक्षिण की भाग
7-क्षेत्रीयवाद के संदर्भ में भाषवाद
8-क्षेत्रीयवाद और भारतीय संघ से पृथक होने की प्रकृति
9-क्षेत्रीयवाद और क्षेत्रीय राजनितिक दलों का अभ्युदय ।

क्षेत्रीयतावाद की एक अन्य प्रवृत्ति भूमि पुत्र की धारना के रूप में देखी गई है। भूमि पुत्र की धारणा का आशय है कि किसी राज्य क्षेत्र के निवासियों द्वारा उस राज्य में बसे और रोजगार प्राप्त करने आदि के संबंध में विशेष संरक्षण की मांग की जाए। इस धारण की प्रवृत्ति कई राज्यों में देखी गई है। संसार में विभिन्न देशों में जैसे-जैसे विकास की गति तेज हो रही है क्षेत्रीयता असमानताओं की प्रकृति भी बदलती जा रही है। आधारभूत सुविधाओं से वंचित रहने लगते है तब क्षेत्रीय समस्या प्रगति की ओर ले जाने की जगह तरह-तरह के तनावो और आंदोलन को प्रोत्साहन देने लगती है।

भारत एक विशाल देश है देश के विभिन्न राज्यों के अन्तगर्त क्षेत्रों में अनेक कारणों से समरसता का अभाव पाया जाता है क्षेत्रवाद देश के एकीकरण के मार्ग में हमेशा से ही बाध्य रहा है प्रान्तवाद, क्षेत्रवाद जिसका अर्थ पृथक कारण अलगाव रहा है। क्षेत्रीयवाद के कई कारण है क्षेत्रीय विषयताओं के प्रभाव से राजनीतिक दलों में सम्प्रदायिकता पनपी है। अधिकांश समाजो में आज क्षेत्रवाद की समस्याएं किसी न किसी रूप में समस्याएं मिलती है भारत में क्षेत्रवाद अवश्य देखने को मिलता है भारत में क्षेत्रवाद की समस्या स्वतंत्रता के बाद अत्यधिक बड़े-बड़े संघर्षो तथा हिंसक आन्दोलनों को जन्म दिया है भारत में बढ़ती हुई समस्या ने हमारे सामाजिक आर्थिक तथा राष्ट्रीय विकास को अत्यधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है।

भारत में क्षेत्रीयता या क्षेत्रवाद की भावना को पैदा करके कई भौगोलिक मानव, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का योगदान रहा है भारत में क्षेत्रीयता विसमरसता को जन्म दे रही है।

- भाषा की समस्या एक आर्थिक विषमता
- राष्ट्रीय नेतृत्व के स्थान पर स्थानीय नेतृत्व पर अधिक बल
- केन्द्र राज्यों में अधिक राजनीति मुद्दों पर टकराव
- केंद्रीय सत्ता का उल्लंघन

क्षेत्रीय विषमताओं के कई प्रभाव पड़े है। क्षेत्रीय पक्षपात की भावना अन्तक्षेत्रीय तनाव एवं संघर्ष भाषावाद एवं आर्थिक एवं राजनीति हितों को लेकर टकराव उत्पन्न हुए है। क्षेत्रीय अहंमवाद अपने क्षेत्रो की प्रधानता अधिकाधिक स्वायतन्ता और अधिकारों की

योग है। जिसके परिणामस्वरूप पृथकतावादी विचारों का प्रादुर्भात हुआ है। अर्थात इसके विभिन्न कारणों को देख सकते है।

क्षेत्रवाद के सामाजिक समस्याएं

1. आर्थिक स्वार्थ- अनेक आर्थिक दशाएं भी क्षेत्रवाद में वृद्धि करती है, जो क्षेत्र आर्थिक रूप से पिछड़े हुए है, उनमें नए उद्योग स्थापित करने तथा रोजगार के अवसरों को बढ़ाने को मांग की जाती है। क्षेत्र में तरह का प्रचार किया जाता है की क्षेत्रीयता के आधार पर ही आर्थिक असमानताओं को कम किया जा सकता है। ऐसे प्रचार से चाहे उस क्षेत्र की आर्थिक समस्याओं में वृद्धि हो रही हो लेकिन स्थानीय नेताओं को अपना स्वार्थ पूरा करने का अवसर मिल जाता है।

2. भाषायी भिन्नताएं- आज उत्तर भारत के विरुद्ध दक्षिण भारत में जो व्यापक क्षेत्रवाद पनपा है, उसका प्रमुख कारण तमिल, तेलगू तथा कन्नड़ जैसी भाषाओं को बोलने वाले निवासियों को हिंदी भाषी क्षेत्रों के विरुद्ध संगठित करने के लिए सरकार पर अधिक से अधिक दबाव डालना है । भाषायी पृथकता के आधार पर होने वाले उग्र प्रदर्शन क्षेत्रवाद के समस्या को स्पष्ट करते है ।

3. सांस्कृतिक भिन्नताएं- जिस क्षेत्र की सांस्कृतिक विशेषताएं, जैसे – धर्म, वेश भूषा, सामाजिक मूल्य, भाषा, प्रथाएं तथा रहन – सहन आदि दूसरे क्षेत्रों से भिन्न होती है, वह अपने आप को एक पृथक सांस्कृतिक समुदाय के रूप में देखने लगता है । यह एक सामान्य प्रवृत्ति है कि प्रत्येक सांस्कृतिक क्षेत्र अपने आपको दूसरे क्षेत्रों श्रेष्ठ मानता है । यही कारण है की भारत के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र, पर्वतीय क्षेत्र,बंगाल, तमिलनाडु, गंगा–यमुना के मैदानी भागों के क्षेत्र तथा मरुभूमि से संबंधित क्षेत्र अपने आपको एक दूसरे से पृथक मानते है। इन सभी क्षेत्रों की संस्कृतियों में भिन्नता होने से जिन क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ, उन्होंने भी क्षेत्रवाद को बढ़ाने में योगदान दिया ।

4. ऐतिहासिक कारक- क्षेत्रवाद को बढ़ाने में कुछ ऐतिहासिक दशाएँ भी उत्तरदायी रही है। भारत में प्रत्येक क्षेत्र का अपना एक अलग इतिहास रहा है। विभिन्न क्षेत्रों का शासन अलग–अलग राजाओं के अधीन रहने के कारण युद्ध में उनकी पारस्परिक हार–जीत के आधार पर आज भी कुछ क्षेत्रों के निवासी स्वयं को दूसरे क्षेत्रों से अधिक श्रेष्ठ मानते है। मुस्लिम तथा अंग्रेजी शासनकाल में जिन क्षेत्रों के राजाओं ने अपने स्वतन्व अस्तित्व को बनाये रखा, उन क्षेत्रों के निवासी अपने राष्ट्रीय गौरव के नाम पर दूसरे क्षेत्रों से मिलने का विरोध करते हैं। ऐतिहासिक घटनाओं से पैदा होने वाली क्षेत्रीय भिन्नता को आज भी राष्ट्रीय एकता में बदलना कठिन हो रहा है।

5. मनोवैज्ञानिक कारक- व्यावहारिक रूप से विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों की मानसिकता एक–दूसरे से कुछ भिन्न होती है। प्रत्येक क्षेत्र के लोगों का अपने क्षेत्र से एक विशेष लगाव होता है। वे दूसरे क्षेत्रों में अपने क्षेत्र को श्रेष्ठ मानते हैं। साधारणतया राष्ट्रीय हित की तुलना में क्षेत्रीय हितों को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। कम साधनों वाले क्षेत्र के लोगों में साधन सम्पन्न क्षेत्रों के पति एक स्वाभाविक ईर्ष्या होती है। यही मानसिकता

यदि विरोध और संघर्ष का रूप ले लेती है तो इसमे क्षेत्रवाट में वृद्धि होने लगती है।

क्षेत्रवाद के दुष्परिणाम- भारत में क्षेत्रवाद की बढ़ती हुई समस्या ने हमारे सामाजिक, आर्थिक तथा राष्ट्रीय विकास को अत्यधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। इस समस्या के प्रमुख दुष्परिणाम निमनांकित हैं

(1) संकीर्ण नेतृतव का विकास- क्षेत्रवाद का सबसे आधारभूत दुष्परिणाम ऐसे स्वार्थी नेताओं की संख्या में वृद्धि होना है जो क्षेत्रीय भावनाओं को भड़काकर अपनी स्वार्थ-पूर्ति में लगे रहते हैं। इनका व्यवसाय हो आन्दोलनों तथा प्रदर्शनों को आयोजित करके उस क्षेत्र के निवासियों को गुमराह करना, सरकार पर दबाव डालकर व्यक्तिगत हितों को पूरा करना तथा स्थानीय अधिकारियों को प्रभावित करके स्वयं कुछ लाभ प्राप्त कर लेना होता है। इससे उस क्षेत्र की प्रगति भविष्य में भी रुक जाती है तथा वहाँ के निवासी रचनात्मक कार्यों से वंचित रह जाते हैं।

(2) राष्ट्रीयता के विकास में यात्रा- क्षेत्रवाद के कारण देश का प्रत्येक क्षेत्र स्वयं को एक पृथक् इकाई मान लेता है। प्रत्येक क्षेत्र के निवासी अधिकाधिक अधिकारों तथा सुविधाओं की मांग को लेकर एक-दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। धीरे-धीरे क्षेत्रवाद की भावना के कारण केन्द्र सरकार में लोगों की निष्ठा कम होने लगती है। इससे केन्द्र व व राज्य सरकारों के सम्बन्ध बिगड़ने लगते हैं। व्यवस्था और प्रशासन तब एक समस्या का रूप ले लेती है। यह सभी वे परिस्थितियाँ हैं जो राष्ट्रीय एकता को चुनौती देकर देश की सम्पूर्ण प्रगति को अवरुद्ध कर देती है।

(3) सामाजिक न्याय के लिए चुनौती- क्षेत्रवाद सामाजिक न्याय के सभी सिद्धान्तों का हनन कर देता है। क्षेत्रवाद को भावना न तो व्यक्ति को कुशलता को महत्व देती है और न ही क्षेत्र की आवश्यकता को। इसका एकमात्र आधार व्यक्ति की प्रतिभा और कुशलता का मूल्याकन उसकी क्षेत्रीय सदस्यता के आधार पर करना होता है। स्वाभाविक है कि इस स्थिति में उस क्षेत्र के महत्वपूर्ण पदो पर कुशल व्यक्ति आसीन नहीं हो पाते, क्षेत्रीय आधार पर नियुक्त व्यक्ति अपने पद के अनुरूप भूमिका का निर्वाह करने में असफल रहते हैं और इस प्रकार वह क्षेत्र बौद्धिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में आगे बढ़ने से वंचित रह जाता है।

(4) क्षेत्रीय तनाव- किसी क्षेत्र के निवासी जब क्षेत्रवाद के आधार पर कुछ विशेष सुविधाओं को प्रदर्शनों तथा आन्दोलनों के द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, तब दूसरे क्षेत्रों में उनके विरुद्ध प्रक्रिया व्यक्त की जाने लगती है। इससे व्यर्थ में ही क्षेत्रीय तनावों को प्रोत्साहन मिलता है। क्षेत्रीय आधार पर कारखानों का निर्माण, विश्वविद्यालयों की स्थापना, सोमा रेखा का विवाद, प्राकृतिक साधनों का बंटवारा तथा सरकारी अनुदान जैसे विषयों को लेकर वर्तमान में जिस प्रकार विवाद बढ़ते जा रहे हैं, उससे क्षेत्रीय तनावों को स्थिति भी अत्यधिक गम्भीर बनती जा रही है।

(5) प्रगति में बाधा- क्षेत्रवाद के फलस्वरूप सरकार को अक्सर उन क्षेत्रों को अधिक सुविधा देनी पड़ती है जहाँ या तो उनकी आवश्यकता नहीं होती अथवा उन क्षेत्रों की

अपेक्षा दूसरे क्षेत्रों में उनकी अधिक आवश्यकता होती है। इसके परिणामस्वरूप कुछ क्षेत्र समृद्ध बनते जाते हैं और अनुशासित जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों के जीवन में धीरे-धीरे अभाव की समस्या पैदा हो जाती है। फलस्वरूप उन्हें भी प्रदर्शनों और आन्दोलनों के लिए बाध्य होना पड़ता है। वास्तविकता यह है कि क्षेत्रवाद साधनों के असन्तुलित वितरण तथा आन्दोलनकारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देकर सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध कर देता है।

(6) भाषावाद की समस्या- विगत अनुभवों से हो चुका है यह स्पष्ट कि क्षेत्रवाद की समस्या का यदि जल्दी ही समाधान नहीं होता तो इससे भाषावाद की समस्या को पनपने में देर नहीं लगती। इससे विभिन्न क्षेत्रों के बीच सांस्कृतिक और सामाजिक सम्पर्क टूटने लगता है तथा क्षेत्रवाद की समस्या सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझ जाती है।

क्षेत्रीयता वाद रोकने के उपाय- भारतीय लोकतंत्र में क्षेत्रवाद की समस्या का निदान वास्तव में विकास का प्रत्यक्ष सम्बंध विकास कार्यक्रमों की व्यावहारिक और ईमानदारी से लागू करने से है।

1. संतुलित विकास- क्षेत्रीयता वाद की संकीर्ण मनोवृति के निदान का उपाय सभी क्षेत्रों में संतुलित आर्थिक विकास का प्रयास, विभिन्न क्षेत्रों में असंतोष की भावना होता है। ऐसा प्रयास किया जाना आवश्यक है। निर्धन एवं पिछड़ी जनता सामान्य जीवन के स्तर का निर्वाह कर पाये और संतुलित होकर विकास की मुख्य धारा से जुड़ पाये।

2. राष्ट्रीय हित- संकीर्ण क्षेत्रीय हितों के स्थान पर राष्ट्रीय हितों को वरीयता दी जाय राष्ट्र विरोधी गतिविधियों का कठोरता से उन्मूलन किया जाय। प्रान्तीयता या क्षेत्र विशेष के आधार पर की जाने वाली ऐसी माँगों को जिससे देश के विखण्डन एवं विरोध की आशंका हो का दृढ़ता से विरोध किया जाये।

3. सुदृढ़ संघीय व्यवस्था के भावारूप केन्द्र राज्य एवं अन्तर्राज्यीय सम्बधों को स्वस्थ बनाना अनिवार्य है। सरकारिया आयोग द्वारा 1987 में केन्द्र राज्य सम्बधों की सुदृढ़ता हेतु सुझायी गयी अनुसंशाओं को लागू करते हुए संघवाद का सहयोगी ढांचा स्थापित किया जा सकता है।

4. संकीर्ण प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता तथा क्षेत्रीयतावाद के आधार पर गठित एवं कार्य करने वाले राजनीतिक दलों का बहिष्कार किया जाना चाहिए।

5. शिक्षा एवं जागरूकता से क्षेत्रीयतावाद के आधार पर फैलायी जा रही भ्रांन्तियों को दूर किया जाय। राष्ट्र के नागरिकों को सांस्कृतिक आदान-प्रदान अन्तर्राज्यीय सौहार्दपूर्ण, साहित्यिक, सांस्कृतिक खेल एवं अन्य आयोजनों से सौहार्दपूर्ण सम्बधों के विकास हेतु प्रेरित किया जाय विविध आयोजनों से पारस्परिक सांस्कृतिक लक्षणों से परिचित कर अनेकता में एकता की गौरवपूर्ण भावना का विकास का प्रयास एवं राष्ट्रीय एकता को सु-ढ़ किया जाय।

6. भाषाई विवादों का विवेकपूर्ण समाधान आवश्यक है। मातृभाषा रूप में हिन्दी की प्रतिष्ठा बनायें रखने के लिए इसके प्रचार-प्रसार की शैली इस प्रकार निर्धारित की जाय

जिससे यह स्वत: सम्पर्क भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सके।

निष्कर्ष– भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माताओं ने इस बात को अच्छी तरह समझा कि एक राष्ट्र के रूप में भारतीयों को ढालना एक धीमा एवं कठिन काम है इसके लिए लम्बे समय तक राजनीतिक शिक्षा देनी होगी इसलिए अल्पसंख्यों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश राष्ट्रीय आन्दोलन भारतीयो को सांझे राष्ट्रीय आर्थिक और राजनीतिक हितों के आधार पर एकताबद्ध करने का प्रयास करते हुए धार्मिक सामाजिक अधिकारों की रक्षा।

भारत एक विशाल देश है। जहां का भौगोलिक वातावरण बहुत जटिल और विविधतापूर्ण है, क्षेत्रीयता समस्या है और रहेगी इसका उपचार एक प्रभावकारी सकारात्मक और रचनात्मक ढंग से किया जा सकता। वास्तविकता यह है कि भारत में क्षेत्रवाद के विहास के लिए सरकार की गलत नीतियों पदलोलुपता तथा अदूरदर्शिता ही सबसे अधिक उत्तरदायी कारक रहे है, इसके पश्चात्य समस्याएं इतनी गम्भीर नहीं है कि इसका निवारण नही किया जा सके। क्षेत्रवाद के निवारण के लिए राज्यों के विवादों के केन्द्र एक मुल दर्शक समझौतावादी के रूप में नहीं बल्कि नियंत्रक के रूप् में कार्य करना आवश्यक है केन्द्र की सक्रिय नीति से ही राज्य के विवादों को समाप्त कर विकास कर सकता है।

भारत जैसे देश में क्षेत्रवाद को समाप्त कर पाना सम्भव नहीं आवश्यकता इस बात की है कि क्षेत्रवादी प्रवृत्तियां सयंमित और नियंत्रित रूप में रहें तथा क्षेत्रवाद और राष्ट्रवाद में सामंजस्य की स्थिति हो। अत: राष्ट्र को सबल तथा सफल बनाने के लिए नागरिकों में क्षेत्रवाद के साथ साथ राष्ट्रीयता की भावना विकसित करना आवश्यक है। वास्तविक स्थिति यह है कि राष्ट्रीयता ही एक ऐसा भाव अथवा भक्ति है जो व्यक्तियों को अपने व्यक्तिगत एवं क्षेत्रीय हितों को त्याग कर राष्ट्र कल्याण के लिए प्रेरित करता है। क्योकि क्षेत्रवाद के कारण आज कहीं आत्महुती की धमकी कहीं व्यापक आन्दोलन कहीं सार्वजनिक सम्पत्ति तो कहीं राजनीति दबाव में क्षेत्रवाद की समस्या का समाधान हो सकता है।

इस भावना के विकसित हो जाने से राष्ट्र की सभी छोटी बड़ी क्षेत्रीयवाद की समस्याएं उपर उठकर अपने आपको राष्ट्र का अंग समझे वर्तमान युग राष्ट्रीयता का युग है क्षेत्रवाद जैसी समस्या से निपटने आधुनिक शिक्षा में सांस्कृतिक एवं सामाजिक मुल्यों का समावेश किया जाए। राष्ट्रीय भावना का प्रसार करने से क्षेत्रीय असमानताओं की समस्या को कम किया जा सकता है।

वास्तविकता यह है कि भारत में क्षेत्रवाद के विकास के लिए सरकार की गलत नीतियाँ, पदलोलुपता तथा अदूरदर्शिता ही सबसे अधिक उत्तरदायी कारक रहे हैं। इसके पश्चात् भी अभी यह समस्या इतनी गम्भीर नहीं है कि इसका निवारण न किया जा सकता हो। यदि राष्ट्रीय हित को सर्वोच्च स्थान देते हुए व्यावहारिक नीति के द्वारा प्रयत्न किये जायें तो इससे शीघ्र ही उपयोगी परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। विकास कार्यक्रमों का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे सभी क्षेत्रों का सन्तुलित विकास हो सके।

इसका तात्पर्य है कि विकास कार्यक्रमों के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र के निवासियों की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा श्रम और राष्ट्रीय विनियोजन का अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1- भारतीय समाज मद्दे एवं समस्याएं - डॉ. एस. अखिलेश, डॉ. संध्या शुक्ल, पृष्ठ 76,81,82
2- सामाजिक समस्याएं - डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृष्ठ 92,93,95
3- राष्ट्र - राज्य, भूक्षेत्र एवं भू राजनीति - के. सिद्धार्थ, पृष्ठ 81,82
4- भारतीय समाज मद्दे एवं समस्याएं - डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृष्ठ 152,153
5- समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएं - प्रो. एम.एल. गुप्ता, डॉ. डी.डी. शर्मा, पृष्ठ 35
6- राजनीति विज्ञान - डॉ. पुखराज जैन, पृष्ठ 281,282
7- भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ. पुखराज जैन, डॉ. बी.एल. फड़िया, पृष्ठ 98

RNI No MP BIL 01034 / 12 / 1 / 2005 - TC
REGISTRAR OF NEWS PAPERS IN INDIA, GOVT. OF INDIA



Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered Under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802, Year-1997
www.researchjournal.in

ISSN 0973-3914

